वेद मेहता

मेरा जीवन-संघर्ष

एक नेत्र-ज्योतिहीन भारतीय युवक के जीवन-संघर्ष
की कहानी

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
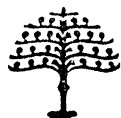
Face to Face : An Autobiography का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक : डा० शिवकुमार शर्मा

मूल्य ५.००
प्रथम संस्करण : दिसम्बर, १९५८
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : हिंदी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

भूमिका

लगभग तीन वर्ष पूर्व मुझे एक छात्र-मंडली ने भारत पर भाषण करने के लिए ग्रामंत्रित किया। ग्रामंत्रण-पत्र में कहा गया था कि 'हम ग्रापके देश की जीती-जागती तसवीर देखना चाहते हैं, जो प्रतिदिन की सामान्य घटनाओं के वर्णन से कुछ बढ़कर हो।'

मैंने ग्रपने पिछले भाषणों का बंडल खोलकर उसे बहुतेरा उलटा-पलटा, पर उनमें से किसी से भी छात्रों की इच्छा पूरी होती हुई नहीं मालूम हुई। ग्रपने ब्रेल-राइटर पर हाथ रखे मैं जितनी देर सोचता रहा, उतनी ही मेरी कठिनाई बढ़ती गई ग्रौर मैं कुछ काम की चीज न लिख सका। ग्रंततः मैंने ग्रामंत्रण ग्रस्वीकार करने का विचार किया। इतने में ही एक मित्र ने सुझाया कि मैं परियों की कहानी के रूप में ग्रपनी वार्ता लिखूं पर उसकी वस्तु 'यथार्थ ग्रौर जीती-जागती' हो।

फिर ग्रपनी ब्रेल-राइटर लेकर मैंने 'एक बार एक नमक-मोर्चा लगाया था जिसका नेता एक दुबला-पतला ग्रादमी था' वाक्य से ग्रारंभ करके भारत के स्वाधीनता-संघर्ष की सफलता की एक कहानी लिख डाली जिसमें वर्णन, संवाद, कार्य-व्यापार ग्रौर करुणा की यथोचित योजना की गई थी।

कांपते हृदय से मैंने वह भाषण प्रस्तुत कर दिया, पर उस पर हुई प्रतिक्रिया से यह मालूम होता था कि परियों की कहानियों में किशोर-वर्ग की ग्रभिरुचि ग्रभी समाप्त नहीं हुई है। मेरे भाषण के बाद मेरे दाईं ग्रोर बैठी हुई एक नवयुवती ने पूछा, "ग्रापने कभी कोई चीज लिखी भी है?"

कमरे के पिछले हिस्से से एक लड़के ने उत्तर दिया, "उनके लिए लिखना बड़ा कठिन है"—संभवतः वह मेरी नेत्रहीनता को लक्ष्य करके कह रहा था।

यह चुनौती ग्रौर वह भाषण ही इस प्रस्तुत रचना के बीजरूप हैं। जिस

'यथार्थ जीती-जागती वस्तु' से मेरा सबसे अच्छा परिचय था, वह मेरा अपना ही अनुभव था, पर फिर भी लिखना आरंभ करने (तब मैं बीस वर्ष का था) से पहले ही मैं यह समझ चुका था कि किसी एक ही व्यक्ति के अनुभव और चिंतन किसी पुस्तक की रचना के लिए न तो पर्याप्त होंगे और न उचित ही। पर भारत, जहां मेरा जन्म और पालन-पोषण हुआ, पुस्तक-रचना के लिए पर्याप्त और उचित विषय है। उस देश में जहां एक ओर तड़क-भड़क, शान-शौकत और ऐश्वर्य-विलास था, वहां दूसरी ओर एक दुःखद घटना, विभाजन और परिवर्तन हुआ था। मुझे अपनी कमियों का पूरी तरह ध्यान था, पर यह सोचकर कि हर किसी को कहीं से तो आरंभ करना ही पड़ता है, मैंने अपने दिल-बहलाव के लिए उस साल गर्मियों में लिखने का संकल्प किया।

पहले मैंने भारत के एक मकान की तसवीर कल्पित करने का यत्न किया—उसमें रंग-बिरंगे द्वार और परिवार के लोगों के चित्र, नौकर-चाकर, पंडित-पुरोहित और यहां तक कि किपलिंग द्वारा वर्णित विचित्र वस्तुएं भी सजाईं। एक दृष्टि से मकान की कल्पना करना सरल काम था क्योंकि इसका मूलरूप तो सम-सामयिक इतिहास की तीव्र धारा में बह ही गया था। इसलिए आगे चलकर उस घटना-चक्र का वर्णन करना स्वाभाविक प्रतीत हुआ जिससे मेरे देश का विभाजन हुआ।

उन गर्मियों में बहुत कुछ लिख डालने के बाद मैं फिर नियमित अध्ययन में लग गया, किंतु दो वर्ष बाद श्री एडवर्ड वीक्स के कृपापूर्ण प्रोत्साहन से मैंने फिर इस कार्य में हाथ लगाया। पर यूनाइटेड स्टेट्स पर, जहां मैं सात वर्ष से रह रहा हूं, एक अध्याय जुड़े बिना यह पुस्तक अधूरी ही रहती।

यह अध्याय मैंने मिले-जुले भावों से लिखना आरंभ किया। ऐसे देश के बारे में लिखना कुछ कठिन नहीं था जिसकी कृपा से मुझे इतना कुछ प्राप्त हुआ है—मेरी शिक्षा और उस भाषा का प्रयोग भी, जिससे यह पुस्तक लिखी जा सकी, उसकी ही कृपा का फल है।

अनुक्रम

पहला भाग : भारत और घर

दूसरा भाग : पाकिस्तान तथा परिवर्तन

तीसरा भाग : अमेरिका तथा शिक्षा

पहला भाग

भारत और घर

अञ्जन तथा विद्यालय | १

भारत के ही नहीं बल्कि सभी देशों के प्रत्येक लड़के और लड़की को अपने बचपन की प्रिय और मधुर स्मृतियाँ होती हैं। इनका प्रारम्भ उस समय से होता है जब वे अपने माता-पिता से टूटी-फूटी भाषा में बोलने लगते हैं। निश्चित रूप से कोई भी बच्चा साथ खेलने वाले अपने माता-पिता तथा भाई-बहनों से कुछ सीखता है तथा उन्हें पहचानता है। वह खाना खिलाने या नर्सरी में छोटी-छोटी चीजों या खिलौनों से खेलते समय अपनी देख-रेख करने वाले नौकरों को भी पहचानता है और उनसे भी कुछ न कुछ सीखता ही है। वह तितलियों तथा पक्षियों के चमकीले रंग भी, जिन्हें सभी देशों के बच्चे बड़े आश्चर्य और प्यार से देखते हैं, याद रखता है। मैं यह इसलिए लिख रहा हूँ कि जब मैं साढ़े तीन वर्ष का ही था तभी ये स्मृतियाँ मेरे लिए नहीं रह गई थीं क्योंकि एक लम्बी बीमारी **'मेनिंजाइटिस'**[१] के पश्चात् आँखें न रहने के कारण मैंने एक ऐसे विश्व में प्रवेश किया था जिसमें रंग तथा चेहरे, प्रकाश और अँधकार किसी का भी ज्ञान नहीं होता।

मेरी आयु तथा दीर्घकालीन बीमारी ने मुझे अमूल्य दृश्य-स्मृतियों से वंचित ही नहीं कर दिया वरन् दृश्य जगत की बहुमूल्य वस्तुओं को मेरे लिए केवल कुछ निरर्थक शब्दों में परिवर्तित कर दिया। मैंने एक ऐसे विश्व में रहना प्रारम्भ कर दिया जहाँ नर्सरी की खिड़की से आने वाली धूप तथा इन्द्रधनुष के विभिन्न रंग नहीं थे, जहाँ सूर्यास्त या पूर्णचन्द्र का कोई महत्व न था बल्कि जहाँ धूप का त्वचा से अनुभव मात्र होता था। धीरे-धीरे होने वाली वर्षा की ध्वनि, नीरव रात्रि के आगमन से पहले चलने वाली हवा की अनुभूति, सूर्योदय के समय घास के तन्तुओं से निकलने वाली गंध ही जहाँ के लिए कुछ कीमत रखती थीं। ऐसा था वह विश्व

१. मेनिंजाइटिस : मस्तिष्क की नाड़ियों की सूजन की बीमारी।

जिसमें लड़खड़ाते पगों से मैंने प्रवेश किया था।

अच्छा ही हुआ कि मैंने अपने नेत्रों की ज्योति उस समय खो दी थी जब कि मुझे विभिन्न दृश्यों का कोई ज्ञान नहीं था। इसलिए किसी की याद नहीं आ सकती थी, किसी की कमी नहीं महसूस हो सकती थी। मैं नवम्बर १९३७ में नेत्रविहीन हो गया था। उस समय हम उत्तर भारत में पंजाब प्रान्त के गुजरात नगर में रहते थे। मेरी बीमारी के बाद हम सब लाहौर चले गए, जो वहाँ से कुछ ही मील दूर था। किन्तु सहानुभूति प्रकट करने के हेतु आने वाले सम्बन्धियों की अधिकता के कारण पिता जी को फिर अपना तबादला कराने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस बार हम करनाल पहुँचे, जहाँ न हमारे मित्र थे, न सम्बन्धी। वहाँ हमें नहर के किनारे अत्यधिक शान्त वातावरण में एक बंगला मिल गया।

जैसी आशंका थी, प्रारम्भ में हम सबको, मेरे माता-पिता को, तीनों बहनों को, भाई को तथा मुझे भी बड़ा मुश्किल मालूम पड़ा। बीमारी ने मुझे बहुत कमजोर कर दिया था। नौकर अपशकुन समझकर मुझसे कतराते थे। मेरी बहनें किसी नाजुक गुड़िया की तरह मेरी देख-रेख करती थीं और माँ रोती रहती थीं। मेरे पिताजी ने, जो जन-स्वास्थ्य-सेवा में एक डाक्टर थे, ईश्वर को धन्यवाद दिया कि मेरी रीढ़ की हड्डी उचित समय पर अवरुद्ध कर दी गई थी, क्योंकि देरी से, कटि प्रदेश में विकार होने पर मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ने का या मेरे जीवन के ख़तरे में पड़ने का भय था। किन्तु दूसरों के समान निराश वे भी थे।

अपने अंधेपन के बाद मैं पूर्णतः निष्क्रिय हो उठा। अंशतः तो यह बीमारी के धक्के के कारण हुआ किन्तु मुख्यतः इसका कारण एक अन्धे बच्चे की कार्यक्षमता के बारे में अज्ञान ही था, क्योंकि मेरे माता-पिता ने अन्धे व्यक्तियों को केवल भिखारियों के रूप में ही देखा था।

लेकिन अब किस्मत से अथवा ईश्वरीय इच्छा से इस अन्धेपन का शिकार एक अत्यधिक कार्यकुशल और खाते-पीते डाक्टर का पुत्र हो गया था और डाक्टर ने इस मामले में अपनी शिक्षा को अनुपयोगी पाया था। फिर भी चिकित्सक की हैसियत से उनके लम्बे अनुभव ने उन्हें इस दुर्घटना को सहने की शक्ति दी और उन्होंने समझ लिया कि कोई भी कार्य यह समझकर करना चाहिए कि मैं शेष जीवन में भी अंधा ही रहूँगा।

दूसरी ओर मेरी मां को न तो विश्वास ही होता था और न ही समझाया जा

सकता था कि मेरी दृष्टि इस जीवन में अब कभी लौटकर नहीं आएगी। उन्हें मेरे पिता के समान चिकित्सा-विज्ञान का कोई अनुभव नहीं था, अतः उन्होंने इस शोकमय घटना का दायित्व अपने पूर्व कर्मों पर डाल दिया।

परिवार के पंडित जी को, जिनकी सलाह पर माँ बचपन से ही भरोसा करती रही थीं, बुलाया गया। माँ गर्व से कहा करती थीं कि हमारे प्रान्त के किसी भी दूसरे पंडित से उन्हें कहीं अधिक धर्म तथा विज्ञान का ज्ञान है। मुझे उनके सम्मुख ले जाया गया तथा काफ़ी समय तक मैं माँ की गोदी में बैठा रहा और पंडित जी अपने ध्यान में खोए रहे। कुछ समय बाद उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा तथा बड़े ध्यान से रेखाओं का अध्ययन किया। फिर कुछ बुदबुदाते हुए उन्होंने माँ का हाथ देखा तथा मस्तक का अध्ययन किया। उन्होंने कहा कि केवल अपने को वे अपर्याप्त अनुभव करते हैं, अतः कुछ अन्य पंडितों के साथ परामर्श करने की आवश्यकता होगी। उनके कहने पर दूसरे पंडित बुलाए गए तथा उचित उपाय करने के लिए उनसे परामर्श किया गया। यद्यपि वे अपने विश्लेषणों में एक मत नहीं हुए किन्तु इस बात में सब एक मत हो गए कि मेरी माँ को पूर्व पापों का प्रायश्चित्त करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से मेरे नेत्रों की ज्योति वापस लौटने की संभावना अधिक हो जायेगी।

उन्होंने निरन्तर प्रार्थना करने से लेकर शारीरिक परिश्रम तक के विभिन्न उपाय बतलाए और दक्षिणा लेकर आवश्यक अनुष्ठान करने के लिए भी तैयार हो गए। प्रत्येक पंडित के सुझाव का ध्यानपूर्वक पालन किया गया। माँ जानती थीं कि पिताजी ऐसे तरीकों के पालन करने की अनुमति नहीं देंगे, अतः उन्होंने यह सब चुपचाप किया तथा इस प्रकार अपने लिए दुगनी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर ली।

इन धार्मिक कृत्यों के अतिरिक्त हकीमों (यूनानी ढंग से चिकित्सा करने वाले व्यक्तियों) की भी बहुत बार शरण ली गई। इन नीम हकीमों ने अनेक प्रकार के मिश्रणों की बूंदें मेरी आँखों में डालने का परामर्श दिया। रात-दिन चौबीस घन्टे मेरी आँखों में लगाए जाने वाले अञ्जनों के कारण मेरी आँखों में जलन रहने लगी। इस कष्टदायक काम का सिर्फ एक आरामदेह अंश था, और वह था बाद में मिलने वाली माँ की प्यार भरी गोद।

एक रात जब माँ मेरी आँखों में अञ्जन लगा रही थीं और मैं खूब जोरों से

प्रतिरोध कर रहा था, कि अचानक पिता जी वापस आ गए। उन्होंने मुझसे पूछा और मैंने शोर मचाने का कारण बतला दिया। इस पर वह बहुत नाराज हुए।

उन्होंने माँ से पूछा कि यह काम कब से किया जा रहा है। उनसे कोई उत्तर देते न बना। वह पिताजी के क्रोध को शान्त रहकर सहन करना चाहती थीं लेकिन उनकी चुप्पी से पिताजी का क्रोध और बढ़ता जा रहा था। उन्होंने झिड़कते हुए कहा कि तुम्हारा अन्धविश्वास किसी देहाती औरत के अन्धविश्वास को भी मात कर गया है। वह यह कहते हुए चले गए कि विवाह के उपरान्त दस वर्ष के लम्बे अर्से में कोई भी समझदार स्त्री अपने पति की इच्छानुकूल स्वयं को परिवर्तित कर लेती। उनकी रूढ़ियों को दूर करने के उनके सारे प्रयत्नों पर पानी फिर गया। पिताजी अपनी सन्तानों का पालन ऐसे रूढ़िवादी वातावरण में कराने के लिए तैयार नहीं थे।

तब भी माँ ने अपने पक्ष में कोई बात नहीं की। जिस प्रकार माँ ने मेरे अंधेपन का कष्ट वहन किया था, पंडितों द्वारा लगाया गया पाप का आरोप और नेत्रों में डाली जाने वाली दवा के पहले वाली पैरवी को बर्दाश्त कर लिया था, उसी प्रकार उन्होंने मेरे पिताजी के क्रोध को शान्तिपूर्वक सहन कर लिया। पिताजी ने भविष्य में हकीमों के पास जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा अञ्जन न खरीदने की सख्त हिदायत कर दी। फिर उन्होंने मुझे प्यार से उठाया और बाहर ले चले। अपने अभ्यस्त हाथों से उन्होंने मेरी दर्द करती हुई आंखें धोयीं। इस घटना के बाद हकीमों के यहाँ जाना तो बन्द हो गया किन्तु अञ्जनों का प्रयोग ग्यारह वर्ष की उम्र तक यदा-कदा चलता ही रहा। लेकिन वह अञ्जन बहुत मामूली होते थे तथा माँ उन्हें लगाने से पहले मुझे राजी कर लेती थीं।

मुझे छोटी-छोटी उन अनेक परिस्थितियों की भी याद है जिनमें से होकर मुझे अपनी मां के कारण गुजरना पड़ता था। एक दिन उन्होंने देखा कि एक बन्द दरवाज़े के पास रुककर उसे खोलने के लिए मैंने दस्ते को पकड़ा। उन्होंने मुझे अपने आप घर में घूमने की स्वतंत्रता दे दी थी और देखा कि मैं बहुत ही कम घर की चीजों से टकराता था। उन्होंने इसका श्रेय हकीम तथा आंखों में लगाई जाने वाली तेज दवाई को दिया। इसके बाद हर शाम वह अपना हाथ मेरे मुख के सामने रखकर पूछतीं कि वह कहाँ है। वह मेरे सामने हाथ हिलातीं जिससे कि मेरे कानों के आस-पास, ऊपर-नीचे हाथ की स्थिति का अनुमान कुछ फुट की

दूरी पर होने पर भी मुझे हो जाता था। वायु की तरंगों से मैं उसके बारे में जान जाता था। लेकिन इतने से ही वह सन्तुष्ट नहीं हुई। वह मुझसे पूछती थीं कि बिजली की बत्ती जल रही है या बुझी है। मैं नहीं बता पाता था तो वह दुःखी हो जाती थीं लेकिन जल्दी ही मैं समझने लगा और स्वीच की ध्वनि से अनुमान लगाकर बता देने लगा कि बत्ती जली है या बुझी है। कभी-कभी वह जल्दी-जल्दी बत्ती जलातीं और बुझातीं किन्तु स्वीच की आवाज़ गिनकर मैं सही उत्तर दे देता था।

मेरे अन्धेपन के बारे में मेरी माता तथा पिताजी के विचारों का कारण उनकी अलग-अलग पृष्ठभूमियाँ थीं। मेरी माता का जन्म एक मध्यम वर्ग के परिवार में हुआ था तथा उनके तीन बहनें और तीन भाई और थे। वह सबसे बड़ी बहन थीं। जिस समय उनकी पढ़ाई शुरू हुई उस जमाने में एक नियम-सा था कि अत्यधिक सुशिक्षित समझी जाने वाली स्त्री भी आठवीं कक्षा मे अधिक नहीं पढ़ी होती थी। परिणामस्वरूप उनकी शिक्षा का अन्त मामूली हिसाब तथा हिन्दी व्याकरण के साथ ही हो गया था। उस दिन से अपना विवाह होने तक पाँच वर्ष का उनका सारा समय खाना बनाने, सिलाई करने और अपने छोटे भाई-बहनों की परिचर्या करने में ही बीतता रहा। यद्यपि इन सब शिक्षाओं से वे एक कुशल गृहणी निश्चय ही बन सकीं किन्तु अन्धापन जैसी असाधारण घटना को युक्तिसंगत ढंग से सहन करने के योग्य वे नहीं बन सकीं। उनके प्रेम तथा अनुराग के सभी साधन निरुपयोगी सिद्ध हुए। अब यदि वह अपने मातृत्व-प्रेम के वशीभूत होकर मुझे पुष्टिकारक पदार्थ देतीं तो पिताजी उनपर नाराज हो उठते और यदि पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही दवाएँ खाने को देतीं तो पिताजी उनके प्रयोग की मनाही कर देते थे।

मेरी माता का विवाह सत्रह वर्ष की आयु में हुआ था। मेरे माता-पिता में बिल्कुल समानता न थी। मेरे पिता ने एक ओर जहाँ विदेशों में खूब भ्रमण किया था तथा भारतीय संस्कृति से सर्वथा भिन्न समाज में रहे थे, दूसरी ओर मेरी माता का लालन-पालन एक बिल्कुल रूढ़िवादी परिवार में हुआ था। वास्तव में उन्होंने किसी श्वेत युवती को भी पहली बार पिताजी के साथ ही देखा था। मेरे पिताजी काफी अशान्त प्रकृति के, जल्दी क्रोधित होने वाले अधीर स्वभाव के थे। वह अक्सर ऐसे क्लबों में तथा सायंकालीन भोजन पर जाते थे, जहाँ के अधिकतर व्यक्ति

अंग्रेजी भाषी होते थे। वहाँ ताश आदि खेलने के बाद वह रात को क्लब से देर से घर आते थे। मैं सोचता हूँ कि माँ उनसे इस तरह अलग रहती थीं, मानो पिताजी भी अंग्रेज ही हों।

उनके मित्रों और सम्बन्धियों की आशा के विपरीत माँ की पहली सन्तान एक पुत्री हुई, जिसका सारा दायित्व उन लोगों ने माँ पर ही डाल दिया। दूसरी और तीसरी सन्तानें भी लड़कियाँ ही हुईं। पुत्र की आशा न रहने के कारण कुछ लोगों ने सम्बन्ध-विच्छेद तक की सलाह दी, लेकिन पिताजी का प्रेम माँ तथा घर के प्रति निरन्तर बढ़ता चला गया तथा उन्हें इन तीनों लड़कियों से बहुत प्रेम हो गया। वास्तव में उनकी आदतें बिगाड़ने के लिए उत्तरदायी वही थे।

आखिर एक पुत्र हुआ जिसका उत्सव बड़े जोश के साथ मनाया गया। पश्चात् उसके चरम प्रभाव को कम करने के लिए मेरा जन्म हुआ। मेरे जन्म पर मेरे भाई ओमप्रकाश के जन्म से भी अधिक व्यक्ति उपहार लेकर मुझे देखने आए।

एक ओर मेरी माँ के पिता-माता अधिक जनसंख्या वाले लाहौर नगर में मध्यम वर्ग के परिवार में रहे थे और दूसरी ओर मेरे पिता का बचपन गाँव के स्वच्छन्द वातावरण में बीता था। उनके बाबा रावी के किनारे स्थित एक गाँव के मुखिया थे। छोटे पैमाने पर वे एक परोपकारी आदमी थे तथा गाँव के अन्य व्यक्ति उन्हें प्रेम तथा श्रद्धा से देखते थे। अपनी मृत्यु से पूर्व अपनी आधी भूमि उन्होंने ब्राह्मणों को दे दी थी तथा आधी की व्यवस्था का कार्य अपने सबसे बड़े पुत्र को सौंप दिया था।

गाँव की परम्परा के अनुसार सबसे बड़े पुत्र को ही समस्त परिवार की देख-भाल करनी होती थी। अतः मेरे बाबा, लालाजी, के कंधों पर अपने दोनों भाइयों तथा अपने सात बच्चों वाले परिवार का भार आ पड़ा। उनके सबसे बड़े पुत्र मेरे पिताजी थे। इस मिले-जुले परिवार ने एक काफी बड़े कुनबे का रूप धारण कर लिया था, जो भारत की संयुक्त परिवार-प्रणाली-प्रथा का एक उदाहरण था।

अपने इस कुनबे के अनुभवों के सम्बन्ध में बतलाते हुए मेरे पिताजी कहा करते हैं कि यह 'गाँव के भीतर एक छोटे-से गाँव के समान था'। वे बतलाते हैं कि बहुत-से सम्बन्धी हमसे मिलने आया करते थे और कभी-कभी तो उनकी संख्या परिवार के सदस्यों से दुगनी हो जाती थी। उस समय आतिथ्य का अर्थ बड़े पैमाने पर लगाया जाता था। लोग महीनों ठहरे रहते थे और उनके खाने की व्यवस्था

मेरी दादी तथा उनकी लड़कियों को ही करनी पड़ती थी। लालाजी को अपने पिता की समस्त उदारता विरासत के रूप में मिली थी। वह अतिथियों को दादी, भाभीजी, के पास भेज देते थे, जिन्हें किसी न किसी तरह उनका प्रबन्ध करना ही पड़ता था। एक दिन बाबाजी ने महीने के बीच में, जब घर की समस्त खाद्य-सामग्री लगभग समाप्त हो चुकी थी एक पड़ोसी को उनके पास भेज दिया। भाभी जी जानती थीं कि महीने के अन्त तक उन्हें सामान चलाना है और एक-एक दाना बचा कर ही ऐसा करना सम्भव था। उन्होंने उस पड़ोसी से अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए समझा दिया कि वे कुछ नहीं दे सकतीं। लेकिन जब लालाजी को इसका पता चला तो वह बहुत बिगड़े और बोले मेरा घर हमेशा भरा-पूरा रहा है। इस तरह जब भी घर में किसी वस्तु का अभाव होता था तो परिवार की स्त्रियों को ही भूखा रहना पड़ता था।

परिवार के सात बच्चों में से छः लड़के थे तथा लाला जी ने इस बात का निश्चय कर लिया था कि उनमें से हर एक को विश्वविद्यालय तक शिक्षा मिले। वास्तव में गाँव में रहने वाले एक सीमित साधनों वाले व्यक्ति के लिए, जहाँ ८५ प्रतिशत जनता अशिक्षित हो, यह बड़ी ही ऊँची आकांक्षा थी। जब बच्चे स्कूल जाने लायक हुए तो उन्होंने गाँव से दो मील दूर स्थित एक सरकारी स्कूल में पढ़ाना आरम्भ कर दिया। रोज़ सुबह अपना घर का काम-काज समाप्त करने पर उन्हें यह फासला पैदल चलकर तय करना पड़ता था। वापस आती बार पेड़ के नीचे बैठकर वे स्कूल में दिया गया घर का काम खत्म कर लेते थे।

लालाजी उनके साथ हमेशा बच्चों के समान नहीं, बल्कि वयस्कों के समान व्यवहार करते थे और नौ वर्ष की अवस्था होने पर मेरे पिता जी को छोटे भाइयों की देखभाल का काम सुपुर्द कर दिया गया था, जिससे कि वह भाइयों के सम्मुख अच्छा उदाहरण रख सकें। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उन्होंने लाहौर के गवर्नमेण्ट कालेज में चिकित्सा विज्ञान की पहली कक्षा में प्रवेश किया। इंटरमीडियेट पास करने के बाद उन्होंने लाहौर के किंग एडवर्ड मेडिकल कालेज में दाखला ले लिया। जहाँ उन्होंने शिक्षा तथा खेल-कूद—दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति तथा श्रेष्ठता का परिचय दिया। दोनों गुणों का एक व्यक्ति में मिलना सचमुच बहुत कम होता है।

मेरे पिता जी बड़े महत्वाकांक्षी तथा स्वतन्त्र विचारों के व्यक्ति थे। अप्रल १९१९ में जब गांधी जी को अंग्रेजी सरकार द्वारा लगाया प्रतिबन्ध तोड़ कर

पंजाब में प्रवेश करने पर गिरफ्तार कर लिया गया तो उन्होंने भी सरकार की इस दमन पूर्ण नीति का विरोध करने के लिए कालेज के विद्यार्थियों की ओर से संगठित हड़ताल में भाग लिया। अतः उनको योग्यता के कारण मिलने वाली छात्रवृत्ति बन्द हो गई तथा उन्हें एक वर्ष के लिए उसी कक्षा में रोक लिया गया। यद्यपि इन सज़ाओं की जाँच-समिति की जाँच के बाद, उनकी सज़ा तो रद्द कर दी गई किन्तु उनको छात्रवृत्ति फिर नहीं मिली।

१६२० में औषधि-विज्ञान तथा शल्यचिकित्सा की डिग्री लेने के बाद उनका नाम ब्रिटिश मेडिकल रजिस्टर में लिखा गया। तब वे ऊष्ण कटिबंधीय औषधि विज्ञान तथा जन-स्वास्थ्य में विशेष अध्ययन करने इंगलैंड चले गए। इस सम्बन्ध में सरकारी परामर्शदात्री समिति ने ब्रिटिश विद्यालयों में दाखिल होने वाली कठिनाई के बारे में बतलाया था, फिर भी पिताजी चले ही गये।

हमारे परिवार में मेरे पिता जी ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने समुद्र पार करने का साहस किया था। लाला जी को छोड़कर सभी सम्बन्धी उनके इंगलैंड जाने के विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि उनकी जाति नष्ट हो जाएगी तथा इस प्रकार की शिक्षा से उनके जीवन का क्रम तथा जातीय वंश-परम्परा पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ेगा। वापस लौटने पर वे निश्चित रूप से भारतीय समाज के उपयुक्त नहीं रहेंगे। यह भी कहा गया कि अगर कहीं वह इंगलैंड में ही विवाह करके रहने लगें तो इसका प्रभाव उनके छोटे भाइयों की शिक्षा पर बहुत बुरा पड़ेगा। मतलब यह कि परिवार के सीमित साधनों को देखते हुए यह काम बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं समझा गया। लेकिन इसके बावजूद वह इंगलैंड चले ही गए।

इंगलैंड में मेरे पिता ने लन्दन विश्वविद्यालय में अध्ययन शुरू किया। वहाँ जन-स्वास्थ्य में अपनी शिक्षा सबसे कम समय में समाप्त कर ली। इसके बाद वह भारत आ गए और जैसे ही वह बम्बई में उतरे उनके छोटे भाई जिन्होंने भारत में चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन समाप्त कर लिया था, इसी विषय का अध्ययन करने के लिए इंगलैंड के लिए रवाना हो गए।

मेरे पिता को म्यूनिसपैलिटी के एक नवनिर्मित विभाग में स्वास्थ्य अधिकारी की जगह मिल गई। अब क्योंकि परिवार में कमाने वाले वह सर्वप्रथम थे, अतः उन्हें केवल अपने छोटे भाइयों की शिक्षा में ही सहायता नहीं करनी पड़ती थी किन्तु परिवार के खर्च के लिए भी देना पड़ता था। १६२२ में वे योरोप तथा

अमेरिका का भ्रमण करने वाले पहले रॉकफ़ेलर फ़ेलो चुने गए। इस प्रारम्भ से उन्होंने भारत में एक अच्छे क्षेत्र में पदार्पण किया। उनके कारण उनके भाइयों तथा भांजों को भी अपनी शिक्षा पूर्ण करने में सहायता मिली। प्रारम्भ से ही लाला जी ने उनमें शिक्षा के प्रति रुचि तथा प्रेम उत्पन्न कर दिया था तथा इसके बाद भी तब तक चैन से नहीं बैठे जब तक शिक्षा प्राप्त करने योग्य उनके परिवार के सारे सदस्य शिक्षित नहीं हो गए।

यद्यपि मेरे मामले में ऐसी कठिनाई थी जो हल नहीं होती दिखती थी, फिर भी उनका यह दृढ़ निश्चय था कि वे हर सम्भव कोशिश अवश्य करेंगे। उन्होंने अन्धेपन से सम्बन्धित सारा उपलब्ध साहित्य पढ़ा। उन्हें विदित हुआ कि भारत के अधिकतर अन्धे अपनी जीविका के लिए भीख माँगते हैं, या पान, बीड़ी की दुकान खोलकर सुपारी, पान तथा सिगरेट बेचने का काम करते हैं। उनका दृढ़ निश्चय था कि मेरा भविष्य ऐसा नहीं होगा। तथा उन्होंने बहुत-से प्रमुख शिक्षा-विशेषज्ञों से परामर्श करने के लिए पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया। उनके उत्तरों से अधिक आशा नहीं बँधी। अन्धों के लिए शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ और शिक्षक आदि बहुत सीमित थे और कभी-कभी तो सभी श्रेणियों और सभी उम्रों के अन्धों को एक साथ कक्षाओं में बिठला दिया जाता था, जिससे वे आधे पागलखाने-से मालूम पड़ने लगते थे।

मेरे पिता फिर भी निरन्तर उद्योग करते रहे क्योंकि, वह जानते थे कि मेरे घर पर रहने का परिणाम अति दुःखद होगा। उन्हें इस बात का भी पूर्व आभास हो गया था कि मुझे आम बच्चों के साथ खेलने में कठिनाई होगी तथा मेरी माँ को घर से दूर जाने पर हमेशा डर बना रहेगा।

आखिर उन्होंने बम्बई में दादर अन्ध विद्यालय के प्रिंसिपल डा० आर० एम० हालदार के सम्बन्ध में सुना। मेरे पिता ने उन्हें परामर्श के लिए लिखा। डा० हालदार ने मेरे सम्बन्ध में असाधारण रुचि दिखलाई तथा वचन दिया कि अगर मैं उनके स्कूल में दाखिल हुआ तो वे मेरी विशेष देखभाल करेंगे और अपनी व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी पर मुझे वहाँ रखेंगे।

जब माताजी को मुझे दादर स्कूल में भर्ती कराने के पिताजी के निश्चय का पता चला तो वह बहुत घबराई। वह बम्बई कभी नहीं गई थीं और वह उनके लिए एक विदेश के समान था। उन्हें मुझे घर से ६०० मील दूर गरीब और अनाथ

बच्चों के साथ पढ़ने भेजने में कोई तथ्य नजर नहीं आता था। आखिर घर में रह-कर एक साल में मेरा और सुधार होना निश्चित है। लेकिन इसके उपरान्त भी उन्हें पिताजी की बुद्धिमत्ता में विश्वास था तथा अन्त में उन्होंने चुपचाप उनका कहना मान लिया।

१५ फरवरी, १६३६ को जब मैं लगभग पाँच वर्ष का था, मेरे माता तथा पिता मुझे करनाल स्टेशन पर ले गए। वहाँ मुझे जीवन में प्रथम बार रेलगाड़ी पर सवार होना था। मैं अपने पिता के एक मित्र के साथ, जो बम्बई जा रहे थे, जाने वाला था। जब इंजन ने सीटी दी तो मेरे पिताजी ने मुझसे कहा, 'तुम अब बड़े हो गये हो।' इसके बाद उन्होंने अपने दोनों हाथों में मेरा हाथ लेकर मेरी दोनों हथेलियों को जोड़ते हुए धीरे से हिन्दू अभिवादन 'नमस्ते' गुनगुनाया। फिर मुझे अनुभव हुआ कि उन्होंने मुझे गोद में उठाकर अपने मित्र को दे दिया और गाड़ी चलने से पहले मैंने झुककर माँ को चूम लिया।

हम एक्सप्रेस गाड़ी पर सवार हुए थे और हमने बम्बई तक का फ़ासला डेढ़ दिन में तय कर लिया। यात्रा के सम्बन्ध में मुझे इतना ही याद है कि अपने चारों ओर के अपरिचित वातावरण में मैं अपने को खपा नहीं पाया था, इसलिए कभी तो जोर-जोर से रोने लगता था और कभी सो जाता था।

मेरे चचेरे भाई प्रकाश उस समय बम्बई में थे। वह मुझे लेने स्टेशन पर आए। हमने स्टेशन से स्कूल तक के लिए एका ताँगा कर लिया। मुझे अपनी जानी-पह-चानी सवारी घोड़ागाड़ी की सवारी करने में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हुआ क्योंकि इसके सहारे मैं अपने अतीत की स्मृतियों को ताजा कर सकता था। लगभग एक घंटे के पश्चात् ताँगे की चाल धीमी पड़ गई तथा हमने धुएं से भरे, घने बसे दादर के इलाके में प्रवेश किया। ट्राम गाड़ियों की घण्टियों की लयबद्ध ध्वनि, प्रत्येक स्टेशन पर कंडक्टरों का शोर तथा सँकरी पटरियों पर पहियों के चलने की आवाज़ पिताजी के खुले बँगले के साथ वाली नहर के पानी की कल-कल ध्वनि के सर्वथा विपरीत था। डरकर मैं चचेरे भाई प्रकाश से घर वापस भेज देने की प्रार्थना करने लगा। आखिरकार हम एक इमारत के फाटक पर पहुँचकर रुक गये। प्रकाश ने बताया कि वह एक सँकरी तीन मंजिल की इमारत है, जिसके एक ओर एक मिल है और दूसरी ओर छोटी-छोटी दुकानों का मुहल्ला। मैं अब स्कूल पहुँच गया था।

उस समय अपरान्ह के लगभग साढ़े चार बजे थे और विद्यार्थियों ने अभी

अपना नाश्ता समाप्त किया था। फर्श से उठकर उन्होंने बम्बई की भाषा, मराठी, में मेरा अभिवादन किया जिसे मैं समझ नहीं सका। हम भीड़-भाड़ से भरे खाने के कमरे से होते हुए डा० हालदार के कमरे में पहुँचे। अपनी ऊँची आवाज़ में उन्होंने मुझसे अंग्रेजी में कुछ कहा, जिसे मैं नहीं समझ सका। इसके बाद बिना मेरी ओर ध्यान दिए वह मेरे भाई प्रकाश से बात करने लगे। उसी समय मैं जान गया कि कोई, मुझसे ज्यादा उम्र का लड़का, आया और मुझे अपने साथ ले गया।

जहाँ वह मुझे ले गया वह दूसरी मंजिल पर स्थित कई लड़कों के रहने का कमरा था। उसने मुझे अपने बिस्तर पर बैठा दिया जो एक लोहे के फ्रेम पर तीन-चार लकड़ी के तख्ते डाल कर बनाया गया था। यदि उस पर एक सफेद चादर न बिछी होती तो वह एक बेंच-सी मालूम पड़ती। अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में उसने मुझे अपना नाम देवजी बतलाया। आठ वर्ष पहले जब वह इस स्कूल में आया था, तब वह मेरी ही उम्र का था। उसने मुझे बतलाया कि जब तक मेरे रहने का ठीक प्रबन्ध नहीं हो जाता, उसे मेरी देख-भाल करने के लिए कहा गया है। उसने बताया कि यह सोने का कमरा है और चूंकि अभी तक मेरे पास बिस्तर नहीं है, यद्यपि उसका प्रबन्ध किया जा रहा है, इसलिए तब तक के लिए मैं उसका बिस्तर प्रयोग कर सकता हूँ।

जिस समय हम वहाँ बैठे थे तथा देवजी का एकालाप जारी था, मैंने कुछ लड़कों के ज़ोर से हँसने की ध्वनि सुनी जो कमरे में आ रहे थे। देवजी ने उनसे मराठी भाषा में कुछ कहा। फिर मुझे अपने हाथों में उठा लिया, जिससे वे सारे लड़के मुझे भली प्रकार देख सकें जिनकी आँखों में जरा भी ज्योति बाकी थी। तब उनसे हाथ मिलाने के लिए उसने मुझे फर्श पर खड़ा कर दिया।

जैसे ही प्रत्येक विद्यार्थी आकर मेरा हाथ अपने कठोर हाथ से दबाता था तो मैं बड़ी नम्रता से अभिवादन लेता था। वे मेरे शंकित होने के भाव पर हँसे तथा उनमें से भास्कर नाम का एक लड़का जो अपने स्वर से नौ वर्ष का मालूम देता था, बोला, 'क्या तुम्हारी माँ ने तुम्हें हँसना नहीं सिखाया है ?' इस पर उनमें से कुछ एक दबे स्वर में फिर हँसे।

एक दूसरे लड़के ने, जिसका नाम अब्दुल था, मेरे दोनों हाथ अपने पास खींच लिये तथा उन्हें छूकर उनकी कोमलता का अनुमान लगाकर बोला, 'क्या तुमने कभी कोई काम किया है ?' मैं उसकी खुरखुरी तथा कठोर उंगलियों से अपने को

छुड़ाकर एक ओर मूर्ख के समान खड़ा हो गया और वे मेरी स्थिति का मजा लेते रहे।

उसी समय कमरे में डा० हालदार ने प्रवेश किया तथा उन सब लड़कों पर एक असाधारण नीरवता छा गई। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा तथा मुझे अपने पीछे-पीछे चलने को कहा और जब हमने कमरे को छोड़ दिया तो मुझे बड़ी खुशी हुई। हम एक दरवाजे को खोलकर भीतर गये और पीछे से उन्होंने उसे फिर बन्द कर लिया। इसके बाद हम सीढ़ियों से चढ़ते हुए उनके मकान में जा पहुँचे। उन्होंने अपनी पत्नी को बुलाकर बताया कि मैं आ गया हूँ और उनकी पत्नी ने मुझे गोदी में उठाकर चूम लिया। उन्होंने मुझे बतलाया कि वह मेरी चाची तथा डा० हालदार मेरे चाचा जी हैं और उन्होंने आशा व्यक्त की कि मैं उनके पास वैसे ही रहूँगा जैसे अपनी माँ के पास रहता था। मेरे खाने का इन्तजाम उनके व्यक्तिगत खाने के कमरे में हुआ, दूसरे लड़कों के साथ नहीं। इसके बाद डा० हालदार मुझे वापस उसी बड़े कमरे में ले आए, जहाँ मैं खाना खाने के कमरे से लौटकर आने वाले विद्यार्थियों का घबराहट के साथ इन्तज़ार करने लगा।

उसी दिन शाम को एक स्प्रिंगदार पलंग एक भारी गद्दे तथा मच्छरदानी समेत देवजी के बगल में बिछा दिया गया। उस दिन से मेरा नाम 'अच्छे गद्दे तथा कोमल हाथों वाला लड़का' पड़ गया। इसके बाद देवजी ने मुझे पलंग पर लिटा दिया और गद्दे के चारों ओर मच्छरदानी खोंस दी। मुझे नींद नहीं आ सकी, क्योंकि विद्यार्थी अभी भी एक नए लड़के के आने के कारण बदले हुए वातावरण से प्रभावित थे। वे बातें कर रहे थे कि कितनी मुलामयित से डा० हालदार ने मुझसे अपने पीछे चलने को कहा था और मैं कितने स्वच्छ वस्त्र पहने हुए था। अब्दुल अभी भी यही कह रहा था कि मेरे हाथ लड़कियों के हाथों के समान हैं तथा मैंने कभी कोई काम नहीं किया। उसी कोलाहल के बीच डा० हालदार के जोर से खाँसने की आवाज़ आई तथा एक बड़े विद्यार्थी ने सबको चुप करा दिया। डा० हालदार इतने में तेजी से कदम रखते हुए कमरे में दाखिल हुए तथा रोशनी बुझाते हुए उन्होंने अपनी ऊँची आवाज में सबसे कहा, 'सोने का समय हो गया है और अब किसी तरह का शोरगुल सुनाई पड़ा तो कड़ी सज़ा दी जाएगी।'

यह बड़ा अपरिचित-सा कमरा, डा० हालदार की मोटी आवाज तथा बहुत बड़ा बिस्तर जो कि मेरे माता-पिता के कमरे के मलायम बिस्तर से बिल्कल भिन्न

था; किन्तु फिर भी जल्दी ही मुझे नींद आ गई।

आधी रात में मैं सुबकता हुआ उठ बैठा तथा सारे दिन की घटनाएँ सामने आने लगीं। अपना सिर तकिए में छुपाकर मैं धीरे से रोने लगा। इसी बीच किसी ने मेरी मच्छरदानी खींची, वह देवजी था। मैं अपने तकिए से चिपक गया क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि देवजी मुझे रोते हुए देखे लेकिन उसने मुझे तकिए समेत उठा लिया।

मैं डर गया, कहीं अब्दुल तथा भास्कर ने मुझे रोते हुए न सुन लिया हो, लेकिन देवजी मुझे बाहर ले गया तथा सीढ़ियों पर बैठ गया। किसी तरह उसने मुझे सीढ़ियों के सहारे बिठा दिया और मुझसे बड़ी हमदर्दी जाहिर की। फिर उसने यह बतलाना शुरू कर दिया कि जब वह पहली बार स्कूल आया था तो उसे कैसा लगा था। उसने बतलाया कि मै बहुत जल्दी ही घर की याद भूल जाऊँगा और मुझे स्कूल बड़ा अच्छा मालूम पड़ने लगेगा। उसने मुझे उन सब खेलों का ब्योरा, जो स्कूल में खेले जाते थे, समझाया और बतलाया कि बहुत जल्दी ही मैं भी खेलने लायक हो जाऊँगा।

मुझे उस मनहूस इमारत में उसकी इस मधुर ध्वनि को सुनकर एक आशा की किरण का आभास मिला, साथ ही मैं उसकी टूटी-फूटी हिन्दी पर कुछ मुस्कराया भी। उसने मुझसे कुछ शब्दों का उच्चारण करने को कहा, फिर स्वयं उसी तरह उच्चारण करने की कोशिश करने लगा। जब मैं रोकर चुप हो गया तो उसने मुझे बतलाया कि कमरा छोड़कर हमने नियम का उल्लंघन किया है इसलिए हमें अब वापस लौट चलना चाहिए, जिससे कहीं ऐसा न हो कि कोई लड़का हमारी शिकायत कर दे। अतः हम पंजों के बल चलकर बिस्तर तक गए।

सुबह देवजी ने मुझे कपड़े पहनने में सहायता दी। अब मैंने स्कूल के दैनिक जीवन-क्रम में प्रवेश किया। कुर्सियाँ बुनने के कार्य को छोड़कर, जो मेरे पिता जी के द्वारा वर्जित कर दिया गया था, मुझे स्कूल में बतलाए गए सभी कार्य नियमित रूप से करने पड़ते थे।

मैं प्रथम कक्षा में गया जहाँ कि हमने मरे हुए जानवरों तथा पक्षियों को देखने में समय बिताया जिससे उनकी आकृति हमारे मस्तिष्क में बैठ जाए। एक गिनती गिनने वाले यन्त्र (जिसके सीखचों में लकड़ी की गोलियाँ लगी रहती हैं) की सहायता से हमने गिनती गिनना सीखा। पहले दिन मैंने अंग्रेजी के अठारह अंक

तक सीख लिये तथा मास्टर जी ने सारी कक्षा के सामने मेरी बड़ाई की। अपनी हिसाब की कक्षा में मैंने बड़ी शीघ्र उन्नति की तथा साथ ही पशुओं और पक्षियों के नाम सुनकर उनकी आकृतियाँ ठीक-ठीक बताने लगा।

जब दूसरे लड़कों को मेरी प्रगति का पता चला तो उन्होंने मुझे चिढ़ाना कम कर दिया और खेल के समय मुझे अकेले छोड़ देने के बजाय मुझे खेल में शामिल होने का निमंत्रण देने लगे। कक्षा में मास्टर लोग भी दूसरे लड़कों से प्रश्नों के उत्तर न पाने पर मुझसे पूछने लगे। इस तरह अपनी पहले की शारीरिक कमी की पूर्ति मैंने कक्षा में भली प्रकार कर ली।

हमारे स्कूल में कुछ समय तक यह एक नई बात चलती रही कि हर कोई मुझसे अपने को पंजाबी भाषा सिखाने को कहता था क्योंकि पंजाब प्रान्त का वासी वहाँ केवल मैं ही था। उन्हें यह भाषा बड़ी कठिन प्रतीत हुई और मेरे शुरू करते ही वे भाग खड़े होते थे। उनका हमेशा यही एक सवाल होता था कि मैंने एक ही सप्ताह में मराठी कैसे सीख ली ?

मेरे कमज़ोर शरीर के प्रति अब्दुल का तिरस्कार का भाव फिर भी कम नहीं हुआ। वह अक्सर मेरे कोमल हाथों, मेरे कमजोर शरीर और खेल-कूद में अयोग्यता का मज़ाक उड़ाया करता था। एक दिन वह खाने के कमरे से खाना खाकर आया ही था कि मैं भी हालदार परिवार के साथ खाकर लौटा। वह मुझसे पूछने लगा कि मैंने क्या खाया है। मैंने उसे बताया कि मैंने ताज़ी सिकी हुई सफेद रोटियाँ तथा गोश्त, जो डा० हालदार को बहुत पसन्द है, खाया है। इस पर उसने व्यंगपूर्वक नाक से साँस ली और दोस्तों को बुलाकर बताया कि मैंने क्या खाया है, जिससे सबको मालूम हो जाय कि औरतों की तरह मैं कितना ज्यादा खाता हूँ।

आवेश में आकर मैंने उसकी बेंत की कुर्सी काट दी और छिप गया। वह मुझे ढूँढ़ने की कोशिश करने लगा। मुझे डर था कि तारकनाथ, जो अब्दुल का पक्का मित्र था तथा अपनी क्षुद्रता के लिए प्रसिद्ध था, कहीं उसे मेरा पता न बता दे, किन्तु मेरे सौभाग्य से उसने सदाचरण के नियमों अर्थात् 'किसी आधे अंधे व्यक्ति को दो अंधों के झगड़े में नहीं बोलना चाहिए' का पालन किया। इसके लिए मैं उसका आभारी हूँ।

अब्दुल ने मेरी साँस की ध्वनि तथा पदचाप को सुनने का प्रयास किया। जंगलीपन से भरी हरकतें जारी रहीं और मैं चुपचाप चलता हुआ कमरे में देवजी

के पास चला गया। कुछ लोग मेरी इज्जत करने लगे और मेरे साथी बन गये।

शुरू के महीनों में, अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के अतिरिक्त अनुशासन के बारे में भी मुझे बहुत कुछ सीखना पड़ा। अब मुझे अपना बिस्तर स्वयं तैयार करना पड़ता था, तथा मच्छरदानी और गद्दे न रखने की उपयोगिता का ज्ञान मुझे अपने प्रथम अनुभव से ही हुआ। मुझे अपने बटन स्वयं टाँकने पड़ते थे, जूतों पर स्वयं पालिश करनी पड़ती थी। नियमित समय पर भोजन करना पड़ता था तथा घंटी की आवाज सुनते ही उठ जाना पड़ता था। ज्यों-ज्यों मैं स्कूल के जीवन का अभ्यस्त होता गया, सारे काम मेरे लिए आसान होते गये।

स्कूल में पाँच महीने रहने पर मैं व्यवस्थित हो ही पाया था कि गर्मियाँ आ गईं और मेरे वापस घर जाने का समय आ गया। प्रकाश मुझे लेने के लिए आये तथा हम दोनों साथ-साथ लाहौर के लिए रेलगाड़ी में सवार हो गए, जहाँ हम लोग आजकल रह रहे थे; क्योंकि मेरी अनुपस्थिति में मेरे पिता की उन्नति होकर तबादला हो गया था। मैं समझता था कि स्कूल के कोलाहल तथा हलचल से पूर्ण दिनों के स्थान पर घर की दुःखद नीरवता का अनुभव होगा और मेरी इच्छा गाड़ी से उतर कर वापस स्कूल जाने की हो रही थी। लेकिन बाद में अंधेपन के कारण जब दुखी माता का ध्यान आया तो मैं घर न जाने की बात सोचने के कारण मन ही मन बहुत शर्मिन्दा हुआ। फिर भी मुझे स्कूल का नया स्वतन्त्र वातावरण अधिक सुखद मालूम होने लगा था और अब्दुल के व्यंग भी मुझे घर के शान्त, अकेले तथा नीरस जीवन से अधिक अच्छे प्रतीत हो रहे थे।

यथार्थ और स्वप्न | २

मेरे माता-पिता मुझे स्टेशन पर मिले और मैंने अपनी माँ को बहुत प्रसन्न-चित्त पाया। उन्हें मेरी वापसी से अत्यधिक प्रसन्नता हुई थी और घर पर भी एक उन्मुक्त तथा प्रसन्नता के वातावरण ने मेरा स्वागत किया। वहाँ अपनी बहन उम्मी की स्वच्छन्द हँसी को फिर से सीखना था तथा निम्मी के नरम तथा गरम हाथों का फिर से अनुभव करना था। बहन पाम की आज्ञाएँ पालन करने का अभ्यास करना था, जिनका स्थान मेरी माँ के पश्चात् दूसरा था। सभी बहनों ने मुझसे मेरी स्कूल की कार्यवाहियों का ब्योरा बार-बार पूछा तथा मैंने भी बार-बार अपनी तथा अब्दुल वाली कथा का वृत्तान्त रोचक ढंग से उन्हें तथा उनकी सहेलियों को बतलाया। उन्हें खुशी हुई कि मैंने एक बड़े लड़के को सफलतापूर्वक हरा दिया था और जब मैंने उन्हें देवजी के बारे में बतलाया तो उनका हृदय पसीज उठा।

सुबह अपने छोटे-से हाथ से माँ का बड़ा-सा हाथ पकड़कर उनके साथ लगभग दौड़ते हुए हमेशा घर में चीजें देने वाले हलवाई के यहाँ जाने में मुझे बड़ा मज़ा आता। हलवाई की दुकान के पास पहुँचते तो बरतनों से निकल रही भाप की गंध आने लगती, चाशनी बनाने वाले बड़े-बड़े चमचों की हलकी, निश्चित आवाज़ सुनाई पड़ती और ताजी मिठाइयों की सुगन्ध नासापुटों में भरने लगती। दुकान चबूतरे की तरह बाहर सड़क पर निकली हुई थी। दुकान पर पहुँचकर माँ मुझे गोदी में उठाती और थालों—बड़े-बड़े तश्तों, जिन पर विभिन्न आकार-प्रकार की मिठाइयाँ और भुँजी हुई मूँगफली आदि रखी रहती थीं—पर मेरा हाथ रख देतीं। मैं हलवाई की दुकान के आस-पास की विशेष प्रकार की हवा में साँस ले रहा होता और हलवाई अपने मोटे और खुरदरे हाथों से मुझे अनेक प्रकार की मिठाइयाँ चखाता और माँ मुझे पकड़े रहतीं जिससे मैं झुक सकूँ—और उस समय मैं अपने को किसी राजकुमार से कम न समझता।

कभी-कभी माँ मुझे सड़क पार करके हलवाई की दुकान पर जाने के लिए छोड़ देतीं। हलवाई मुझे अपने पास थालियों मे घिरे हुए आसन पर बिठा लेता और कहता, 'साहब, आपका मुँह, नाक, कान सब नक्श बिल्कुल एक हलवाई जैसे हैं, बस आपका पेट थोड़ा और बड़ा होना चाहिए।' मैं अपने चिपचिपे हाथों से एक के बाद दूसरी मिठाई उठाकर पूरी की पूरी अपने मुँह में रख लेता। मैं हलवाई को एक राजसी व्यक्ति समझता था। हम इतनी मिठाइयाँ लेकर लौटते थे कि मैं अपने नरसरी के कमरे में भाई ओम तथा बहनों के लिए एक छोटी-सी दुकान खोल लेता।

शाम को हम हमेशा लारेन्स गार्डन घूमने जाते, जहाँ के मिट्टी के छोटे-छोटे ढ़ह घनी घास से ढके होते, बच्चे शोर मचाते हुए आँख-मिचौनी खेला करते, चक्कर लगाने वाले झूले तेजी से घूमा करते और लकड़ी के तख्ते का झूला 'भटाक' की आवाज़ के साथ जमीन से टकराता रहता। मैं भी दौड़ता और खेलता, लेकिन किसी न किसी बहन को हमेशा मेरे पास रहना पड़ता। ऐसा मालूम पड़ता था कि आइसक्रीम बेचने वाला आदमी हर जगह मौजूद रहता था, जो छोटे-छोटे प्यालों में आइसक्रीम बेचता था। मेरी बहनें आइसक्रीम के बहुत-से प्याले मुझे अपनी जेब में रख लेने देती थीं। दादर में रह लेने के बाद इस विशाल बाग़ की खुली हवा बड़ी सुहानी मालूम पड़ती थी। नौकर मेरा बिस्तर लगाते थे और जूतों पर पालिश करते थे, और माँ मुलायम हाथों से मुझे नहलातीं, और यह सब मुझे बहुत अच्छा लगता। मुझे खुशी थी कि अब्दुल यह सब देखने को यहाँ नहीं था।

गर्मी समाप्त हुई और एक बार फिर पिताजी ने मेरे हाथों को पकड़कर नमस्ते कहा। माँ ने मुझे चूमा और मैं एक बार फिर पिता जी के एक दूसरे मित्र के साथ बम्बई के लिए रवाना हो गया।

स्कूल के दूसरे वर्ष में पहुँचने पर मेरा अपना एक छोटा-सा खेत हो गया था जिसमें सब्जियाँ बोया करता। मैं अपना फालतू समय अन्य लड़कों के समान सब्जियों की देखभाल में व्यतीत किया करता था।

मैं एक हिसाब की स्लेट पर गुणा-भाग करना और अंग्रेजी में 'ब्रेल'[1] लिखना-पढ़ना सीखने लगा। उस समय 'ब्रेल' में हिन्दी के अक्षर नहीं थे। मैं जान

१. अंधों के लिए अक्षर-ज्ञान की विशेष पद्धति।

गया कि 'ब्रेल' में हर अक्षर छः बिन्दुओं के विभिन्न प्रकार के सम्मिलन से बनता है और 'ब्रेल' के टाइपराइटर में सिर्फ छः कुंजियाँ होती हैं।

अब अपने स्वास्थ्य में कुछ सुधार होने के कारण मैंने खेलों में पहले से अधिक भाग लेना शुरू कर दिया। आम बच्चों से, दौड़ के अतिरिक्त, हमारे खेल ज़रा भी अलग नहीं होते थे। कपड़ा मिल के पीछे एक खाली मैदान था, जिसमें लगभग सौ गज लम्बे आधा दर्जन तार खम्भों से बंधे हुए थे। हम वहाँ तारों में लगे छल्लों की सहायता से दौड़ा करते थे। यह एक अच्छा प्रतियोगितात्मक खेल सिद्ध हुआ। क्योंकि जीतने वालों को न केवल पारितोषिक ही मिलता था बल्कि अन्य साथियों से मान्यता भी मिलती थी। अभ्यास हम रोज करते थे। लेकिन वास्तविक प्रति-योगिता एक ही आकार-प्रकार वाले विद्यार्थियों में हर दो महीने के पश्चात् ही होती थी। तारों के एक सिरे पर हम सब एक लाइन में खड़े हो जाते थे तथा हममें से हर एक को डा० हालदार एक बिस्कुट देते थे। जब वह 'दौड़ो' कहते थे तो हमें दौड़ प्रारम्भ करने से पहले बिस्कुट को समाप्त करना होता था। मैं शुरू-शुरू में भास्कर के बराबर तेज नहीं दौड़ पाता था फिर भी मैं बिस्कुट अधिक शीघ्रता से समाप्त कर पहले दौड़ना आरम्भ कर देता था। पतझड़ की प्रतियोगिता में मैं सर्वप्रथम आया। रस्साकशी तथा एक गेंद, जिसके भीतर फंटियाँ लगी थीं, के द्वारा हमारा एक और शारीरिक व्यायाम हो जाता था। चौसर, शतरंज तथा ताश आदि हम भीतर खेला करते थे।

ऐसी दिनचर्या और कुछ मित्रों के होने पर कोई भी आदमी खुश रह सकता था। लेकिन लड़ाई शुरू हो जाने के कारण चीजें महँगी हो गई तथा हालदार परिवार में खाने का स्तर धीरे-धीरे नीचे ही गिरता गया। अपना कम वेतन होने के कारण उनकी कठिनाई बढ़ गई तथा उन्हें खाना सम्हाल-सम्हाल कर खर्च करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके अतिरिक्त मक्खन तथा गोश्त जैसी चीजों पर राशन भी लग गया था। इस कारण तथा बम्बई की नम तथा खराब जलवायु और अपने बुरे स्वास्थ्य के कारण अपने बम्बई प्रवास के तीन सालों का लगभग आधा भाग मुझे वहाँ के एक अस्पताल में बिताना पड़ा, और मलेरिया से लेकर टाइफाइड तक हर बच्चों की बीमारी का शिकार बनना पड़ा।

एक के बाद दूसरी बीमारी के कारण मुझे अस्पताल और तेज बुखार की सिर्फ एक धुँधली-सी याद है। दादर पहुँचने के बाद मेरे प्रारम्भिक

दिनों के सुखद अनुभव मेरे स्मृति-पट पर जिनका अमिट प्रभाव पड़ा है— यहाँ आकर अर्द्धस्वप्न और अर्द्धयथार्थ की एक गोलमोल दुनियाँ में बदल गए। हर अगले महीने पिछले महीने से अधिक बार अधिक समय के लिए मैं अस्पताल जाने लगा, यहाँ तक कि अस्पताल ही घर बन गया और स्कूल एक अपरिचित, काल्पनिक जगह बन गई। मुझे भली प्रकार याद है कि कोई व्यक्ति एक चिपचिपे चम्मच से मुझे कम उबले हुए अंडे खिलाया करता था, गर्म, खुश्क। मुँह में ये मुझे बड़े खराब मालूम पड़ते थे और उन्हें खाकर मुझे कै होने लगती थी। मैं चाहता था कि फिर कभी उबले हुए अंडे मुझे खाने को न मिलें। मुझे यह भी याद है कि कितनी उत्सुकता से मैं अपने माता-पिता के आने की प्रतीक्षा किया करता था और किस तरह उनके न आने पर मुझे बार-बार निराश होना पड़ता था। जब कभी मैं पूछता कि मेरी बीमारी के बारे में उन्हें सूचना दी गई है या नहीं, तो उत्तर हमेशा टालमटोल वाला ही दिया जाता।

उस एकान्त अस्पताल में मृत्यु भी ज्यादा दूर नहीं मालूम पड़ती थी और एक बार फिर मेरे संरक्षक केवल डाक्टर और नर्स ही रह गये थे। यह बीमारी दूसरी दुखद घटना थी और मुझे डाक्टरों और नर्सों की सुरक्षा अविश्वसनीय ही मालूम देती थी। केवल एक मुख था, एक नर्स, जिसका नाम और स्वर दोनों अब मुझे याद नहीं है। लेकिन उसके स्नेह और सहृदयता की स्मृति से एक स्पष्ट, आभावान आकृति मेरे सामने आज भी आ जाती है।

मुझे याद है कि वह अक्सर अपनी छुट्टी के समय भी मेरे पास आ जाया करती थी और अगर मैं सोया होता था तो भी वह मेरे पास बैठकर मुझे देखा करती थी। जब मैं जगता तो वह अपने बचपन की कहानियाँ सुनाकर मेरा मनोरंजन किया करती थी। फिर वह प्रार्थना तथा अतीत के किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में बतलाया करती। वह मेरी माता तथा बहनों के बारे में प्रश्न किया करती और मुझे यकीन दिलाती कि वे सब मुझे प्यार करते हैं और यद्यपि वे मेरे पास नहीं हैं किन्तु सोचा वे हमेशा मेरे बारे में ही करते हैं। जब कभी मुझे छींक आ जाती तो वह कहती कि यह इस बात का पक्का सबूत है कि वे सब मेरे बारे में ही बातें कर रहे हैं, और अगर मैं भी फौरन उनके बारे में सोचना शुरू कर दूँ तो उन्हें भी छींक आ जायेगी।

वह अपने को ईसाई बतलाती थी और कहती थी कि वह मेरे लिए अपने

ईश्वर से प्रार्थना करेगी तथा मुझे ज़रा भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उसका कथन था कि उसका ईश्वर सदा बीमारों तथा अनाथों की देखभाल करता है और कोई भी चमत्कार उसकी शक्ति से बाहर नहीं है। वह मेरे लिए फल और, यदि मैं ठीक होता तो, मिठाई लाया करती थी। मैं अक्सर अपने से पूछा करता हूँ कि मैंने उसे धन्यवाद भी दिया था या नहीं। कुछ समय बाद मेरे लिए वह कुर्सी या पलंग के ही बराबर हो गई और मै सोच ही नहीं सकता था कि वह मेरे पास उपस्थित नहीं है। मेरे लिए वही अस्पताल बन गई और उस जगह के प्रति मेरा भय दूर हो गया।

जब मैं लौटकर स्कूल पहुँचा तो मुझे मालूम हुआ कि मैं कितना कमजोर हो गया था और कितनी जल्दी थक जाता था। मुझे बड़ी लज्जा आती थी और खेल के घण्टे से मुझे भय लगता था, क्योंकि मैं जानता था कि मैं दूसरों की बराबरी नहीं कर सकूँगा।

एक दिन दो लड़के एक ही झूले पर खड़े होकर झूल रहे थे। वे पेंग बढ़ाते चले गए यहाँ तक कि जंजीरों के हिलने से तेज घर्षण की ध्वनि निकलने लगी। मैं इतना बतला सकता हूँ कि वह बहुत ऊँचाई तक झूल रहे थे। उन्हें झूलते हुए अपनी पारी से काफी अधिक समय हो गया था तथा मेरे बार-बार कहने पर भी वे नहीं रुके। मैं जंजीर पकड़ने के लिए दौड़ा। जब उन्होंने मुझे आते हुए सुना तो अपने बदन को एक ओर झुकाकर जंजीर को ऐसा झटका दिया कि वह मेरी पहुँच से बाहर हो गई। अपनी नाकामयाबी पर झुँझलाकर मैं झूले के और पास चला गया, जिसका परिणाम सिर्फ यह हुआ कि मेरा सिर तख्ते से टकरा गया। इसके बाद मुझे डा० हालदार के आने, एम्बूलैन्स तथा अस्पताल की जानी-पहचानी कृमिनाशक गन्ध की याद दादर के खेल के मैदान में पड़ने वाले धुन्ध से कम साफ़ तथा स्पष्ट प्रतीत होती थी।

जब मैं जागा तो वहाँ मेरी नर्स नहीं थी। मेरे मन में परेशान करने वाले विचार आने लगे। क्या उसने यह समझकर कि मैं कभी नहीं आऊँगा, अस्पताल छोड़ दिया है ? अपने गर्व पर लज्जित होकर मैंने सोचा कि उसे और भी बहुत-से बीमारों की परिचर्या करनी पड़ती है। सहसा, उसी तरह के भय और घबराहट का अनुभव मुझे फिर होने लगा जैसा दादर के स्कूल में पहली रात को हुआ था।

खून काफी निकल जाने के कारण कमजोरी तथा अपने इन भयप्रद विचारों से

प्रभावित मैं अर्द्धनिद्रितावस्था में लेटा रहा। तब मुझे वही कोमल पग-ध्वनि सुनाई पड़ी, जिसका मैं अभ्यस्त हो चुका था और वह मेरे पास आ पहुँची। मैं उससे लिपट गया और रोने लगा।

यह दुर्घटना मेरी विभिन्न बीमारियों के बीच केवल एक अन्तराल मात्र थी। इन सभी बीमारियों के दौरान वह मुझसे कहा करती कि हमेशा भलाई के काम और भगवान की प्रार्थना करनी चाहिए, लेकिन वह कभी भी ईसाई मत के संबंध में विस्तार से बताकर मुझे सन्तुष्ट न कर सकी। वह हमेशा यह कहती कि मैं अभी बहुत छोटा हूँ और एक दिन मै इसके सम्बन्ध में जान जाऊँगा तथा समझ जाऊँगा। सम्भवत: उसी के कारण या किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु के कारण ही ईसाई धर्म में मुझे स्थायी दिलचस्पी है या इसी धर्म से मुझे हमेशा प्रेरणा मिलती रहती है। मैं स्वयं कुछ नहीं कह सकता।

जब मैं वापस दादर स्कूल आया तो मैंने इस सम्बन्ध में देवजी को बतलाया और उसने मुझे बतलाया कि वह भी ईसाई ही है और कहा कि हालदार परिवार भी ईसाई है। उसने मुझे बतलाया कि दादर स्कूल की स्थापना अमेरिकन मिशनरियों द्वारा की गई थी और अगर उन्होंने स्थापना न की होती तो मैं वहाँ न मौजूद होता। मैंने उससे पूछा कि क्या वे मेरी परिचित नर्स जैसे होते हैं और मेरे नर्स के वर्णन को सुनकर उसने 'हाँ' में उत्तर दिया। उसने मुझे एक अंग्रेज़ी की प्रार्थना सिखलाई जो मैं सोने से पहले रोज़ कहने लगा :

हे आकाशस्थित पिता ! तुम मेरी सुनोगे,
अपने इस प्यारे बच्चे को आज की रात आशीर्वाद दो,
इस अन्धकार को चीर कर तुम मेरे पास आ जाओ,
और मुझे सुबह होने तक सुरक्षित रखो।

आज के सारे दिन तुम्हारे हाथों ने मेरा पथ-प्रदर्शन किया है,
और मैं इस कृपा के लिए तुम्हें धन्यवाद देता हूँ,
तुमने मुझे कपड़े पहनाए, उष्णता दी, खाना दिया,
तुम मेरी सायंकालीन प्रार्थना को सुनो।

मेरे पिछले सारे पापों को क्षमा कर दो,
उन मित्रों पर भी, जिन्हें मैं बहुत अधिक चाहता हूँ, कृपा करो,
हम सभी को अन्त में स्वर्ग में बुला लो,
जहाँ हम तुम्हारे साथ सुख से रह सकें।

हमारे घर में कभी भी किसी धर्म पर बातचीत नहीं होती थी, अतः मैं केवल इतना जानता था कि मैं हिन्दू हूँ, इससे अधिक कुछ नहीं। मैं प्रार्थना भी किया करता था किन्तु वे तुच्छ इच्छाएँ भर होती थीं। देवजी ने जितनी प्रभावशाली प्रार्थना मुझे सिखाई थी, वैसी मैंने कभी नहीं सीखी थी। देवजी ने मुझे ईसा मसीह के सम्बन्ध में कुछ छोटी-छोटी कहानियाँ भी बतलाई, जिनका अनुवाद उसने स्वयं किया। बम्बई छोड़ने के बाद से मैं उन्हें 'ब्रेल' में पढ़ लेने लगा।

इस प्रकार मैं अप्रत्यक्ष रूप से पाश्चात्य धर्म के सम्बन्ध में तो सीख ही रहा था, साथ ही समुद्र पार करके दूसरे देशों में जाने की प्रेरणा भी पा रहा था। डा० हालदार नें हारवर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी और वे बोस्टन के निकट स्थित पर्किन्स इन्सटीच्यूट (जो आज भी अन्धों की शिक्षा के लिए विश्व की सबसे बड़ी संस्था है) भी गये थे। अब वह बम्बई में उसी तरह का एक छोटा-सा विद्यालय स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। शाम के खाने के समय वह अक्सर पर्किन्स तथा अमेरिका का उल्लेख किया करते थे और एक दिन तो मुझसे पूछने लगे कि क्या मैं वहाँ जाना पसन्द करूँगा ? मुझे उन्होंने बतलाया कि मेरे पिता की इच्छा यही थी। मेरे पिता की पश्चिम के प्रति जोश तथा डा० हालदार के उत्साह देने पर मेरे भीतर विदेश-यात्रा की इच्छा स्वयंमेव जग उठी। मेरी सातवीं वर्षगाँठ के एक सप्ताह बाद डा० हालदार मुझे श्री तथा श्रीमती टामस नामक दम्पति के पास ले गए जो १९४२ की गर्मियों में अमेरिका जाने का कार्यक्रम बना रहे थे। डा० हालदार ने कहा कि अगर मैं उनके साथ ही अमेरिका चला जाऊँ तो अधिक अच्छा हो और यह भी कहा कि वे उनकी अनुमति ले लेंगे।

श्री और श्रीमती टामस उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार हो गए और उन्होंने मुझे बताया कि जहाज़ पर दो महीने की यात्रा करनी पड़ेगी, तो मुझे खुशी से रोमांच हो आया। डा० हालदार ने पर्किन्स इन्स्टीच्यूट के संचालक डा० फ़ैरल को एक पत्र १९ अप्रैल, १९४१ को लिख दिया। बीमारी तथा छुट्टियों के घर पर

बिताए गए समय को निकालकर मैंने सिर्फ एक साल तक कक्षा में पढ़ा था तथा इसी उपस्थिति पर उनकी सिफारिश आधारित थी। यह चिट्ठी मेरे अमेरिका आने के स्वप्न को चरितार्थ करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण थी, अतः मैं इसके कुछ महत्व-पूर्ण अंश दे रहा हूँ :

> यह लड़का हमारे स्कूल में लगभग एक साल तक ही रहा है। हमारे यहाँ बच्चों की योग्यता जाँचने के लिए प्रामाणिक मानसिक परीक्षाएँ नहीं होतीं, किन्तु इस बीच इस बच्चे के विकास को देखकर तथा अपने निरीक्षणों के आधार पर मुझे लगता है कि शायद यह दूसरे बच्चों से कहीं अधिक होशियार है। यह शारीरिक श्रम के कामों में भी बड़ी रुचि रखता है। मेरी इच्छा है कि अपने जीवन के विकासोन्मुख तथा प्रभाव-ग्रहणशील काल में इस बच्चे को संसार की सबसे अच्छी संस्था में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिल सके। इसके पिता ने अपने शहर से ९०० मील दूर बम्बई स्थित हमारे स्कूल में इसलिए भेजा था, जिससे इसे भारत में मिल सकने वाली शिक्षा का सबसे अच्छा अवसर मिल सके। हम इसे यहाँ अंगरेजी तथा एक भारतीय भाषा के माध्यम से शिक्षा दे रहे हैं। यह अंगरेजी समझता है और 'हाल ब्रेल टाइप-राइटर' पर लिखाई कर सकता है। स्कूल में दाखिल होते समय इसे अंगरेजी का एक भी अक्षर नहीं आता था। अब इसे २०० शब्दों से अधिक आते हैं, जिनका प्रयोग यह कर सकता है।

यद्यपि उस समय इस पत्र में लिखी सभी बातें और उनके महत्व को समझने के लिए मेरी आयु बहुत कम थी तथापि डा० हालदार की बातों से मेरे अन्दर समुद्र यात्रा तथा नये देश के लिए एक उत्साह उत्पन्न हो गया था। डा० हालदार की आयु अभी बहुत कम थी और वे अन्धों की स्थिति को सुधारने में व्यस्त थे। उनका विचार था कि शायद मैं अमरीका जाकर अन्धों की शिक्षा के बारे में पश्चिम के अधिक प्रगतिशील दृष्टिकोण का अध्ययन करके भारत लौटकर अन्धेपन के बारे में भारतीय विचारधारा को बदलने और इस तरह परोक्ष रूप से डा० हालदार को अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक हो सकूँ।

उस समय डा० हालदार अन्धों के स्वप्नों पर एक पुस्तक लिख रहे थे। इसमें वे इस बात का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे थे कि अन्धों के स्वप्न दृष्टिवान व्यक्तियों के स्वप्नों से कितने भिन्न होते हैं। इसके लिए वे सुबह-सुबह हम सभी

विद्यार्थियों से अपने-अपने स्वप्न सुनाने को कहा करते थे। जो स्वप्न उन्हें ठीक-ठीक बतलाया हुआ मालूम पड़ता था, उसे बताने वाले को वे एक मिठाई दिया करते थे।

मुझे उस समय बहुत स्वप्न आते थे तथा अब भी आते हैं। यद्यपि मैं अपने स्वप्नों को उन्हें नहीं बताया करता था लेकिन मुझे याद है कि एक दिन मैंने उनके दफ्तर में जाकर अपना स्वप्न कह सुनाया कि मैं हालदार परिवार के साथ इंगलैंड जा रहा हूँ। उस स्वप्न में उस जहाज़ तथा समुद्र के बारे में छोटी-छोटी बातें थीं जिनके बारे में उन्होंने मुझसे बार-बार प्रश्न पूछे। उनकी पुस्तक का उद्देश्य ही यह जानना था कि अन्धे व्यक्तियों के मस्तिष्क में अपने चारों ओर की दुनियाँ की क्या आकृति होती है। उदाहरणतः क्या वे पेड़ को फैली डालों और पत्तियों सहित देखते हैं या किसी लम्बे खम्भे की तरह ? अन्धे होने से पहले देखी चीजों की स्मृति मेरी लम्बी बीमारी के कारण बिल्कुल मिट चुकी थी, इसलिए मेरे स्वप्नों के अनुभवों तथा जागृतावस्था के अनुभवों में कोई अन्तर नहीं था।

एक महीने के पश्चात् पर्किन्स इंस्टीट्यूट के डा० फ़ैरल ने उत्तर दिया लेकिन वह डा० हालदार की इस बात पर सहमत नहीं थे कि मेरे 'जीवन का विकासोन्मुख तथा प्रभाव-ग्रहणशील काल' संयुक्त राज्य अमेरिका में व्ययतीत हो। उन्होंने अत्यधिक बल देकर कहा कि मुझे अपने देश का वातावरण नहीं छोड़ना चाहिए। उन्होंने लिखा था कि अल्पायु में ही पूर्व से अध्ययन के लिए पश्चिम चले आने वाले बच्चों के साथ उन्हें यही अनुभव हुआ कि उन बच्चों का पूर्वीय और पश्चिमी दोनों सभ्यताओं के बिल्कुल अयोग्य हो जाने का खतरा रहता है। बाद में हमें पता चला कि पश्चिम के सभी शिक्षा शास्त्रियों का मत डा० फ़ैरल के मतानुकूल ही था।

डा० हालदार ने इसे समझा तथा बात को वहीं रोक दिया। इस प्रकार मेरे तुरन्त अमेरिका जाने के स्वप्नों की इतिश्री हो गई।

मैंने अगले डेढ़ वर्ष तक स्कूल में अध्ययन जारी रखा तथा ढाई वर्षों में वहाँ जानने योग्य सारी बातें सीख लीं। अब यदि मुझे केवल कुर्सी बुनने का ही व्यवसाय अपनाना होता तो मैं वहाँ रहता और बेंत के काम में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेता। लेकिन शिक्षा के दृष्टिकोण से डा० हालदार का विचार था कि मेरी वहाँ की शिक्षा समाप्त हो गई है। उन्होंने पिताजी को परामर्श दिया कि चूंकि मेरा तुरन्त विदेश जाना सम्भव नहीं है अतः मेरे लिए अपना मूल्यवान समय किसी

स्कूल के बजाय घर पर ही बिताना अधिक उपयुक्त होगा। उन्होंने लिखा कि इस समय मुझे पारिवारिक जीवन की सबसे अधिक आवश्यकता है।

खराब जलवायु, बीमारी तथा रद्दी खाना मिलने के बावजूद दादर स्कूल तथा बम्बई मेरे लिए एक प्रकार से घर बन गया था। बड़ी व्यथा और शंकालु मन लेकर मैं लाहौर जाने वाली गाड़ी पर सवार हुआ। मैंने पंजाबी भाषा को याद करने की कोशिश की लेकिन सफल न हो सका। निस्सन्देह मेरा अंग्रेज़ी का शब्द-ज्ञान काफी बढ़ गया था। मैं अब हिन्दू भी नहीं रह गया था क्योंकि देवजी ने मुझे विश्वास दिला दिया था कि अन्तःकरण से मैं ईसाई हो गया हूँ। मैंने अपने परिवार के व्यक्तियों की आकृतियों को उनकी आवाज़ के सहारे याद करने की कोशिश की, लेकिन उनके स्वर धीमे और विकृत मालूम पड़ रहे थे तथा समय और दूरी के गलियारों में हलके-हलके गूंज रहे थे।

मैंने सामने की ओर झुककर अपने चारों ओर की विचलित और उत्तेजित करने वाली ध्वनियों को रोकने का निष्फल प्रयास किया। ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी ऐसी जगह जा रहा हूँ जहाँ कोई व्यक्ति मुझे पहचानता या समझता नहीं है। मेरे परिवार में मेरा कोई मित्र नहीं था, क्योंकि मेरे मित्र मेरी नर्स, देवजी, डा० हालदार तथा मेरे सहपाठी थे। फिर भी मेरे साथ किसी की सहानुभूति नहीं थी, यहाँ तक कि हालदार-दम्पति भी मेरी उदासीनता से चकित था।

तभी डिब्बे को एक झटका लगा और मैं समझ गया कि जरा देर में ही गाड़ी के स्टेशन से चल पड़ने की निश्चायक आवाज़ सुनाई पड़ेगी, जो गाड़ी से लगभग चिपककर चिल्लाते फेरी वालों की आवाज़ों को भी ढक लेगी। धीरे-धीरे गाड़ी स्टेशन से बाहर निकल गई और उसके पहिये पटरियों से रगड़ते रहे, और पहियों के घूमने के साथ-साथ मेरे जीवन का भी एक चक्र समाप्त हो गया।

मेहता गली | ३

लाहौर स्टेशन पर सारा परिवार मुझे लेने आया, तथा मेरे आने पर उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न था। मैं उस उत्फुल्ल वातावरण में अपनी आशंकाओं को जल्दी ही भुला बैठा।

हमारा अपना मकान कुछ बरस पहले बन गया था, लेकिन इस समय चूँकि उसकी मरम्मत हो रही थी, इसलिए हम अस्थायी रूप से नाना के यहाँ रहने लगे, जहाँ दो ही कमरे होने के कारण बड़ी भीड़ हो गई। लेकिन क्वार्टर की इस भीड़भाड़ का हम बच्चों पर कोई असर नहीं होता था, क्योंकि जागते हुए अपना सारा समय हम मेहता गली में बिताते थे और केवल सोने के लिए घर आ जाया करते थे। मेहता गली मुख्य मकान से केवल एक पाँच फुट ऊँची दीवार से अलग कर दी गई थी।

इस दीवार को पार करके हम एक दूसरी ही दुनियाँ में पहुँच जाते थे। इसके पीछे तथा नगर के दो ब्लाकों की परिधि के भीतर मेहता परिवारों के मकान थे, जिनमें लगभग ५० व्यक्तियों का कुटुम्ब रहता था। इन मकानों के दरवाजे गली में थे जो टैम्पिल रोड से फटती थी तथा एक वर्ग क्षेत्र के आकार में बनी हुई थी। हमारा मकान इस आहाते में नहीं आता था क्योंकि मेहता गली की योजना बनने से पहले ही वह बन चुका था, लेकिन था वह सिर्फ एक ब्लाक की दूरी पर।

मेहता परिवारों में बहुत सारे बच्चे थे और हम सब एक साथ खेलते थे। हमारे सबसे पास मेरे छोटे चाचा का परिवार था जिन्होंने मेरे पिता के समान ही चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा पाई थी और अब उन्हीं के विभाग में काम कर रहे थे। उनके पाँच बच्चे थे, जो लगभग हमारी ही आयु के थे तथा उनकी रुचि भी लगभग हमारे ही समान थी। केवल मेरी सबसे छोटी बहन बेबी ऊषा के साथ, जिसका जन्म मेरी अनुपस्थिति में हुआ था, खेलने वाला कोई नहीं था। उनकी दो बड़ी लड़कियाँ शील और लील मेरी बहनों पाम, निम्मी और उम्मी के साथ उन्हीं के

स्कूल में पढ़ने जाया करती थीं। वे सब एक ही टीम में गेंद खेलती थीं और अक्सर उन्हें काम भी एक-से ही दिये जाते थे। उनका छोटा भाई योग, जो ओम से तीन वर्ष बड़ा था, मेहता परिवार का इस पीढ़ी का पहला लड़का था और जब भी हम कोई खेल खेलते थे वही अगुआ होता था। वह निर्णय करता था कि कौन-सा खेल खेला जाए, खेल के नियम भी वही तय करता था तथा विवाद खड़ा होने पर निर्णय भी वही करता था।

उन दिनों पतंग उड़ाने का खेल बड़ा लोकप्रिय था। लड़कियाँ बुनाई या सिलाई करती रहती थीं और हम सब लड़के छतों पर चढ़कर पतंग-प्रतियोगिताएँ किया करते थे। हमारा जेब-खर्च सीमित होता था इसलिए हमारे लिए पतंग बनाने का सारा सामान खरीदना सम्भव नहीं था। लेकिन हम डोर से दूसरी पतंगों का माँझा काट देते थे और गिरने वाली पतंग को पाने की कोशिश करते थे। दिन में कोई न कोई खूब ऊँची पतंग उड़ा ही देता था और जैसे ही वह ऊँचाई पर दिखलाई पड़ती, दूसरी पतंगें पेंच लड़ाने के लिए उड़ा दी जातीं। अक्सर तीन-चार पतंगें एक में गुँथ जाती थीं तथा पक्की डोर और ठीक खींच से कोई भारी पतंग उलझी हुई पतंगों की डोरी काट देती थी और वे उलटती-पलटती नीचे गिरने लगती थीं। योग हम सबको अलग-अलग जगहों पर खड़ा कर देता था और जैसे ही कोई माँझा टूटता 'वो काटा' की तेज़ ध्वनि हम सबको सुनाई पड़ जाती। सारी आँखें आकाश की ओर उठ जातीं और पतंगों के गिरने की दिशा में हम दौड़ पड़ते। हममें से प्रत्येक कटने वाली पतंग को लूटना चाहता था, इसलिए कभी-कभी तो आपस में बड़ा झगड़ा हो जाता था। खेल का ठीक नियम यह था कि अगर कोई लड़का पतंग पर अपने दोनों हाथ रख दे तो फिर कोई उसे नहीं छीनेगा, लेकिन अक्सर नियमों का उल्लंघन हो ही जाता था। पतंग के ज़मीन पर गिरते ही जो खींच-तान मचती थी, उसमें आमतौर पर तो पतंग फट जाती थी लेकिन कभी-कभी कोई एक लड़का उसे सही-सलामत पा भी जाता था। पतंग को पकड़ने के लिए हम एक छत से दूसरी छत पर कूद जाया करते थे और हममें से प्रत्येक को केवल अपना ही ध्यान रहता था। सब पतंग लूटने के लिए भागते थे तो मेरा उत्साह मुझे चुप नहीं खड़े रहने देता था और मैं भी आवाज़ के साथ-साथ दौड़ता था।

कभी-कभी कोई पतंग लूटने वाला लड़का मुझे अपने पीछे आने से रोक देता।

वह कहता, 'यहीं रहो। मैं पलक मारते वापस आता हूँ।' लेकिन दूसरे अवसरों पर लड़के मेरी सहायता करते थे तथा मेरा हाथ पकड़कर दौड़ते थे। मैं ऐसे कार्यों से घृणा करता था क्योंकि इनसे मुझे चिढ़ लगती थी और खेल में बाधा पड़ती थी। लेकिन खेल की उतावली में मेरी कमजोरियों को, यहाँ तक कि मेरी उपस्थिति को भी भुला दिया जाता था। और बहुत कम मौकों को छोड़कर मुझ पर भी वे ही नियम लागू होते थे और मैं भी उसी तरह लड़ता-झगड़ता था। यद्यपि इस स्वतन्त्रता से मुझे मामूली चोटें भी लग जाती थीं किन्तु इससे आत्मनिर्भरता का विकास भी अवश्य होता जाता।

एक बार तो मैं भयानक ढंग से गिरने से बाल-बाल बचा। मुझे याद है कि एक बार मेरी बहनें भीड़ को देख रही थीं और मुझे एक छत से दूसरी छत पर चढ़ते देख डरकर मुझे रुकने के लिए चिल्लाईं। उनके चिल्लाने पर मेरे मन में आया कि मैं कहाँ हूँ, मेरी चेतना गुम हो गई तथा सन्तुलन-ज्ञान गायब हो गया और मैं टीन की छत पर नीचे फिसलने लगा। सौभाग्य से टेढ़ी टीन की छत आखीर में जाकर तीन इंच की पट्टी के रूप में समतल हो गई थी, जिससे मुझे सहारा और शरीर को पुनः सन्तुलित करने का समय मिल गया। इस तरह मैं दो मंजिल की ऊँचाई से गिरने से बच गया। जब मेरी माँ को इस घटना का पता चला तो उन्होंने भविष्य में खेलों में भाग न लेने के कड़े आदेश दे दिए। उन्होंने मुझे अपनी बहनों के साथ रहने का निर्देश दिया जिससे वे मेरी देखभाल कर सकें। फिर से इस सम्बन्ध में मेरी सारी मिन्नतें ठुकरा दी गईं। मैं चिड़चिड़ा तथा उदास रहने लगा। यह देखकर पिता जी ने अन्त में कह दिया कि मैं स्वयं अपने अनुभवों से ही सीखूँ, फिर चाहे उसमें कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न हों। उन्होंने माँ को परामर्श दिया कि वह आवश्यकता से अधिक मेरी चिन्ता न करें। इस तरह मुझे अपनी स्वतन्त्रता पुनः मिल गई तथा मैं फिर अपने साथी खिलाड़ियों के साथ खेलने लगा।

हम लोग सुबह-सुबह ही खेलने निकल जाते थे और कभी-कभी तो शाम का अंधेरा हो जाने तक मैं माँ से नहीं मिल पाता था। दोपहर के समय हम जिस घर में होते थे वहीं खा लेते थे। पाम बहन तेरह वर्ष की थीं तथा माँ की तरह हमारे साथ पेश आती थीं। वे ख्याल रखती थीं कि हम साफ-सुथरे, नहाए-धोए रहें। हम सब उनकी आज्ञा मानते थे और आदर करते थे। क्योंकि हमारी उच्छृङ्खलता में

व्यवस्था लाने का काम वे ही करती थीं। जिस तरह लड़कों के खेलों का मुखिया योग होता था, उसी तरह लड़कियों के खेलों की मुखिया वे होती थीं। और जब हम लोग साथ मिलकर खेलते थे तब तो मुखिया निर्विवाद रूप से वे ही होती थीं।

शाम को हम घर लौटते थे। उस समय (साढ़े आठ बजे) तक हमें खूब भूख लगी होती थी। लेकिन यह खाना भी हम आराम से नहीं खाते थे, क्योंकि सोने से पूर्व मेहता गली में हमारे लिए एक और आकर्षण था। दिन भर के थके होने पर भी आराम के बजाय हम सब दादी—भाभी जी—के कमरे में जा पहुँचते थे। वे उनींदे किन्तु उत्सुक श्रोताओं को अपनी सजीव भाषा में कहानियाँ सुनातीं। कभी उन दिनों की कहानियाँ सुनातीं जब लालाजी जीवित थे और जब भोजन के लिए सारे परिवार इकट्ठे होते थे तो एक उत्सव-सा मालूम पड़ने लगता था। कभी ईसा की कहानियों के समान आदर्शवादी पारम्परिक कहानियाँ सुनाया करतीं। और भी अनेक प्रकार की कहानियाँ वे सुनाया करतीं। कभी उस झूठे गड़रिये की जो कई बार 'शेर! शेर!' चिल्लाया था, कभी उस किसान की जिसने अपने परिवार की रक्षा के लिए अपना जीवन दे दिया, कभी गुणों की खान राम और सीता की— हमारे सामने राम को आदर्श पुरुष और सीता को आदर्श स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। रावण की बदमाशी के विरुद्ध उनके साहस का हम पर बड़ा प्रभाव पड़ता था और उनसे हमेशा हमारे सामने अच्छाई और बुराई का स्वरूप आ खड़ा होता था और परिणाम निकलता था कि लोभ और दुष्टता पर अन्ततः साहस और बलिदान की विजय होती ही है। इन संस्मरणों और लोक-कथाओं को सुनने के बाद हम संतुष्ट होकर सोने के लिए जाते थे और प्रतिज्ञा करते थे कि राम और सीता के आदर्शों का पालन करेंगे। लेकिन दूसरे ही दिन फटी पंतगों के ऊपर फिर आपस में झगड़ने लगते थे।

हम नाना जी के यहाँ ही रहते थे कि एक बार मेरे पिता को एक निरीक्षण (जाँच) के सिलसिले में दौरे पर जाना पड़ा। वह माताजी को भी अपने साथ ले गए तथा हमें पाम बहन की देख-रेख में छोड़ गए। माता-पिता बाहर ही थे कि एक दिन जब नानाजी शाम को घूमने के बाद वापस आये तो ओम भैया ने मिठाई न लाने पर उन्हें परेशान किया। इस पर उन्होंने उसके पीठ पर दो-तीन छड़ियाँ जड़ दीं। ओम को यह सज़ा न्यायोचित नहीं लगी क्योंकि नानाजी ने उसे

सन्तरों की कैंडी देने का वादा किया था। मैं उस समय पाम बहन के पास था जब ओम रोता हुआ आया और बोला 'नाना जी ने मुझे मारा है।'

पाम बहन को बड़ा क्रोध आया, क्योंकि हमारे माता-पिता ने कभी वायदा नहीं तोड़ा था। उन्होंने हम सबको एकत्र किया और कहा कि हमें अब यहाँ इस प्रकार की बेइज्जती सहन करने के लिए नहीं रहना है। हमें उसी रात अपना सामान बाँध कर वहाँ से चल पड़ना था। किसी ने भी उनसे यह नहीं पूछा कि हम कहाँ जाएँगे लेकिन हम अपने गंदे तथा धुले हुए कपड़े एकत्र करके सड़क पर आ गए।

एक दूसरे के हाथ पकड़े साहस के साथ अपने आँसू रोके हम आगे बढ़ने लगे। अपने आप हम लारेंस गार्डन की ओर मुड़ गए, जहाँ हम अक्सर शाम को घूमने जाया करते थे। बाग लगभग एक मील दूर था और ज्यों-ज्यों हम नानाजी के घर से दूर होते जा रहे थे मुझे लग रहा था कि पाम बहन किसी को बता देतीं कि हम घर छोड़कर जा रहे हैं तो शायद नानाजी घर न छोड़ने के लिए हमारी मिन्नतें करते और शायद माफी भी माँग लेते और इस तरह हम घर में ही बिना अपना सम्मान खोए रह जाते।

करीब आठ बजे हम वहाँ पहुँच गए। ऊँची-नीची ज़मीन पर बिछी घनी, लम्बी घास से छनकर शुद्ध, ताज़ी हवा ने हमें तरोताज़ा कर दिया। पाम बहन ने हम सभी को एक-एक 'कैरी होम आइसक्रीम' ले दी और बता दिया कि बस यही रात का भोजन है। तब हम पेड़ों के नीचे एक कोने में बैठ गए और रात बिताने की तैयारी करने लगे। अँधेरा हो गया तो सारी आवाजें बन्द हो गईं, सिर्फ कीड़ों की गुनगुनाहट ही हमारा साथ देने के लिए रह गई। अपनी झपकियों के बीच हमने नौ, दस, साढ़े दस के घंटे बजते सुने।

तभी मुझे उस नौकर की पूर्व परिचित आवाज़ सुनाई दी जो अक्सर इस प्रिय स्थान पर हमारे साथ आया करता था। अब हम सब पूरी तरह जाग गये। हम और सटकर बैठ गए। हमें दी जाने वाली आवाजें तेज़ हो गईं, लेकिन पाम बहन फिर भी कुछ नहीं बोलीं। मैं उत्तर देना चाहता था कि 'हम यहाँ हैं' लेकिन पाम बहन के डर से मैंने कुछ नहीं कहा। अपनी टार्चों की रोशनी में उन्होंने हमें देख लिया, फिर भी पाम बहन स्थिर बैठी रहीं।

खोजने वालों के साथ चाचाजी भी आए थे। उन्होंने हमको घर छोड़कर

आने तथा व्यर्थ परेशान करने के लिए बहुत फटकारा। अगर कहीं हम सभी भाई-बहनों को कोई भगा ले जाता तो ? लेकिन जब उन्होंने देखा कि उनकी डाँट-फटकार का हम पर कोई असर नहीं पड़ रहा है तो वे रुककर, चुपचाप हमारी ओर देखने लगे। तब उन्होंने नरमी से कहा, 'चलो, घर चलें।' लेकिन जब तक उन्होंने पाम बहन को विश्वास नहीं दिला दिया कि नानजी ओम भैया से माफी मागेंगे, तब तक वे चलने को तैयार नहीं हुई। एक दूसरे के हाथ पकड़कर चाचाजी और पीछे चलते नौकरों के साथ हम मेहता गली में स्थित नानाजी के घर की ओर चल पड़े।

हिमालय के चरणों में | ४

१९४२ के सितम्बर महीने में मेरे पिता का पदोन्नति के साथ-साथ रावलपिंडी तबादला हो गया, जो लाहौर से १८० मील उत्तर में था। पहले तो यह विचार हुआ कि केवल पिता जी रावलपिंडी चले जाएँ और बाकी परिवार लाहौर में ही रहे, जहाँ मेरी सब बहनें कान्वैन्ट स्कूल में पढ़ रही थीं। लेकिन प्रारम्भ से ही हम इस प्रकार की व्यवस्था की कमजोरी को जानते थे। हमारा परिवार बहुत बड़ा था तथा मेरे पिता जी घर की शिक्षा को विद्यालय की शिक्षा के बराबर ही महत्व देते थे और इसमें उनका योग विशेष रूप से रहता था। अतः बिना किसी मीन-मेख के लाहौर छोड़ने का निश्चय हो गया। अपने स्थानान्तरण आदेश के एक सप्ताह के भीतर वे रावलपिंडी चले गए और १९४३ के प्रारम्भ में जब मैं नौ वर्ष का ही था, अपने घर, गली, पतंगों और भाभी जी को छोड़कर हमने भी वहाँ के लिए प्रस्थान कर दिया। रावलपिंडी की जलवायु बड़ी अच्छी है और उन दिनों उसे 'काश्मीर का द्वार' नाम से पुकारा जाता था।

केवल पंजाब में ही, जहाँ उच्च राज्य सेवा में भारतीयों का अनुपात दूसरे प्रान्तों से अधिक था, हाल में बदलने वाली परिस्थितियों के कारण ही कोई भारतीय जन-स्वास्थ्य विभाग के उप-संचालक के पद पर शोभित हो सका। मेरे पिता को अपनी सेवा के लम्बे कार्यकाल तथा उच्च शिक्षा के कारण यह पद पिंडी में मिला था और इसके साथ ही रहने के लिए एक बँगला भी मिल गया। अन्य बड़े नगरों के समान ही सरकार ने यहाँ भी राज्य सेवा के उच्च अधिकारियों के लिए, जो पहले अंगरेज़ ही हुआ करते थे, शहर का एक हिस्सा सुरक्षित कर दिया था। हम एक सुन्दर बड़े बँगले को देखकर जिसमें पिता जी का दफ्तर का कमरा भी था, बड़े खुश हुए। यद्यपि मकान कहीं-कहीं कुछ टूट-फूट गया था किन्तु उसके साथ की सात एकड़ जमीन मुर्गियाँ और भैंसें—जिनसे हमें दूध मिलता था—पालने के बिल्कुल उपयुक्त थी और हमने तीस सुनहरी मछलियों के लिए एक छोटा-सा कुंड भी बना

लिया था । कुछ समय तक हमने एक लम्बे बालों वाला झबरा कुत्ता भी पाला था । हमारे परिवार के साथ जानवरों का फार्म, छः नौकर, एक धोबी, एक चौकीदार थे और इस तरह हमारे परिवार का सम्मान भारत सरकार के किसी बड़े अफसर के सम्मान के बराबर था ।

सरकारी नियम के अनुसार सिविल लाइन्स की सड़कों पर परिवहन के साधनों का प्रयोग बहुत सीमित मात्रा में होता था, अतः चारों तरफ मीलों तक बिल्कुल शान्ति रहती थी । लाहौर की कड़ी गर्मी तथा दादर का धुएँ से भरा वातावरण इस प्राकृतिक वातावरण की तुलना में अत्यन्त हीन मालूम पड़ रहा था । पहाड़ों की चोटियों से टकराने वाली सर्द, तीखी हवाएँ नीचे उतरकर रावलपिंडी में भी आ जाया करती थीं और अपने साथ हिमालय का ओज और तेजस्विता ले आती थीं । इतना चैतन्य और स्वस्थ इससे पहले मैंने अपने को कभी अनुभव नहीं किया था । पतंग उड़ाने और छतों पर कूदने-फाँदने जैसी प्रफुल्लता का अनुभव मुझे फिर होने लगा ।

हमारा बाकी परिवार भी प्रसन्न था । मेरी बहनों को यहाँ भी लाहौर के समान प्रेजेन्टेशन कान्वैन्ट स्कूल में दाखिला मिल गया । मेरा भाई भी एक अच्छे स्कूल में दाखिल हो गया था । मेरी माँ खुश थीं कि अब उनके पास भैंसें हो गई हैं ।

हम अक्तूबर १९४५ तक सिविल लाइन्स में रहे । खुशियों से भरे उन तीन वर्षों की स्मृति अपने बम्बई-प्रवास और भारत-विभाजन के बीच के समय की तरह मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट मौजूद हैं ।

यहीं पर सर्वप्रथम मैंने यह अनुभव किया कि मेरे अन्धेपन के प्रति मेरे पिता-माता के दृष्टिकोणों का अन्तर कितनी आसानी से दूर हो चुका है । मेरी माँ मुझे इच्छानुसार खेलने और दौड़ने को उत्साहित करती थीं और आसपास जहाँ कहीं मैं जाना चाहूँ फौरन जाने देती थीं । अब मुझे ठूँस-ठूँसकर खिलाया भी नहीं जाता था । एक दिन मैंने अपना खाना नहीं खाया तो माँ ने मुझे प्यार से झिड़का और फिर दोपहर के खाने की कमी को पूरा करने के लिए एक केला दिया । मैंने कहा मैं अभी खाये लेता हूँ और जैसे ही वह कमरे से बाहर हुई मैंने उसे झबरे कुत्ते ब्लैकी को दे दिया । कुछ तो वह खा गया लेकिन कुछ वहीं जमीन पर थूक दिया । अतः अब अपना कारनामा मैं किसी भी प्रकार नहीं छिपा सकता था । उस दिन मुझे खूब मार पड़ी तथा मुझसे ही सफाई कराई गई, अपनी स्वतंत्रता

मुझे पसन्द थी, भरपेट खाना भी अच्छा लगता था, लेकिन मैं देख रहा था कि माँ ने अब मेरी स्वतंत्रता के चुनाव के अनुसार ही मेरे साथ व्यवहार करने का निश्चय कर लिया था।

मेरी बहनों का मेरे प्रति व्यवहार भी मेरी माँ के व्यवहार जैसा ही होता था। पहले वे मेरे लिए अपने जेब-खर्च से मिठाई खरीद कर दिया करती थीं और मेज पर भी जब कभी कोई स्वादिष्ट भोजन रखा होता था तो मुझे ही प्राथमिकता मिलती थी। लेकित अब नहीं। मै तो यहाँ तक सन्देह करने लगा हूँ कि मेरे जेब-खर्च से मिठाइयाँ वे मेरे लिए लाती थीं, वे भी मुझे सब नहीं देती थीं। अब मैं सबसे छोटा भी नहीं रह गया था क्योंकि ऊषा ने मेरा यह लाभदायक पद छीन लिया था।

प्रेजेन्टेशन कान्वेन्ट हमारे घर से लगभग दो मील की दूरी पर था। शुरू में लगा कि वे बहनें इतनी दूर पढ़ने कैसे जाएँगी, क्योंकि मेरे पिता के पास दफ्तर से ही फुर्सत नहीं मिलती थी कि वे उन्हें कार में स्कूल छोड़ आएँ। कुछ परामर्श के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि हर लड़की को एक साइकिल खरीद दी जाए। महात्मा गांधी के आन्दोलन के कारण पिछले पाँच वर्षों में लड़कियों तथा स्त्रियों को काफी स्वतन्त्रता मिल गई थी लेकिन फिर भी सड़कों पर अकेले साइकिल चलाने वाली लड़कियों की संख्या अधिक नहीं थी।

ओम भैया की साइकिल टूटफूट गई थी, इसलिए उन्हें एक नई साइकिल ले दी गई। मैंने पिताजी को मना लिया कि ओम भैया की पुरानी साइकिल को न बेचें। उस साइकिल को विभिन्न कठिनाइयों के बाद धीरे-धीरे सीखकर सुधारने में मुझे कई दिन लग गए। कभी-कभी एक नौकर की सहायता लेकर मैं उस साइ-किल पर निरन्तर कार्य करता रहा तथा मैंने पहियों को सीधा कर लिया, उसमें नई तीलियाँ डालीं और गद्दी भी बदल डाली। इसके पश्चात् लगभग डेढ़ महीने तक साइकिल मेरे लिए एक खिलौने के समान रही तथा मेरे कपड़ों पर जगह-जगह ग्रीस के धब्बे लग गए। लेकिन वह एक बार फिर सड़क पर चलने योग्य हो गई।

अब मैंने चलाना सीखना शुरू किया। यह काम बहुत कठिन था, यदि मैं किसी से साइकिल चलाना सिखाने के लिए कहता तो अधिक पुरानी और खतर-नाक होने के कारण साइकिल ही मुझ से छिन जाने का भय था। रोज सुबह को मैं

घर से बाहर चला जाता और मैदान में उस पर चढ़ने की कोशिश करता। मैं चढ़ते ही गिर जाता था और अपनी चोटों को छिपाने तथा साइकिल ठीक करने में समय खर्च करना पड़ता था। लेकिन धीरे-धीरे मैंने अपना सन्तुलन ठीक कर लिया, तथा अब कभी-कभी ही गिरता।

एक दिन सुबह जब मेरी बहनें साइकिलों पर स्कूल जा रही थीं तो मैंने निश्चय किया कि काफी फासले पर रहकर उनका पीछा करूँ। मैं जानता था कि इतने सवेरे गलियाँ बिलकुल खाली होंगी तथा बहनों के परस्पर वार्तालाप की ध्वनि प्रातःकाल की नीरवता में स्पष्ट सुनाई देगी। मुझे विश्वास था कि उनकी बातचीत से मुझे दिशा-ज्ञान हो जाएगा। शुरू में तो सब कुछ मेरी कल्पनानुसार ही हुआ। ताँगे-रिक्शे आदि हमारे रास्ते में अधिक नहीं आए तथा कभी-कभी मोड़ों पर अपनी बहनों का स्वर पहचानने में कठिनाई आने पर भी मैं उनके पीछे-पीछे ठीक स्कूल के फाटक तक चला गया।

इस घुमावदार सड़क के विभिन्न मोड़ों को याद करने की कोशिश भी अगर मैं करता तो भी मेरे लिए रास्ता ढूँढ लेना सम्भव नहीं था। चिल्लाकर मैं अपनी उपस्थिति का ज्ञान अपनी बहनों को नहीं कराना चाहता था। मैं घबरा गया और जब तक सोचूँ कि क्या करना चाहिए, वे स्कूल के अहाते में पहुँचकर मेरी पहुँच के बाहर हो गईं।

मैं स्कूल की चारदीवारी के बाहर घूम रहा था तो मुझे घंटी बजने तथा लड़कियों की दूर जाती हुई हँसने की आवाजें सुनाई दीं। मुझे दादर स्कूल की याद आ गई। उसकी दीवारें ऊँची और रौबदार मालूम पड़ती थीं। लेकिन अन्दर का कोई व्यक्ति बाहर की घटनाओं की ओर ध्यान नहीं देता था। यहाँ तक कि घंटियों की ध्वनि भी वातावरण के अनुकूल थी। बम्बई में हर रविवार को गिरजों में बजने वाले घण्टों की आवाज की तरह वह होती थी।

मैंने दीवार के सहारे साइकिल खड़ी कर दी तथा उसके नजदीक ही एक ओर दीवार से टिककर घास पर बैठ गया। कभी-कभी आँखें झप जाती थीं, लेकिन जब मैं जगता रहता तो मेरा विचार-प्रवाह इधर-उधर मुड़ने लगता। मुझे लगा कि दोपहर बहुत ही देर बाद हुई है। मैंने शोर, हँसी तथा खेल खेलने की आवाजें सुनीं। मैं जानता था कि लड़कियों से भरे उस हिस्से में मैं ही एक अकेला लड़का था तथा स्वयं को गलत जगह पर मौजूद समझ रहा था। मैं सोच

रहा था कि अगर इस समय मैं बम्बई पहुँचकर दौड़ों में हिस्सा लेने और झूलों पर झूलने लगूं तो मुझे कैसा लगेगा। कभी-कभी वहाँ कितना शोर होता था और अब्दुल ? इस समय वह मुझे ज्यादा अच्छा लग रहा था। मुझे लगा मैं वहाँ पहुँच जाऊँ। जल्दी ही लड़कियों का खेल का घण्टा समाप्त हो गया और वे अन्दर चली गई किन्तु मेरे विचार पूर्ववत् चालू रहे।

मैं एक झटके के साथ जगा। तीन की घण्टी बज रही थी। अब उनके बाहर आने का समय होगा, यह सोचकर मैं साइकिल पकड़कर खड़ा हो गया। मेरी बहनें बाहर आईं तो मुझे देखकर चकित रह गईं। उन्होंने मुझ पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी। मैं वहाँ कैसे पहुँचा ? सारे दिन मैं क्या करता रहा ? मैंने अपने बारे में उन्हें बतलाया क्यों नहीं ? लेकिन उनके जल्दी-जल्दी प्रश्न पूछने के कारण मैं उत्तर देने की कठिनाई से बच गया। फिर हम घर के लिए चल पड़े। इस बार मेरी बहन निम्मी ने एक हाथ से मेरे हैन्डिल का डंडा पकड़ लिया और हम साथ-साथ साइकिल पर चलते रहे। सारे रास्ते मैं सोचता रहा कि माँ क्या कहेंगी। मैं डर भी रहा था कि मुझे उनकी झिड़कियाँ मिलेंगी।

लेकिन मेरे वापस आने पर माँ ने केवल यही कहा कि दोपहर को मैंने खाना भी नहीं खाया और मुझसे पूछा कि कहीं चोट तो नहीं लगा ली।

धीरे-धीरे मैं साइकिल चलाने में बड़ा कुशल हो गया और कुछ समय बाद हैन्डिल छोड़कर भी साइकिल चला लेने लगा।

रविवार को अक्सर पिताजी हमें टोपी पार्क ले जाया करते थे, जहाँ डेढ़ मील तक कोई रुकावट नहीं थी और सवारियाँ भी नहीं आती-जाती थीं। पिताजी वहाँ गोल्फ खेलते थे और हम लोग साइकिल दौड़ किया करते थे। ऊषा ने भी साइकिल चलाना सीख लिया था और माँ को छोड़कर सारा संसार पहियों पर चलता मालूम पड़ता था।

एक दिन जब पिता जी एक दौरे से वापस लौटे तो मेरे लिए कुछ कबूतर के बच्चे लाए। अभी तक मेरे पास केवल मुर्गी के बच्चे ही थे जिनकी मैं मेहनत से देखभाल करता था। मेरे पिता जी के साथ आए एक अधेड़ चपरासी रामसरन के जिम्मे यह काम सौंपा गया कि वह कबूतर के बच्चों के रहने की जगह बनाने में मेरी मदद करे। लेकिन कार से सामान निकालने में देर लगने के कारण वह मेरे पुकारने पर नहीं आया। फिर मुझे गुस्सा आ गया तो मैंने उसे पागल और मूर्ख कहा,

जिसे पिता जी ने सुन लिया। बाहर आकर रामसरन के सामने ही उन्होंने मुझे एक चाँटा मारा। दूसरी बहुत-सी बातों के बाद उन्होंने मुझसे कहा 'रामसरन तुम्हारे समान आदमी है। तुम्हें उसकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखना चाहिए।'

अपमानित तथा दुःखी होकर मैं रोने लगा। ज्योंही पिता जी अन्दर गए रामसरन उनके आदेशों की अवहेलना करके मुझे चुप कराने की कोशिश करने लगा और मेरा रूमाल लेकर उसने मेरे आँसू पोंछे।

इस घटना के बाद से मैं रामसरन को अपने परिवार के सभी सदस्यों से अधिक जान गया और जब भी कभी मैं पिता जी के साथ दौरे पर जाता तो रामसरन हमेशा मेरे साथ रहता और मेरा मार्ग-दर्शन करता। पिता जी कभी-कभी मेरे सोकर उठने से पहले ही चले जाया करते और शाम के खाने तक तथा कभी-कभी तो और भी देर तक लौटकर नहीं आते थे। इस सारे समय मैं रामसरन की देख-भाल में छोड़ दिया जाता और उसी के साथ में गाँवों और खेतों की लम्बी सैर किया करता था। १६४५ में पिता जी का तबादला रावलपिंडी से हुआ और उस समय तक रामसरन द्वारा ही मुझे मालूम होता रहा कि खेतों में क्या हो रहा है तथा छोटी-छोटी दुकानों और झोंपड़ियों में क्या है। इस प्रकार मुझे अपने परिवार के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न एक नए दृष्टिकोण का ज्ञान हुआ।

जब हम दौरे पर नहीं भी होते थे तब भी मैं घण्टों रामसरन के क्वार्टर में बिताया करता था और महायुद्ध के सम्बन्ध में बातें किया करता था। उसका क्वार्टर हमारी कोठी के मैदान के बिल्कुल दूसरे सिरे पर स्थित एक बहुत छोटा-सा कमरा था। अपने हाथों से टटोलकर मैं उसके कमरे में सब जगह टहल लेता था। उसके कमरे की लम्बाई भी बहुत कम थी। फिर भी इसी में रामसरन खाना बनाता था, सोता था तथा अपनी आवश्यक वस्तुएँ भी रखता था। एक ओर उसकी छोटी-सी चारपाई खड़ी रहती थी जो ठीक कमरे की नाप की थी। अक्सर मैं सोचता कि अगर रामसरन साढ़े छः फुट लम्बा सिक्ख होता तो क्या करता? कमरे के एक तरफ़ एक छोटा-सा चूल्हा बना हुआ था जिस पर वह अपना खाना बनाता था।

रामसरन की छुट्टी के समय शाम को मैं उसके घर पहुँच जाया करता और एक पीढ़े पर चारपाई से टिककर बैठ जाता और वह अपना खाना बनाने में व्यस्त रहता। कभी-कभी यह वायदा करके कि मैं माँ को नहीं बताऊँगा, मैं उसकी एक

मोटी रोटी खा भी लिया करता।

रामसरन अंग्रेजों से घृणा करता था और कहा करता कि मेरे पिता जी से पहले उसी पद पर काम करने वाले अंगरेज अधिकारी बहुत रात गए क्लब से वापस आया करते थे। छुट्टी होने के उपरान्त भी उसे बहुत रात तक उनका इन्तजार करना पड़ता था क्योंकि अक्सर वे दरवाज़े का ताला खोल पाने की स्थिति में भी नहीं होते थे। रामसरन उनके सो जाने के बाद ही सो पाता था, इस पर भी दूसरे दिन उसे ठीक समय पर दफ्तर पहुँचना पड़ता था, क्योंकि उसे क्लर्कों तथा अफ़सर दोनों को खुश रखना पड़ता था।

इसके अतिरिक्त रामसरन को महायुद्ध से कोई लाभ नहीं हुआ था। कीमतें काफी बढ़ गई थीं, पर उसका वेतन नहीं बढ़ा था। उसका गुजारा बड़ी कठिनाई से होता था और इसके लिए वह अंग्रेजी सरकार को पूर्णतया दोषी ठहराता था। वह सुभाषचन्द्र बोस का बड़ा भारी प्रशंसक था तथा कहता था कि अंग्रेजों को नीचा दिखाने के लिए जापानियों के साथ मिलकर हिन्दुस्तान की सरहद के पार आजाद हिन्द सेना संगठित करके उन्होंने बिलकुल ठीक काम किया है। रामसरन को पूरा विश्वास था कि विजय धुरी राष्ट्रों की ही होगी। वह उर्दू भली प्रकार पढ़ सकता था और रोज़ शाम को अपने एक मित्र के घर जाकर, जो उर्दू का एक प्रातःकालीन समाचार पत्र मँगाते थे, अखबार अपने यहाँ ले आता था। मैं बैठा रहता था और वह पढ़कर मुझे सुनाया करता और मैं बड़ा प्रभावित होता था। पिता जी पूरी तरह मित्र राष्ट्रों की विजय के समर्थक थे। रामसरन से खबरें सुन-सुनकर मुझे खाना खाते या किसी दूसरे समय उनसे बहस करने के लिए नए-नए अस्त्र मिल जाया करते थे। पिता जी को पूरा विश्वास था कि विजय मित्र-राष्ट्रों की ही होगी। खाना खाते समय हम हमेशा जनतन्त्रीय राष्ट्रों की चर्चा किया करते थे। धीरे-धीरे इन राष्ट्रों के प्रति मेरे मन में आदर पैदा हो गया और मैं सोचने लगा कि पिता जी ही ठीक कहते हैं। आखिरकार उन्होंने कभी भ्रमण किया था जब कि रामसरन पंजाब से बाहर तक नहीं गया था। इसलिए एक दिन मुझमें और राम-सरन में दस-दस रुपयों की शर्त लग गई—दस रुपया मेरा एक महीने का जेब-खर्च था और उसके मासिक वेतन का पाँचवाँ भाग। शर्त थी—कौन-सा पक्ष जीतेगा। इसके बाद अपने-अपने पक्षों का समर्थन करने से हम कभी पीछे नहीं हटे। रामसरन बुद्धिमान व्यक्ति था और उसके तर्क विश्वासोत्पादक होते थे, लेकिन अपनी गर्मा-

गर्म बहसों के दौरान में भी मैंने उसे फिर कभी 'पागल' नहीं कहा।

रामसरन के पास मुझे प्रभावित करने का एक और तरीका था। वह महाकाव्य 'रामायण' को पढ़कर और कभी-कभी गाकर भी सुनाया करता था। सत् और असत् की शक्तियों के संघर्ष तथा सारी कठिनाइयों को पार कर सत् की विजयी होने की शक्ति के बारे में सुनकर मेरे मस्तिष्क पर गहरा असर पड़ता था। और हर बार जब रामसरन उसे पढ़ता, मुझे नये आनन्द की ही अनुभूति होती।

कभी-कभी जब मैं रामसरन के क्वार्टर पर उसके लौटने के पूर्व ही पहुँच जाता तो कुछ ही गज के फासले पर धोबी के घर चला जाता। उसके परिवार में सात सदस्य थे जिनमें दो लड़कियाँ बारह-तेरह वर्ष की थीं तथा तीन लड़के थे जिनमें से दो धोबी के साथ घाट पर कपड़े धोने जाते थे। मैं अक्सर धोबी की लड़कियों को तेजी से, उत्साहपूर्वक कपड़ों पर इस्तरी करते पाता था। उनकी माँ जिस समय इस्तरी नहीं करती होती थी तो खाना बनाती या सफाई किया करती थी। उनका मकान भी रामसरन के मकान के समान ही साफ होता था, तथा जूते बाहर उतार देने के नियम का वहाँ भी पालन किया जाता था।

एक दिन जब मैं उनके दो कमरों वाले मकान के भीतर चला गया, जो रामसरन के मकान से लगभग दूना बड़ा था, तो मैंने एक लड़की को रोते पाया। उन्होंने इससे पहले कभी कोई शिकायत नहीं की थी, तथा मेरे आने पर हमेशा हँसते रहते थे। मैंने उससे पूछा कि वह क्यों रो रही है, लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। फिर उसकी माँ ने, जो कठिनाई से साँस ले पा रही थी, विस्तार से मुझे बताया।

पिछले चार वर्षों से वे बंगले की भूमि पर रहते थे और हर नये उप-संचालक के कपड़े धोते थे। वे हमेशा इतनी सावधानी से कपड़े धोते थे कि कभी भी किसी ने शिकायत नहीं की। अब कीमतें बढ़ गई थीं, जिसकी वजह से उन्होंने नए ग्राहक बना लिये थे, और उन्हें सुबह से लेकर शाम तक तेजी से काम करना पड़ता था। उसकी लड़की एक कीमती साड़ी पर इस्तरी कर रही थी कि जरा-सी चूक से साड़ी बुरी तरह जल गई। उसी दिन अपराह्न में ग्राहक के यहाँ जाकर उन्होंने नुकसान की सूचना दे दी। लेकिन ग्राहक बहुत क्रोधित हुआ तथा उसने साड़ी वापस लेने से इन्कार कर दिया। अब धोबी के परिवार को नुकसान पूरा करना था। 'डेढ़ सौ रुपया' उसने कहा, 'हम कहाँ से इतना रुपया लाएँगे ? हम दो महीने में भी इतना

रुपया नहीं कमा सकते।' मैं इस घटना से इतना प्रभावित हुआ और अपने को इतना असहाय महसूस किया कि सान्त्वना के दो शब्द भी बोले बिना मैं वहाँ से चला आया।

मैंने रामसरन को इस सम्बन्ध में बतलाया तथा उससे पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए था। लेकिन उसने भी चुप्पी साधकर मेरी परेशानी को और अधिक बढ़ा दिया। मैं अपनी माँ को कुछ नहीं बता सकता था, क्योंकि उससे यही लगता कि मैं प्रतिदिन एक न एक दुख देने वाली खबर उन्हें सुनाया करता हूँ और फिर माली अथवा ग्वाले की सहायता उनसे करवाता हूँ। अगले दिन मैंने पाम बहन से, जिसके पास मेरा सारा रुपया रहता था, कहा कि वह मेरी सारी बचाई हुई रकम—सात रुपये—वापस दे दे। वह यह जानना चाहती थी कि मैं उसका क्या करूँगा। लेकिन नियमानुसार वह इसके लिए जोर नहीं डाल सकती थी और उसने मुझे रुपये दे दिए। मैंने उन्हें एक लिफाफे में बन्द करके रामसरन से कहा कि वह उन्हें धोबी परिवार के पास पहुँचा दे, लेकिन वह यह उत्तरदायित्व वहन करने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने कहा कि किसी न किसी दिन इसका पता मेरी माँ को चल जाएगा और वह यह समझेगी कि मैंने उसे ऐसा करने के लिए उकसाया था। इस सम्बन्ध में उसे विश्वास दिलाने के मेरे सारे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। आखिर मैं स्वयं लिफाफा ले गया और धोबी परिवार के सबसे छोटे सदस्य को जो केवल पाँच वर्ष का था, देकर कहा कि उसे अपनी माता को दे आए। अगले दिन लिफाफा मेरी माँ के पास वापस पहुँच गया और माँ ने खाने के समय मुझसे इस सम्बन्ध में पूछा। मैंने सारा मामला माँ को बतला दिया तथा ईश्वर कृपा से समस्त परिवार को उतनी ही वेदना हुई जितनी मुझे हुई थी। मेरी सभी बहनें तथा सभी भाई अपनी-अपनी बचत धोबी परिवार को देने के लिए प्रस्तुत होगए। लेकिन पिताजी ने कहा कि वे इस मामले को निबटा लेंगे तथा हमें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जब मैं अगली बार धोबी परिवार से मिला तो वे और मैं सभी संकोच कर रहे थे तथा जो लड़कियाँ पहले हँसी-खुशी से मेरा स्वागत किया करती थीं, इस बार शांत रहीं। लेकिन अपने अटपटे ढंग से जब वे मुझे धन्यवाद दे चुके तो हमारा सम्बन्ध फिर पहले जैसा हो गया। जब रामसरन को इस घटना का पता चला तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बिना मेरे माँगे ही अपनी रोटी का एक भाग मुझे दे दिया तथा उस रात रोज से अधिक लम्बा 'रामायण' का अध्याय मुझे सुनाया।

जूती | ५

१५ जून का दिन था तथा रावलपिंडी की सर्द हवा का स्थान अब घाटी की ओर से आने वाली गर्म हवाओं ने ले लिया था। बाहर बड़ी गर्मी और उमस थी और अभी ग्यारह भी नहीं बजे थे किन्तु तापमान १०६° तक पहुँच गया था। सूर्य की तेज गर्मी से मकान की छत तप रही थी तथा हमारी हालत आवे में तपने वाले बर्तनों जैसी हो रही थी, फिर भी मकान में एक विचित्र प्रकार की ठण्ड अवश्य थी। मेरा छोटा भाई अशोक पिछले दो दिन से सख्त बीमार था तथा घर में बच्चों के कारण रहने वाली चहल-पहल बिल्कुल कम हो गई थी, तथा विशाल घर में एक अजीब सूनापन व्याप्त हो गया था। उसकी बीमारी के लक्षण समझ में नहीं आ रहे थे। केवल यही निश्चय किया जा सकता था कि उसका तापमान १०२° से ऊपर था और वह कम नहीं हो रहा था।

मैं मुर्गी के बच्चों को खाना खिलाने गया हुआ था और अपना काम खत्म करके गर्मी के कारण बिल्कुल अव्यवस्थित तथा पसीने से तर हो गया था, इसलिए सीधा ड्राइंग रूम में चला गया। मेरी सभी बहनें सोफ़े पर बैठी थी। 'ज्ञानचन्द्र ने मुझसे कहा है कि अशोक अस्पताल गया है, क्या बात है ? क्या तुम्हें मालूम है कि उसे क्या हो गया है ?' मैंने पूछा।

एक कष्टदायक निस्तब्धता के बाद पाम बहन ने नियंत्रित किन्तु दृढ़ आवाज में कहा, 'उसे मेनिंजाइटिस हो गई है।'

मैं खड़ा का खड़ा रह गया तथा अचानक ही ठण्ड महसूस करने लगा। एकाएक सारा घर ठण्डा और वीरान लगने लगा। केवल मैंटलपीस पर रखी हुई घड़ी की निरन्तर टिक-टिक की ध्वनि ही शान्ति और नीरवता को भंग कर रही थी।

मैं सोफ़े के पीछे बैठ गया। मैं चार वर्ष का भी नहीं था जब मेनिंजाइटिस ने मुझे अन्धा कर दिया था। अशोक तो अभी एक वर्ष का ही था। यदि वह कहीं मर गया तो ? मैंने सोचा कि मुझे कुछ करना चाहिए। लेकिन वह विरक्ति दूसरे

लोगों में भी थी। दोपहर के खाने का समय हो गया लेकिन किसी ने कुछ नहीं खाया। बाहर सड़क पर प्रत्येक कार के जाने की ध्वनि से वातावरण में तनाव अधिक हो जाता था तथा मेरा दिल जोर-जोर से धड़कने लगता था कि सम्भवतः इस बार पिताजी कोई खबर ला रहे हों। मेरा ख्याल है कि सभी की यह हालत थी।

मेरी विचार-शृंखला का क्रम एक वर्ष पीछे चला गया, जब अप्रैल १६४४ में अशोक का जन्म हुआ था। उस दिन भी काफी गर्मी थी, किन्तु घर में प्रसन्नता का वातावरण था। रावलपिंडी में घर पर कोई रिश्तेदार इत्यादि नहीं थे, अतः उसके जन्म पर कोई उत्सव नहीं हुआ था। यह अपने में एक बिल्कुल शान्त प्रसन्नता थी जो सारे घर में फैलकर एक नए उछाह को जन्म दे रही थी। सभी उसे बिल्कुल मेरे समान बतलाते थे, एक व्यक्ति ने तो मेरा देर से आने वाला जुड़वाँ करार दिया। मेरे लिए अशोक एक खिलौने के समान था तथा मुर्गी के बच्चों, मछलियों तथा भैंस के साथ खेलते हुए मैं ऊब जाता था तो उसके साथ खेलने लगता था।

जब तक हम रावलपिंडी में रहे मैंने कभी भी अपने घर को चैतन्यता और जीवन से शून्य नहीं अनुभव किया। लेकिन अब वह कितना निर्जन, जर्जरित तथा आत्मा शून्य प्रतीत होता था। यद्यपि घर में यह अवस्था कुल दो दिन से ही थी किन्तु इसी बीच घर में घबराहट अपनी असहनीय चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

मैं अक्सर सोचा करता था कि गुजरात और लाहौर में मेरी दो महीने की बीमारी के दौरान में घर के लोग क्या सोचते होंगे? अब मैं जान गया था कि वह परेशानी इन दो दिनों की परेशानी की तीस गुनी रही होगी। मुझे अपने लाहौर वाले घर तथा उन रिश्तेदारों अथवा सम्बन्धियों की याद आई जो उस समय तक सम्वेदना प्रदर्शित करने के लिए आते रहे जब तक पिताजी अपना तबादला कराने के लिए मजबूर नहीं हो गए। यदि अशोक बच भी गया तो फिर वही पंडितों, हकीमों तथा अञ्जनों की भीड़ लगेगी। अशोक के लिए मुझे दुःख था तथा माँ के लिए क्लेश।

इस तरह बुरे विचार मेरे मस्तिष्क में निरन्तर घूमते रहे जब तक मेरा सर अधिक सोचने के कारण दर्द नहीं करने लगा। तथा मैं भारी मन से सोफे के पीठ

पर सिर टिकाकर आराम करने लगा। अब एक बार फिर मेरा ध्यान घड़ी की ओर गया।

अचानक ही बाहर मैदान से आने वाली कुत्ते के कराहने की आवाज ने नीरवता को भंग कर दिया तथा मैं चिहुँक कर कूद पड़ा। मैंने अपनी बहनों की तेजी से साँस चलने की आवाज सुनी। फिर पाम बहन ने कहा, 'हम जरूर घबरा गए हैं कि कुत्ते के भौंकने से चौंक पड़े।' कुत्ते का भौंकना बढ़ता चला गया। पाम बहन उठीं तथा कहने लगीं कि हमें चलकर देखना चाहिए क्या बात है। निम्मी बहन ने कहा, 'वह बीमार होगी।' हम सब उठ गए तथा पाम बहन के पीछे-पीछे चल पड़े।

जैसे ही हमने बरांडे में कदम रखा सूर्य की गरम किरणों ने हमारा स्वागत किया। कुछ समय तक हम ध्वनि की दिशा को जानने के लिए वहीं खड़े रहे जो रह-रहकर उठने वाली आहें रह गई थीं। फिर हम मकान के पीछे की ओर आगे बढ़े और फिर पाम बहन चिल्लाई, 'अरे! यह तो ब्लैकी है।'

मेरे पिताजी के दफ्तर के मुख्य क्लर्क पंडित जी पाम बहन के नजदीक ही खड़े हुए थे। पाम बहन ने पूछा, पंडित जी, क्या बात है?

'बहन जी, मुझे पता नहीं। मैं तो दफ्तर में काम कर रहा था कि मैंने इसे सुना।'

मैंने ब्लैकी के जल्दी-जल्दी साँस लेने और कष्ट से करवटें बदलने के कारण बजरी की खिसखिसाहट की आवाज सुनी। निम्मी उसे थपथपाने के लिए नीचे झुकी, लेकिन उसकी कराहने की आवाज और तेज हो गई।

'उसे अकेली छोड़ दो बहन जी, कहीं काट न ले।' पंडित जी ने कहा और बोले, 'क्या आप लोग जानते हैं यह कब उत्पन्न हुई थी।'

'जिस दिन अशोक हुआ था' मैं गुनगुनाया।

'मैंने भी यही सोचा था'—उन्होंने कहा और इसके बाद बड़ा लम्बा-चौड़ा वृत्तान्त सुनाना शुरू किया, लेकिन मैं इतना शोकमग्न था कि उस पर ध्यान नहीं दे सका।

मैं उनके कथन के वाक्यांश कहीं-कहीं समझ सकता था। वे कहते थे उन दोनों की आत्माओं का जन्म एक ही दिन हुआ था और क्योंकि वे दोनों एक ही दिन बीमार पड़े हैं अतः इनमें से एक को मरना पड़ेगा। फिर वे विस्तार से बताने लगे कि वे कैसे इस परिणाम पर पहुँचे हैं और मुझे उस पंडित की याद आगई जिसने

'पोर्च' में बैठकर मेरा हाथ देखा था। वह जैसे अपने जटिल कारणों से मुझे अलग रखना चाहता हो फिर भी अपने में मेरी श्रद्धा जगाने के लिए जोर-जोर से कह रहा हो।

पंडित जी की बात काटने की शक्ति या साहस किसी में नहीं था। हमारे मौन को अपनी प्रशंसा और श्रद्धा समझकर उन्होंने गणना करके निकाल लिया कि अगर मेरे भाई के प्राण बचने हैं तो अमुक समय पर कुत्ते की मौत हो जाएगी। उन्होंने केवल एक घण्टे बाद का समय निश्चित कर दिया। उनके तर्कों तथा अपने दुःख के कारण हम मूर्ख बने वहीं खड़े रहे और कुछ जानने से पहले हम उत्सुकता से कुत्ते के अन्त की प्रतीक्षा करने लगे, बल्कि मैं तो उसके मरने के लिए प्रार्थना भी करने लगा, उसी कुत्ते के लिए जो केवल दो दिन पूर्व ही मेरा निरन्तर साथ रहने वाला साथी था। जो मेरी बाइसिकल के पीछे दौड़ता था, गेंद पकड़ता था और खाना माँगता था। वह हमारे परिवार का एक सदस्य-सा बन गया था लेकिन मुर्गी के बच्चों, भैंस तथा मछलियों के समान नहीं। अब मैं उसी की मृत्यु की कामना कर रहा था। मैं विचार रहा था, हमें पंडितों के परामर्श पर विश्वास करके उसके अनुसार काम करना चाहिए। पंडितों तथा हकीमों के सम्बन्ध में मैंने जितनी बुरी धारणाएँ बना रखी थीं सब गायब हो गई। और पंडित जी की गणनाओं में विश्वास ही घर के दुखी वातावरण से अपने को बचाने का अब एकमात्र रास्ता नरज आता था।

वे कह रहे थे 'उसे अपने आप मरने दो। तुम उसे नहीं मार सकते।' जैसे हमने पहले कभी ऐसा किया हो। हम इतने अधिक भ्रमित हो गए थे कि हम स्वयं स्वतन्त्र रूप से विचार करने या वहाँ अधिक समय तक खड़े रहने में असमर्थ थे। लेकिन फिर भी हम अन्धविश्वास के वशीभूत हो पंडित जी के पास खड़े होकर कुत्ते का जीवन-मरण का संघर्ष देख रहे थे। उसकी प्रत्येक चिल्लाहट के साथ तथा प्रत्येक दुख भरी आह के साथ मैं अधिक विचारशील होता जाता था। हो सकता है कि वह बच जाए और अशोक...। काफी समय तक ब्लैकी के प्राण नहीं निकले और यद्यपि उसकी प्रत्येक मार्मिक आह पर मैं चौंक जाता था किन्तु फिर भी उसके लिए मेरे मन में कोई दया की भावना नहीं थी।

जब पंडित जी अपने तर्कों को कई बार दुहरा चुके और कुछ भी कहने को नहीं सोच सके तो वह चुप भी हो गए, लेकिन अपने विचारों का इतनी शीघ्रता से

अन्त होते देखकर उन्होंने जोर से कासिम अली को आवाज़ दी जो तुरन्त दफ्तर से उनकी आज्ञा पर दौड़ा आया।

'एक पुरानी जूती और एक लम्बी कील लाओ' उन्होंने कहा। और उसने बजाए एक पुराना जूता तलाश करने में समय नष्ट करने के अपनी ही एक जूती दे दी। फिर पंडित जी ने उस स्लीपर जैसी जूती के बीच में एक कील गाड़ दी। इसके बाद पंडित जी तथा कासिम अली जमीन पर बैठ गए तथा दोनों ने अपनी एक-एक अंगुली से कील का सिर पकड़ करके जूती को सन्तुलित करके अपने बीच में उठा लिया।

इसके बाद जो हुआ उससे मैं बड़ा प्रभावित हुआ। पंडित जी जो एक सीधे-सादे व्यक्ति थे तथा जो जन्म से ही हिन्दू समाज के धार्मिक कार्यों को पूरा कराने के लिए थे, उन्होंने जूती को कितने ही श्राप दिए, उसे इतना अनैतिक बतलाया तथा इतनी बुरी तरह हमारी बहनों के सामने चिल्लाए कि हम देखते रह गए। उस पुरुष की कण्ठ-ध्वनि वास्तव में इतनी प्रबल थी कि बेचारी ब्लैंकी का स्वर भी उसके सामने नहीं सुनाई पड़ने लगा।

'अरी जूती' वह चिल्लाए तथा उसे गालियाँ देना शुरू कर दिया तथा उसे माँ की गाली देकर कहा, 'तुझे सब सच बताना पड़ेगा, तू हमें सच बता। सच, सच, बता कि किसकी आत्मा का हरण होगा ? तुझे किसकी आत्मा की आवाज सुनाई दे रही है ?' वे प्रत्येक नाम की उस समय तक घोषणा करते रहे, यहाँ तक कि शायद जूती ने भी उन्हें जरूर सुन लिया होगा। फिर वह हमारी ओर घूमकर बोले, 'मैं अब नाम बोलना शुरू करता हूँ, जिसकी भी आत्मा जाएगी उसी के नाम पर वह जूती घूमने लगेगी।'

ब्लैंकी की आवाज़ इतनी अधिक व्यथापूर्ण होती जा रही थी जितनी कि पहले नहीं थी और वह जैसे बिल्कुल पस्त हो गई थी। प्रत्येक बार लम्बी साँस लेने पर उसका वक्षस्थल फूल जाता था किन्तु फिर भी उसे किसी ने पानी को भी नहीं पूछा।

पंडित जी ने नीरस स्वर में कहा, 'क्या वह मोहनलाल है, कृष्णलाल है, ज्ञानचन्द है, तारासिंह है,' अन्त में उन्होंने कहा, 'क्या वह अशोक है ?' तुरन्त एक भयानक निस्तब्धता फैल गई। क्या जूती घूमी थी ? भावुकता और आश्चर्य के वशीभूत होकर मैं पूछता हुआ भी डरता था। पंडित जी ने इसी बीच फिर अपना वही

सिलसिला प्रारम्भ किया, 'क्या यह तारकनाथ है'···क्या वह ब्लैकी है ?'

इसके पश्चात् मैंने जूती के जमीन पर गिरने की आवाज़ सुनी। अब पंडित जी उठे और बोले 'तुम्हें घबराने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है।' और बिना कुछ और कहे दफ्तर में चले गए। मैंने अपने रूमाल से माथे का पसीना पोंछा। हम पाँच मिनट और निश्चल खड़े रहे। इसके बाद ब्लैकी जोर से चिल्लाई तथा अंतिम बार बड़े जोर से भौंकी।

उसके मरने के बाद हमें कुछ अधिक करने के लिए नहीं रह गया था। हम धीरे-धीरे इस प्रकार चले जैसे कि किसी कष्ट में से निकल कर आ रहे हों। कासिम अली को ब्लैकी के शरीर को दफनाने के लिए छोड़ दिया। अगर किसी ने 'आह' भी भरी थी तो धीरे से, कम से कम मैंने नहीं सुनी।

हम ड्राइंग रूम में जाकर पिताजी के आने का इन्तजार करने लगे। आध घण्टे के बाद लगभग चार बजे के वह आ गए। जैसे ही वह ड्राइंग रूम में आए उनसे किसी ने कुछ नहीं पूछा। उन्होंने केवल यह कहा 'सब ठीक है।'

जिस खबर के लिए हम सुबह ग्यारह बजे से प्रतीक्षा कर रहे थे मिल गई, लेकिन घर की नीरवता में कोई परिवर्तन नहीं आया। 'क्या तुम सब थक गए हो ?' पिताजी ने पूछा।

'डैडी जी,' मैंने कहा, 'हम दोनों को ऐसा क्यों हुआ ?'

'मैं इस बारे में कुछ नहीं कह सकता' उन्होंने नम्रता के साथ कहा।

जिस नीरवता ने इस बात का अनुसरण किया, उसमें केवल मैंटल-पीस पर रखी घड़ी की टिक-टिक की ध्वनि ही सुनाई देती रही।

मेले से मरी हिल | ६

भारत में जहाँ भूख और दरिद्रता का पूर्ण साम्राज्य है तथा जहाँ सब मक्खी और मच्छरों की सेना से त्रस्त हैं, स्वच्छता तथा सफाई इत्यादि की व्यवस्था मानवीय स्तर से नीचे है, स्वास्थ्य विभाग को बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है। इसका कार्य गरीबी के कारणों को रोककर केवल महामारी इत्यादि को रोकना ही नहीं है किन्तु इनके एक बार फैलने पर इनका नियंत्रण करना भी है। इसी कारण अंग्रेजी सरकार ने स्वास्थ्य विभाग को अधिक प्राथमिकता दी थी तथा इस विभाग के कर्मचारियों की संख्या भी सबसे अधिक थी।

रावलपिंडी तथा मुलतान के उप स्वास्थ्य संचालक के रूप में मेरे पिताजी को दो डिवीजनों के जिलों में भ्रमण करना पड़ता था और जब कभी कालरा अथवा प्लेग की महामारी एक विस्तृत क्षेत्र में फैलती थी तुरन्त वहाँ जाते थे। कभी-कभी तो उन्हें आधे घण्टे की ही सूचना पर जाना पड़ता था। वह कभी-कभी लम्बी अवधि के लिए, जैसे कभी एक सप्ताह के लिए तथा कभी दो सप्ताह तक, चले जाते थे और क्योंकि मैं स्कूल नहीं जाता था अतः मुझे अक्सर उनके साथ जाने की आज्ञा मिल जाती थी। किन्तु तभी जब वह किसी महामारी के क्षेत्र में न जा रहे हों।

इसी दौरान में मैं एक बार एक मेले में गया जो कि प्रान्त भर में मशहूर था। यह रावलपिंडी से केवल सत्तर मील की दूरी पर लगता था। यहाँ मेरे पिताजी को जाना था तथा सफाई इत्यादि की उचित व्यवस्था करनी थी। मेरा चचेरा भाई योग, जो उन दिनों रावलपिंडी आया हुआ था, तथा निम्मी बहन भी साथ गए थे। कासिम चपरासी हमने साथ लिया था। वह बड़ा अनुदार विचारों का व्यक्ति था तथा उप स्वास्थ्य संचालक का चपरासी होने के कारण अपनी स्थिति को बहुत ऊँची समझता था।

जब हम 'पिण्डी' से मेले को चलने लगे तो मेरा चचेरा भाई योग तथा

पिताजी का सेक्रेटरी कार की अगली सीट पर बैठे, और बहन निम्मी तथा कासिम अली मेरे साथ पीछे। कासिम अली ने तुरन्त हमें मेले के सम्बन्ध में बताना शुरू कर दिया।

'वहाँ बड़ी भीड़ होती है, मिस साहब' वह बोला, 'आपको वहाँ होशियार रहना पड़ेगा।' उसने कहा कि पिछले दस वर्षों से वह सरकारी अधिकारियों के साथ मेले जा रहा है और उसने वहाँ बड़ी भयानक घटनाएँ होती देखी हैं। किसानों के मन में इस वर्दी के प्रति सम्मान नहीं होता तथा वह उसके लिए रास्ता छोड़ने से इन्कार कर देते हैं। उसने हमारी ही आयु के ऐसे बच्चे देखे थे जो बिछुड़ कर फिर कभी अपने माँ-बाप से नहीं मिले। अपने पिता-तुल्य व्यवहार के साथ उसने हमसे अपने साथ ही रहने के लिए कहा। निम्मी बहन उसके साथ विवाद से बचने के लिए सिर हिलाकर अपनी स्वीकारोक्ति प्रदर्शित करती रहीं। उसने हमें फेरी वालों से कुछ भी न खरीदने के लिए सावधान किया क्योंकि यह तरीका भयप्रद था तथा वह ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता था जिसके लिए माँ उसे जिम्मेदार ठहराएँ।

स्वभावतः अब उसने हमसे इस प्रकार से बातें करनी प्रारम्भ कीं जिससे उसके निर्णयों के प्रति हमें श्रद्धा हो जाए। वह निरन्तर हमें इस प्रकार के डर दिखलाता रहा, यहाँ तक कि निम्मी बहन ने योग के साथ स्थान का अदल-बदल कर लिया। योग फौरन अपने कुरुक्षेत्र मेले के अनुभव बतलाने लगा तथा कासिम अली को अच्छा लगने न लगने की परवाह किये बिना वह प्रत्येक पर हँसकर दूसरा उससे भी अधिक साहस का अनुभव सुनाता गया। निम्मी बहन भी योगेश को सुनने के लिए सीट पर झुक गई तथा इस प्रकार उसका उत्साहवर्द्धन किया।

योग बोला, 'मेला एक ऐसी जगह है जहाँ तुम स्वच्छन्दता से विचरण कर सको तथा जो कुछ जब चाहो कर सको।' वह स्वतन्त्रता को ही प्यार करता था। उसने बताया कि एक बार तो बहन लील को डराने के लिए उसने एक संपेरे से जहर रहित नाग लेकर अपने गले में डाल लिया था। कासिम अली के भय तथा मेरे और निम्मी के मनोरंजन में डूबते-उतराते आखिर हम मेले में पहुँच गए तथा हमारी कार को पुलिस के सिपाही ने तुरन्त हमारे डेरे की तरफ निर्देशित कर दिया।

वहाँ सामान आदि उतारकर हम तम्बू से निकलकर भीड़ में मिल गए।

हम मुख्य मार्ग पर पहुँचे तो हमें चारों ओर से धकेलती हुई भीड़ ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी त्यों-त्यों हमारी चाल कम होती गई। सूर्य भी अब मानो अपना प्रभुत्व दिखलाने के लिए अत्यधिक गर्मी फेंक रहा था तथा पसीनों से निकलने वाली दुर्गन्ध विभिन्न प्रकार के पकवानों से उड़ने वाली सुगन्ध से होड़ ले रही थी।

कासिम अली ऊनी सुनहरी किनारी वाली वर्दी पहने हुए था तथा सिर पर लाल रंग की एक अधिकारी के चपरसी की पगड़ी बांधे हुए था। उसने भीड़ में घुसने से इन्कार कर दिया। निम्मी बहन की 'समझ' के सहारे उसने हमें भीड़ से बचाने का प्रयास किया, लेकिन योग ने उसे बातों में हरा दिया तथा भीड़ ने उसकी रोकने की कोशिशों का अन्त कर दिया। वह हमारे पीछे उस समय तक चलता रहा जब तक योग के तेज़ कदमों के पीछे वह अकड़ के साथ चल सका।

इसके पश्चात् योग ने सुझाया कि अब कुछ खाना चाहिए। निम्मी बहन ने मुड़कर कासिम अली को देखा और उसे कहीं न देखकर राजी हो गई। और अब भीड़ के शोर को दबाती हुई बारहसिंगे की तीव्र ध्वनि सुनाई देने लगी थी। बीच-बीच में फेरी वालों की बहुत तेज़ आवाजें लोगों को अपनी रेहड़ी (पहियों पर चलने वाली गाड़ी) की ओर आकर्षित करती थीं, कासिम अली की चेतावनी का स्थान उन्होंने ले लिया था। आखिर हम इनमें से एक रेहड़ी के पास पहुँच गए और हममें से हर एक ने केले की पत्तियों को मोड़कर एक प्याला-सा बना लिया और उनमें हमने आलू, छोले, हलवा और पूरी खाये।

वहाँ उस दिन जब हम खड़े होकर उँगलियाँ चाट रहे थे तो एक ऐसी घटना घटी जोकि आज तक मुझे दरिद्रता के कारण होने वाली पतन की सीमा का ध्यान दिला देती है। घटना कैसे हुई थी यह मुझे उस समय मालूम हुआ जब मैंने उसका वर्णन पिताजी से किया। उस भीड़ में एक माँ अपने पाँच बच्चों के साथ खड़ी हुई थी, जिनमें एक लड़का लगभग आठ वर्ष का था तथा चार लड़कियाँ—पाँच वर्ष से लेकर दस वर्ष तक—विभिन्न आयु की थीं। स्वस्थ लड़का प्रसन्नतापूर्वक आलू-छोले खा रहा था तथा और माँग रहा था और उसकी चार बहनें जो टाँगों से कमजोर होने के कारण भीड़ के धक्कों को बड़ी कठिनाई से संभाल पा रही थीं, कुछ अध खुले मुख और सतृष्ण नेत्रों से उसकी ओर देख रही थीं। फिर भी उनमें से किसी ने भी अपने भाई या माँ से एक गस्से के लिए भी प्रार्थना नहीं की। निम्मी बहन का ध्यान उनकी ओर गया तथा छोटी लड़की से उसने कारण जानना चाहा।

लेकिन उन्होंने ऐसे देखा मानो उनकी समझ में कुछ भी न आया हो। इसके बाद निम्मी बहन ने उस छोटे लड़के की ओर रुख करते हुए कहा, 'तुम अपने खाने में से अपनी बहनों को उनका हिस्सा क्यों नहीं देते ?' घबराया हुआ-सा वह अपनी माँ की ओर देखने लगा जो अपनी लड़कियों से कुछ अधिक स्वस्थ दिखलाई पड़ रही थी। निम्मी की ओर थकी हुई नज़रों से देखते हुए वह मरी-सी आवाज़ में बोली, 'कुछ लोग भूखे रहते हैं' और क्षीण-सी कमजोर छोटी-छोटी लड़कियों की ओर इशारा करते हुए बोली 'ये पहले चले जायेंगे।'

निम्मी बहन स्तब्ध रह गई लेकिन इससे पहले कि वह उनके लिए कुछ करे, भीड़ के रेले ने हमें उस परिवार से दूर कर दिया।

हम भीड़ में मिलकर दुकान-दुकान तथा विभिन्न स्टैन्डों को छोड़ते हुए आगे बढ़ते चल गए जहाँ हमने परिवार के लिए कुछ उपहार खरीदे। अंधेरा हो रहा था और हम थक भी गए थे, इसलिए हम अपने खेमे की ओर लौट पड़े।

खेमे के पीछे हमने लम्बे-लम्बे लुकाट के पेड़ों का एक झुंड देखा तथा निम्मी बहन ने कहा कि अली की आँख बचाकर वहाँ चलना चाहिए। पेड़ पके हुए लुकाटों से लदे थे तथा 'अनधिकृत प्रवेश निषेध, आज्ञा न मानने वाले को १५०) रुपये दण्ड' का नोटिस लगा हुआ था। इस नोटिस पर ध्यान दिये बिना योग ने हमसे कुछ प्रतीक्षा करने को कहा और स्वयं पड़ोस के एक इन्स्पेक्टर के बँगले से एक बैटरी तथा एक टोकरी माँगने—इससे पहले कि निम्मी विरोध प्रदर्शित करे—वह चला गया था। लेकिन जल्दी ही वापस भी आ गया। पेड़ पर चढ़ते हुए उसने निम्मी बहन से कहा कि वह बैटरी लेकर चारों ओर देखती रहे और जैसे ही कोई आता दिखलाई दे, उसे इशारा कर दे। मुझसे उसने टोकरी पकड़ने को कहा जबकि स्वयं उसे लुकाटों से भरने लगा। उसके शीघ्रता से एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर पहुँचने से टोकरी जल्दी ही ऊपर तक लुकाटों से भर गई और फिर वह हमें पेड़ों के बीच छिपी हुई घास की ओर ले गया, जहाँ हम बिना किसी की चिन्ता किए लुकाट खाने लगे। योग सदा की तरह प्रसन्न था। समय बहुत जल्दी गुज़र गया।

लगभग एक घण्टे पश्चात् उसके उन्मुक्त हास्य से चौकीदार हमें पहचान गया और गुठलियों के ढेर की ओर इशारा करते हुए कहा कि अब कसूर छिपाने से कोई लाभ नहीं है तथा योग की तात्कालिक बहानेबाज़ी काम न आ सकी। लेकिन ठीक उसी समय कासिम अली आ गया और तनकर चौकीदार से बोला, 'क्या तुम्हें

मालूम नहीं है कि ये उप स्वास्थ्य संचालक के बच्चे हैं ?'

लेकिन यदि चौकीदार का आना कुछ अड़चन वाला था तो कासिम अली का आना भी कोई बहुत अधिक प्रसन्नता की बात नहीं रही। खेमे को वापस जाती बार रास्ते भर वह हमें झिड़कता रहा। 'मैं घण्टों से तुम्हें देखता फिर रहा हूँ।' वह बोला, 'और यदि कुमारी निम्मी को कुछ हो जाता तो ? किसके सर इसका दोष लगता ? मेरे सर पर और किसके ?' उसने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा, 'अगर इन्हें कहीं कुछ हो जाता तो डाक्टर साहब क्या कहते ? क्या फिर मेरी नौकरी रह जाती ? मेरे पास फिर क्या बचता ? क्या तुम्हें अपने नौकरों का तनिक भी ख्याल नहीं है ?' इस प्रकार गुनगुनाते हुए वह कहता ही रहा।

'तुम अब तक क्या करते रहे ? और कहाँ तुमने खाना खाया ?' उसने पूछा। निम्मी बहन ने बिना विचारे तुरन्त कह दिया 'एक हलवाई की दुकान पर।'

'मैंने तुमसे कहा था न कि वे चीजें अच्छी नहीं होतीं ? अगर अब कल को तुम बीमार पड़ गए तो ? और हाँ, योग साहब ! आपने वह लुकाट कहाँ धोए थे?'

योग ने मज़ाक करते हुए कहा—'लेकिन कासिम अली ! कल ही तो वर्षा हुई थी।' कासिम अली पर इस मज़ाक का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जैसे-जैसे हम खेमे के पास पहुँचते गए वह शान्त होता गया क्योंकि वह जानता था कि पिता जी आ गए थे। अगले दिन योग ने, जो अपनी बैटरी लेने गया था, हमें बतलाया कि कासिम अली दिल खोल कर लुकाटों पर टूटा हुआ था तथा उसकी गुठलियों का ढेर हमारी गुठलियों के ढेर से कहीं अधिक बड़ा था।

अगले दिन हम सब पिताजी के साथ दौरे पर गए। अभी झुटपुटा था और हम मुख्य मार्ग को जाने वाली निर्जन गलियों पर पहुँचे। वहाँ पर व्याप्त पूर्ण नीरवता एक रात पहले के कोलाहलपूर्ण वातावरण की गवाही देती थी और जब हम उन तम्बुओं में पहुँचे तो वहाँ, जहाँ कुछ समय के लिए किसान, उनकी पत्नियाँ तथा बच्चे रहते थे, बच्चों के पानी लाने के लिए दौड़ने तथा मेले के अन्तिम दिन की तैयारी करने की सरगरमी के कारण कुछ शोर सुनाई दिया।

पिताजी के विभाग के इन्स्पेक्टरों ने, जो तम्बुओं के सामने खड़े थे, उनका स्वागत किया और उन्होंने नियमित ढंग से उन मामलों के सम्बन्ध में पूछा, जिनसे उन्हें महामारी फैलने की पूर्व सूचना मिल जाए। हर एक इन्स्पेक्टर ने नकारात्मक

उत्तर दिया, अतः हमने प्रसन्नता का अनुभव किया। प्रातःकाल के सारे समय में हम खेमों ही खेमों का निरीक्षण करते चले गए और उसके पश्चात् बीच के रास्तों का भी निरीक्षण किया।

हलवाई लोग अब तक सब अपनी-अपनी दुकानों पर पहुँच गए थे और अपनी-अपनी अँगीठियाँ सुलगा रहे थे। कुछ हलवाइयों ने अपना शीरा बनाना भी शुरू कर दिया था और मैं बड़े-बड़े चमचों के कढ़ाइयों में चलने की आवाज को एक संगीत-मय ध्वनि के समान सुन सकता था तथा इन्स्पेक्टर लोग इधर-उधर घूम-घूमकर थालियाँ ढाँपने के कपड़े, दूध तथा सब्जियाँ इत्यादि का निरीक्षण कर रहे थे।

इन हलवाइयों को देखकर मुझे उस परिवार की याद आ गई जिसे हमने कल देखा था। वह घटना मुझे याद आई जो हमारे खरीदारी करते समय तथा लुकाटों पर हमारे अभियान के दौरान में मस्तिष्क से निकल गई थी। यही विचार निश्चय ही निम्मी बहन को भी आया होगा, क्योंकि उन्होंने वह घटना पिताजी को सुनानी प्रारम्भ कर दी। उन्होंने बताया कि उस घटना से उन्हें कितना अधिक दुःख पहुँचा था तथा भीड़ के धक्के ने किस प्रकार हमसे उस परिवार को, इससे पहले कि हम उनके लिए खाने का प्रबन्ध करते, अलग कर दिया था।

पिताजी ने बतलाया कि अपने दौरों में उनके सामने ऐसे कई मामले आए थे जहाँ लड़कों को भर पेट खाना दिया जाता था, चाहे लड़कियाँ भूखों मर जाएँ। उन्होंने कहा, 'उनके दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करो। लड़की गरीब किसान पर बड़ा भारी बोझा होती है। उसे उसके लिए एक पति की तलाश करनी पड़ती है और अक्सर एक सुयोग्य वर इस पर निर्भर करता है कि गरीब किसान कितना रुपया दहेज में दे सकता है। अतः उसे विवश होकर बनियों से अत्यधिक ब्याज पर रुपया उधार लेना पड़ता है, जिससे उसकी लड़की खुश रहे। कभी-कभी तो यह कर्ज़ विवाह के वर्षों बाद तक चलता है तथा इसके बावजूद परिपाटी तथा नियम यह है कि वह उस गाँव में, जहाँ लड़की का विवाह हुआ है, पानी तक नहीं पी सकता।

'दूसरी ओर बेटे पर दस वर्ष का होते ही खेती के कार्य में सहायता के लिए विश्वास किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वह बीमारी अथवा बुढ़ापे आदि आड़े समय में काम आता है। वह अपने बूढ़े माँ-बाप की देख-रेख करता है तथा अपने पिता की मृत्यु पर सारे परिवार का उत्तरदायित्व वहन करता है।'

अब मैं उस समय के सम्बन्ध में सोचने लगा जब मेरे माता-पिता दबी आवाज़ों में मेरी बहनों के लिए उपयुक्त वर की तलाश के लिए बातचीत किया करते थे। हम लोग फिर भी कुछ अमीर थे लेकिन हमारे लिए भी एक सुयोग्य वर ढूँढने का उत्तरदायित्व, दहेज का प्रबन्ध तथा एक अच्छा परिवार देखना, जहाँ कि लड़की प्रसन्न रह सके, एक समस्या ही थी।

अब लोगों ने रास्तों पर चलना प्रारम्भ कर दिया और गलियों में फेरी वालों ने चिल्लाना शुरू कर दिया। हाँ, इस समय की आवाज़ें कल के मुकाबले में अवश्य कुछ भर्राई-सी लगती थीं। उस दिन हमने अपना दोपहर का खाना एक हलवाई की दुकान पर खाया तथा इसमें हमारे साथ पिता जी तक सम्मिलित हुए।

हम भीड़ के बीच में रास्ता बनाते जा रहे थे और बहन मुझे बताती जा रही थीं कि लोग फटे-पुराने गन्दे कपड़ों को ही रंगकर पहने हुए हैं।

एक दिन पहले ही योग ने हमें खूब हँसाया था। कासिम अली के साथ कभी-कभी मज़ा किरकिरा ज़रूर हो जाता था, पर वह निरन्तर हमारा मनोरंजन करता रहा। लेकिन अब यद्यपि मसकबाजे बज रहे थे और स्त्री-पुरुष अब भी खुश दिखलाई पड़ रहे थे, लेकिन फिर भी हम सभी विचारों में डूब गए थे और सोच रहे थे कि जो ग्रामीण इस सालाना मेले में हिस्सा लेने आए हैं, वे गाँवों में कैसे रहते होंगे ?

यहाँ तक कि योग की ज़िन्दादिली भी आज कुछ कम हो गई थी और उस रात जब हम मेले से वापस हुए तो अधिक समय तक बातें पिता जी ही करते रहे। हम उनसे उन आदमियों के बारे में पूछ रहे थे जो हमारी तरह नहीं रहते थे, और वे उत्तर दे रहे थे।

गर्मी के महीनों में जब सूर्य की तेज़ किरणें मैदानी भाग पर सीधी पड़ती थीं तो हम सर्दी की ओर पहाड़ी स्थानों में जाते थे। मेरा विचार है कि पहाड़ी स्थान भारत के अद्भुत स्थान हैं और इनका महत्त्व अंगरेजी राज्य के समय में अधिक बढ़ गया है। मैदानी भाग की गर्मी को न सहनकर कुछ ही सौ मील के अन्तर पर गगनचुम्बी हिमालय के स्थानों में ठंड तथा हरियाली का आनन्द लेने के लिए १५०० मील लम्बी हिमालय की शृंखला में अंग्रेजों ने स्थान-स्थान पर रहने के लिए सुरम्य स्थान बना लिये थे। भली प्रकार से सम्पन्न व्यक्तियों के लिए यह पर्वतीय स्थान सैर के लिए अच्छे स्थान होते थे, जहाँ कि वे हल्का काम करने के

अतिरिक्त प्रकृति की सुन्दरता, पहाड़ों की प्रफुल्लता तथा ताजगी का भी आनन्द ले सकते थे। वास्तव में अंगरेजी शासन काल में भारत की दो राजधानियाँ थीं—एक थी सर्दियों की राजधानी दिल्ली तथा दूसरी गर्मियों की राजधानी शिमला।

रावलपिंडी में रहने वाले ब्रिटिश सेवा के कर्मचारियों के लिए 'मरी' ही शिमले के समान थी तथा ग्रीष्म ऋतु में सभी उच्च अधिकारी इस छोटे-से पहाड़ी नगर में शरण लेते थे, जो रावलपिंडी से केवल चालीस मील की दूरी पर था। हम मरी की पहाड़ियों के लिए प्रत्येक जून में चल पड़ते थे। हम सब नौ व्यक्ति तथा एक नौकर एक कार में घुस जाते थे। बिस्तर कार की छत पर रख दिए जाते थे। हमारे सूटकेस अधखुले ट्रंक से बाहर झाँकते रहते थे। तथा एक छोटा सा 'यूनियन-जैक' कार पर आगे लहराता रहता था।

पिताजी को समय-समय पर नीचे रावलपिंडी जाना तथा अपने जिले के गाँवों का दौरा करना पड़ता था पर हम ऊपर पहाड़ पर ही रहते थे। हमारा बंगला ढलवान पर बना हुआ था। इस बार गर्मियों की छुट्टियों में हमें समय का ध्यान बिलकुल नहीं रहा। सुबह के प्रारम्भिक घण्टे हम टेढ़ी-मेढ़ी चक्राकार पग-डण्डी पर घूमने या घण्टों तक घुड़सवारी करने में बिता देते थे।

एक सुबह, जिसकी सुन्दरता में कुहरे के कारण चार चाँद लग गए थे, सूर्य की आभा के पर्वत-शिखरों पर पहुँचने से पूर्व ही हम अपने बंगले को छोड़कर सैर के लिए चल पड़े। निम्मी बहन और मैं बाकी परिवार से बिछुड़ गए और हम ढलवान पर बनी ऊबड़-खाबड़ पगडंडी पर घूमते रहे। और जब इस चक्राकार संकरी सड़क पर चलते हुए अन्तिम मकान के पास पहुँचे तब मुझे ख्याल आया कि क्यों ये सुन्दर पर्वत पहाड़ों पर चढ़ने वालों को आकर्षित करते हैं, क्यों महान् आत्माएँ नवीनता की खोज में इन उन्नत शिखरों की मौन तथा एकान्तप्रिय सुन्दरता की भूखी रहती है तथा अविजित शिखरों पर विजय-पताका लहराने का प्रयास करती रहती हैं, यद्यपि इन प्रयासों में कभी-कभी उन्हें अपने जीवन तक से हाथ धोना पड़ता है। हमने जब पहाड़ की चट्टान के किनारे की ओर जाने का प्रयास किया तो निम्मी बहन ने घबराकर मुझे पहाड़ की ढलवान के सम्बन्ध में बतलाया और दूसरी ओर गहरी घाटी के होने का बोध कराया। मैं पहाड़ों को स्वयं देखने, उन पर स्वयं चलने तथा उनकी चोटियों पर चढ़ने की प्रबल साध को पूरा करने के साधनों से विधाता के द्वारा वंचित कर दिया गया था।

मैं चाहता था कि निम्मी बहन अपना बयान बन्द कर दें क्योंकि इससे मुझे उसी अकेलेपन का अनुभव होता था जो गुलमर्ग, शिमला, मंसूरी इत्यादि के पहाड़ी स्थानों पर मैंने अनुभव किया था। 'यह मत कहो निम्मी बहन ! भगवान् के लिए ऐसा मत कहो ! मैंने कहा, उन्होंने अपना कथन भी पूरा नहीं किया। मैं भी समझ गया कि इससे उन्हें वेदना पहुँची है तथा ऐसा कहने के तुरन्त पश्चात् ही मुझे बड़ी शर्म आई और मैंने सोचा कैसे कठोर शब्दों का प्रयोग मैंने अपनी बहन के लिए किया। जैसे ही मैंने इस सम्बन्ध में तथा अपने कृतज्ञ न होने पर विचार किया, मेरे मन में ग्लानि की मात्रा और भी बढ़ गई। अब मेरी कुछ ऐसा काम करने की इच्छा हो रही थी जिससे वह प्रभाव जाता रहे। लेकिन निम्मी बहन तुरन्त संभल गईं तथा विषय बदलकर कहने लगीं, 'अब हमें वापस काटेज पर जाने के लिए रास्ता किस तरह मिलेगा ?'

इस प्रकार पर्वतों की इन चट्टानों तथा चक्राकार सड़कों द्वारा प्रदत्त आनन्दमय वातावरण में दिन पर दिन बीतते चले गए। सायंकाल के समय मरी हिल की मुख्य सड़कों पर अवश्य परिवर्तन प्रतीत होता था। माल रोड लगभग दो मील लम्बी थी, जिसमें बीच के भाग में लगभग एक चौथाई मील तक दोनों ओर पाश्चात्य ढंग की दुकानों के प्रदर्शन-कक्ष थे। इन दुकानों में विक्रेता अपनी जाति के इंगलैंड के विक्रेताओं का अनुकरण करते थे, प्रसन्ना के साथ बात-चीत करते थे तथा तबीयत से ग्राहकों से हाथ मिलाते थे। मरी हिल के लगभग सभी ग्रीष्म-कालीन निवासी छः बजे के पश्चात् माल रोड पर भ्रमण करने के लिए आ जाते थे, तथा उस समय तक ऊपर-नीचे आते-जाते रहते थे जब तक वह प्रदर्शन-कक्षों से अपनी इच्छित वस्तुओं का क्रय नहीं कर लेते थे। वहीं घाटी से आने वाले अपने मित्रों के साथ हँसी-मजाक भी करते थे। घूमते हुए थककर विद्यार्थीगण कभी-कभी काफी हाऊस में ठहर जाते थे, जहाँ वे काफी के प्याले और भुने हुए अखरोटों के साथ देश के राजनीतिक घटना-चक्र पर विचार करते रहते थे। यहाँ तक कि बढ़ते हुए तर्कों का शोर बाहर माल रोड पर होने वाले शोर को मात देने लगता था।

माल रोड की ढलवान से एक पतली-सी सड़क फैले हाथ के समान निकल गई थी। इसके दोनों ओर भारतीय बाजार था जहाँ बड़ी-बड़ी अधखुली सब्जी की टोकरियाँ एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली रहती थीं। इसके अतिरिक्त कुछ मोचियों की तथा लुहारों की दुकानें भी व्यस्त अवस्था में थीं। कम खर्च गृहपत्नियाँ

तथा घरेलू नौकर इन सब्जी-विक्रेताओं से टमाटरों या मूलियों की कीमतों को एक-दो पैसा कम करने के लिए जिरह किया करते थे।

मुझे दिन-रात इन सब्जी-विक्रेताओं की जिरह को सुनकर तथा उनकी सौदे-बाज़ी की शक्ति को देखकर कम आश्चर्य नहीं होता था। उनकी समस्त सफलता उनके व्यापार की एक ही गुप्त बात पर निर्भर करती थी और वह यह कि किस प्रकार वे ग्राहक को अपने तर्कों द्वारा शान्त करते हैं। यह बाज़ार गरीबों का माल रोड था जहाँ से अमीर लोग केवल अपने नौकर-चाकरों को भेजकर हरी सब्जियाँ इत्यादि अपने खाने के लिए मँगा लेते थे।

ऊपरी माल रोड में इसी बाजार का एक और हिस्सा-सा था जहाँ कुली ग्राहकों को किराए पर मकान तथा रिक्शे आदि देने के लिए बात पक्की करते थे। मैं जब सर्वप्रथम मरी हिल पर आया तो न तो मैंने किसी रिक्शे को देखा और न उसके बारे में सुना था। सबसे पहले दिन जब मैं और पाम बहन माल रोड पर घूम रहे थे तो मैंने नंगे पैरों के ऊबड़-खाबड़ सड़क पर दौड़ने की ध्वनि सुनी और तभी एक तेज़ आवाज़ आई, 'और तेज चलो। हमें समय पर पहुँचना है।' 'यह क्या है ?' मैंने पूछा।

'एक रिक्शा है' उसने कहा। उसके पश्चात् उसने बतलाया कि दो आदमी बैठे हुए अपने समाचारपत्र पढ़ रहे थे जब कि चार कुली रिक्शे को गली के ढाल पर ऊपर की ओर खींच रहे थे।

उस दिन के पश्चात् जब कभी भी हम घूमने के लिए जाते थे तो मैं अपने कानों से उसी ध्वनि को सुनने का प्रयास करता था तथा यह प्रयास उस समय तक चलता रहा जब तक कि मैं इसे सुनने का इतना अभ्यस्त नहीं हो गया कि आगे खींचने वाले दो कुलियों की भारी साँस तथा पीछे से रिक्शे को धकेलने वाले जिन्हें वजन से लदे हुए घोड़ों के समान रिक्शा तथा उसमें बैठे हुए सवारों को खींचना पड़ता था, तथा थककर लम्बे-लम्बे भारी साँस लेते हुए दोनों कुलियों की पग-ध्वनि पहचानने न लगा। कभी-कभी हम घूमते हुए किसी ऊँचे स्थान पर रेलिंग के सहारे खड़े हो जाते थे तथा डरते हुए-से कुलियों द्वारा एक आना अथवा एक पैसा अधिक माँगने का तर्क तथा ग्राहकों की आज्ञाकारक ध्वनियाँ सुनते थे जो शान्ति के साथ अपने घरों में घुसकर धीरे से भारी-भारी दरवाज़े बन्द कर लेते थे।

मेरे पिता जी ने मुझे बतलाया था कि ये कुली इन पर्वतों में पूरे वर्ष तक

रहते थे और अपने फटे-पुराने कपड़ों में ही कटकटाती हुई सर्दी, बर्फ तथा आँधी बर्दाश्त करते थे, जबकि दैनिक जीवन के उपयोग की वस्तुओं का अत्यधिक अभाव रहता था। उन्होंने बतलाया कभी-कभी तो इस कठोर जलवायु तथा कठिन जीवन के कारण वे चालीस वर्ष से पहले ही काल के ग्रास बन जाते हैं। तथा अधिक से अधिक दस-पन्द्रह वर्ष तक वे निरन्तर रिक्शा चला सकते थे।

शाम को हम क्लान्त तथा थके हुए पहाड़ों तथा माल रोड से वापस घर लौट आया करते और अँगीठी के पास अपने हाथों को गरम करने के लिए बैठ जाया करते तथा उन गरम हाथों से नाक तथा कानों को रगड़कर उनकी ठण्ड मिटाया करते थे। यदि आग कम गरम होती थी तो हम उस पर काजू भूना करते थे तथा अँगुलियों की ठण्ड उतारने के लिए उसका प्रयोग करते थे।

इसके पश्चात् एक-एक कर हम सब बिस्तरों में घुस जाते थे और यदि ठंडी बर्फीली हवा बहुत तेज नहीं चलती थी तो अपनी खिड़की का एक किवाड़ खुला छोड़ देते थे जिसमें से हम बाँसुरियों से निकलने वाले दर्द भरे गीत, जो पहाड़ियों के विशेष गीत होते थे, सुनते थे। अक्सर तेज़ हवा के चलने की 'सांय-सांय' की ध्वनि उस सुन्दर संगीत की कोमल तरंगों को दबा देती थी। उसे सुनने के लिए हम अपनी सभी इन्द्रियों को काम में लाते थे, जिसमें हम आंशिक रूप से सफल भी हो जाते थे तथा कभी नितान्त असफलता ही हाथ लगती थी। कभी-कभी बाँसुरी की ध्वनि के स्थान पर पहाड़ियों के स्निग्ध संगीत के मधुर स्वर बोल उठते थे जो कि उस 'सांय-सांय' करती तेज़ चलने वाली वायु की शय्या पर डूबते-उतराते हम तक पहुँच जाते थे।

समय की गति शीलता के साथ-साथ इस प्रकार की महत्त्वपूर्ण और साधारण दोनों प्रकार की घटनाएँ हमारी स्मृतियों में कुछ और जोड़ देती हैं। लेकिन फिर भी उनमें कोई ऐसी शक्ति होती है जो पहाड़ों से लौटने पर भी उन स्मृति-चिन्हों को मिटने नहीं देती। मैंने लगभग प्रत्येक ग्रीष्म ऋतु पहाड़ों पर बिताई है तथा भारत-विभाजन के बाद तो सर्दियों में भी कभी-कभी घुटनों-घुटनों तक की बर्फ में रहा हूँ। प्रत्येक बार वहाँ लौटने की पुन: मन में उत्कट इच्छा जागृत हो गई है कि पहाड़ों के निवासियों की अनोखी धुनों के मधुर स्वर फिर सुन सकूँ या बिना किसी बाधा के विचरण करता घूमता रहूँ।

खाने की मेज़ नहीं, स्कूल | ७

रावलपिंडी में हमारे ठहरने की शुरुआत से ही हमारे जीवन में कई नई संस्थाएँ आईं, लेकिन उनमें सबसे ज्यादा स्थायी था खाने की मेज़ पर लगने वाला स्कूल। मेरी तीन बड़ी बहनों ने चौदह वर्ष की छोटी आयु में ही कालेज में प्रवेश कर लिया था तथा पाश्चात्य सभ्यता के नए विचारों से परिचय प्राप्त कर खुश-खुश घर आती थीं। ईसाई मत तथा पाश्चात्य दर्शन के बारे में वे पिताजी से पूछा करती थीं, जिन्होंने यूरोप तथा अमेरिका दोनों महाद्वीपों का खूब पर्यटन किया था। सबकी सुविधा के लिए निश्चय किया गया कि सारे विचार-विमर्श शाम को खाने की मेज़ पर ही हुआ करें।

हम अपना सायंकालीन भोजन साढ़े आठ बजे किया करते थे। लाहौर में हम खाना खाने के बाद भाभी जी—हमारी दादी जी—के पास कहानियाँ सुनने के लिए दौड़ जाया करते थे, अब नौकर मेज़ की सफाई किया करते थे और हम मेज़ पर ही बैठे रहते थे।

पहले तो ये विचार-विमर्श मेरी बहनों से ही सम्बन्धित हुआ करते थे, और वे अपनी सिस्टर्स तथा मदर सुपीरियर की देख-रेख में किया गया कालेज का कार्य बताया करती थीं। वे पिताजी से ईसाई मत तथा इंगलैंड के जनतान्त्रिक नियमों के सम्बन्ध में पूछा करती थीं। तथा कभी-कभी उनके प्रश्न ऐसे सीधे-सादे हुआ करते थे जैसे यह पूछना 'क्या पाश्चात्य देशों के सभी व्यक्ति हमारी स्कूल की सिस्टर्स जैसे शान्त प्रकृति हुआ करते हैं।' ऐसा प्रतीत होता था कि मेरी बहनें पश्चिम को ठीक वैसा ही समझती थीं जैसा कि उनकी अध्यापिकाओं द्वारा व्यक्त होता था। तथा उनकी पाठ्य-सामग्री से उन्हें यही लगता था कि इंगलैंड ही समस्त पश्चिमी गोलार्ध है। वे यह कहा करती थीं कि यदि तुमने अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में मज़दूरों तथा मिल-मालिकों के बीच इंगलैंड में होने वाले संघर्ष को समझ लिया तो तुम समझ जाओगे कि उसी समय समस्त यूरोप के देशों

में यह वर्ग-संघर्ष की आग भड़की थी। तथा उनके लिए समस्त ब्रिटिश साम्राज्य का दर्शन रोमन साम्राज्य के समान था।

इस प्रकार के आवश्यक तथ्यों के अत्यन्त साधारणीकरण को ठीक करने के लिए पिताजी हमें यूरोप के और अमेरिका के अपने अनुभव बतलाया करते थे। वे हमें अमेरिका के विशाल जनतन्त्र, रूस की स्वेच्छाचारिता तथा मध्य यूरोप के फ़ासिज़्म के बारे में भी बताते थे। धीरे-धीरे हमने ईसाईमत को एक नए दृष्टि-कोण से देखना प्रारम्भ कर दिया। अब हमने प्रथम बार इन श्वेतांग जातियों की विभिन्नताओं तथा प्रभेद का अवलोकन किया।

पिताजी हमें पाश्चात्य विश्व में जीवन-यापन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देते थे तो हम सबके मन में पश्चिम को देखने की लालसा उठती थी। धीरे-धीरे सायंकालीन भोजन के पश्चात् इस विचार-विमर्श के दौरान में हमें ऐसा लगता था मानो हम सब एक लारी में बैठकर पाश्चात्य देशों का भ्रमण कर रहे हैं। हम एक साथ फ्रांस के रात्रि-क्लबों (नाइट क्लब) का स्कैण्डिनेविया के संगीत-समारोहों और अमेरिका के 'जाज़' का आनन्द लिया करते थे। तब हम इटली की 'स्पागेटी', फ्रांस की मदिरा, तथा अमेरिका के 'हॉट डोग्स' का स्वाद लेने की कल्पना किया करते थे।

मुझे याद नहीं कि कब इन छोटी-छोटी घटनाओं और काल्पनिक यात्राओं के वर्णन पृथ्वी का वास्तविक भ्रमण करने की योजना के रूप में बदल गए। हमारा परिवार चूँकि बहुत बड़ा था, अतः हम जहाज़ या हवाई जहाज़ से नहीं जा सकते थे। इसलिए निश्चय हुआ कि रावलपिंडी में एक लारी बनवा कर इंगलैंड चला जाय। यह भी निश्चित था कि सभी सड़कें लन्दन नहीं जाती थीं लेकिन कुछ मामूली किराया देकर हमारी लारी किसी भी समुद्री जहाज़ अथवा स्टीमर के द्वारा पानी को पार कर सकती थी। हमारी अगली समस्या यह थी कि ऐसी लारी हमें कहाँ से मिलेगी। हमने रावलपिंडी के 'शिवरले' कम्पनी के अधिकृत विक्रेता के साथ सम्पर्क स्थापित किया जिन्होंने किसी भी ढाँचे में इञ्जन फिट करने का वायदा किया। बहुत-सी रातें इस लारी के ढाँचे का डिजाइन बनाने में ही बीत गई। किस प्रकार उसमें बिस्तरों को समेटा जाएगा, किस स्थान पर हम पानी की टंकी लगाएँगे तथा कहाँ उसमें खाना बनाया जाया करेगा। पिताजी ने कहा कि स्थान की बचत करने का हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए तथा पहाड़ों और

रेगिस्तान में ग्राने वाली कठिनाइयों से भी सुरक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए ।

ग्राखिरकार मिस्त्रियों से परामर्श करने पर मालूम हुग्रा कि लारी दो मंज़िल की होनी चाहिए ग्रौर केवल ढाँचा ही लगभग पन्द्रह हज़ार रुपये की कीमत का होगा, ग्रर्थात् उस समय के चार हज़ार डालर से कुछ ग्रधिक । इन मिस्त्रियों ने लकड़ी का एक माडल भी बना दिया, जिसे हमने दर्शनार्थ मैंटलपीस पर रख दिया । ग्रब मामला यहीं रुक गया तथा ग्रब हमारे सम्मुख प्रश्न यही था कि एक बार वहाँ पहुँचकर हम क्या करेंगे ?

पिताजी बोले कि मेरी बहनें मामूली किसान बालिकाग्रों की धोतियों तथा साधारण काँच की चूड़ियों से लेकर बनारस की सुन्दर साड़ियों तथा सोने के नैक-लिस तक पहन सकती थीं । हम एक स्टेज किराए पर ले लेंगे तथा उस पर भारतीय ग्रामीण जीवन की भाँकियों का प्रदर्शन एक छोटे नाटक के रूप में करेंगे ।

उन्होंने हमें बतलाया कि पश्चिम के लोग भारतीय या एशियाई जीवन को जानने के लिए कितने उत्सुक रहते हैं तथा गोरे व्यक्तियों में नवीन चीजों को जानने की उत्सुकता तो है, लेकिन उपयुक्त सूचनाएँ नहीं मिल पातीं । मेरी बहनों के प्रदर्शनों में ग्रौर ग्राकर्षण पैदा करने के लिए वह भारतीय इतिहास तथा दर्शन पर व्याख्यान देंगे ग्रौर यदि दर्शक ग्रधिक होंगे तो गरम देशों की विशेष बीमारियों पर भी व्याख्यान देंगे । हमें उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक के सभी प्रमुख स्थानों के चित्रों का भी संग्रह करना था जिसमें कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण सभी स्थानों के गाँवों को लेकर बड़े-बड़े शहरों तक के चित्र होने थे ।

यद्यपि ग्रंग्रेजों ने भारत पर दो सौ वर्षों तक राज्य किया लेकिन पिताजी का कथन था कि उन्होंने यहाँ के निवासियों की दिल की ग्रावाज़ तथा ग्रात्मा को कभी भी ग्रनुभव नहीं किया । यह सत्य है कि ग्रंगरेजों की इस कमी के ग्रनेक कारण थे किन्तु मुख्य कारण यह था कि गरीब से गरीब तथा साधारण भारतीय भी बड़ा स्वाभिमानी ग्रौर ग्रलगाव रखने वाला व्यक्ति होता है ग्रौर उन पारम्परिक रीति-रिवाजों (जिन्हें ग्रंगरेज केवल ग्रंधविश्वास समझकर त्याग देते हैं) से ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है ग्रौर उन्हीं से उसे गुणों ग्रौर शक्ति की प्राप्ति होती है । प्रत्येक भारतवासी शताब्दियों के विश्वास ग्रौर पीड़ाग्रों का मूर्ति-मान प्रतीक है, ग्रौर कभी-कभी तो भारतीय इतिहास का व्याख्याता भी।

मेरे पिताजी ने बड़े उत्साह से कहा था, 'स्वतन्त्रता के लिए वर्तमान संघर्ष से

भारत एक दिन स्वतन्त्र हो जाएगा। इतना ही नहीं बल्कि सभी गुलाम देश आजाद हो जायेंगे। यदि विश्व में सभी राष्ट्रों को सद्भाव तथा सहयोगपूर्वक रहना है तो उनमें सद्भावना तथा एक दूसरे को समझने की इच्छा का होना आवश्यक है।' अतः हमारा कार्य पश्चिम के निवासियों के सामने भारतीय जनसाधारण का जीवन सही मानों में प्रस्तुत करना था। ऐसा करने से पहले हमें स्वयं भी उसको समझने की जरूरत थी। उसका मस्तिष्क सीधा-सादा था तथा अधिक उलझन युक्त नहीं था। वह एक कोरे कागज के समान था जिस पर किसी भी रंग से लिखा जा सकता था। इसी प्रकार उस पर किसी प्रकार का प्रभाव डाला जा सकता था। यही मस्तिष्क पश्चिम के लोगों के लिए हमें स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना था। घर के नौकरों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने बतलाया कि यदि कोई अंगरेज आ जाए तो वे अपने घरों में घुस जाएँगे क्योंकि इस सफेद चमड़ी के साथ उन्होंने अधिकार को तथा नम्रता-हीन भावना को देखा है। वे स्वयं को अंगरेजों से कम योग्य समझते हैं। और देर से अंगरेज शासकों से शासित होने पर भी उनसे घुल-मिल नहीं सके हैं। यही नौकर यदि एक ओर माता जी से स्वतन्त्रतापूर्वक विचारों का आदान-प्रदान तथा वाद-विवाद करते थे तो दूसरी ओर पिताजी से घबराते थे। पिताजी के अनुसार इसका कारण यही था कि वे एक ऐसी जगह पर कार्य कर रहे थे जहाँ पहले अंगरेज लोग ही काम करते थे। दूसरे जिलों के किसानों की अवस्था भी ऐसी ही थी, तथा जब कभी भी उन्हें दूसरे जिलों का दौरा करना पड़ता था तो उनसे बातचीत करने तथा उनका विश्वास प्राप्त करने के लिए उन्हें विशेष रूप से पंजाबी बोलनी पड़ती थी।

माता जी ने इस सम्बन्ध में इशारा किया था कि इस सारी योजना के लिए काफी रुपए की आवश्यकता है, लेकिन पिताजी ने उत्तर दिया कि उद्योगी तथा विचारशील पुरुषों के लिए सफलता हमेशा प्रस्तुत रहती है। हम निश्चय ही इस यात्रा को सफल बनाने के लिए पर्याप्त मात्रा में धन अर्जित कर लेंगे। मैं प्रतिदिन शाम के खाने की उत्सुक्ता के साथ प्रतीक्षा किया करता था तथा पिताजी की विश्वास तथा धैर्ययुक्त बातें, जिनमें बीच में प्रश्नों के रूप में हस्तक्षेप होता रहता था, सुनने की आशा किया करता था। एक ऐसा विषय जो अनुभवों की कथा सुनाने से ही प्रारम्भ हुआ था, अब महत्त्वपूर्ण विचार का विषय बन गया था। मेरे पिताजी यूरोप तथा भारत के सम्बन्ध में कुछ पैम्फलेट और पुस्तकें लाए थे

जिन्हें खाना खाने के बाद वह जोर-जोर से अंग्रेजी में पढ़ते थे। उसके कुछ अंशों को हिन्दी में अपने अनुभवों के आधार पर विस्तृत रूप से बताने के लिए वह बीच-बीच में रुक भी जाया करते थे।

जो कुछ वह पढ़ते थे, मुझे बहुत कम समझ आता तथा दादर स्कूल में सीखी क्रियाओं के अलावा किसी भी बात के सम्बन्ध में मुझे समझाने में घण्टों बीत जाते थे। कभी-कभी वह संक्षेप में डा० विन्सी, कार्पनिकस, अथवा वालटेयर के नामों का भी उल्लेख करते थे। इनका उल्लेख मेरी उत्सुकता और कौतूहल को और भी अधिक जाग्रत करता था तथा मेरी अमेरिका जाने की तथा वहाँ के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा और भी प्रबल हो जाती थी। कभी-कभी तो मैं अपने को रोक नहीं पाता था तथा बीच-बीच में प्रश्न पूछता था तथा उनसे समझाने या अनुवाद करने के लिए कहता था और वह हमेशा कर दिया करते थे। मेरे लिए यह एक वेद पढ़ने के समान था और इससे मेरे विश्वास को बल मिलता था कि एक दिन हम सब लारी में बैठकर भारत छोड़ देंगे। मेरा परिवार यूरोप का भ्रमण करेगा तथा मै परकिन्स इन्स्टीच्यूट में दाखिल हो जाऊँगा।

यद्यपि हमारी विदेश-यात्रा के सम्बन्ध में किसी तारीख का निश्चय नहीं किया गया था लेकिन पिताजी ने अपनी डेढ़ वर्ष की छुट्टियाँ इकट्ठी कर ली थीं, जो इसी मद में खर्च होनी थीं। अब मुझे तनिक भी सन्देह नहीं रह गया था कि यह यात्रा होगी अवश्य।

इस बीच मेरी विद्यालय की शिक्षा बिलकुल रुक गई थी, जब कि दूसरे बच्चे लगातार प्रसन्नतापूर्वक स्कूल जाया करते थे। लेकिन मुझे कुछ वर्षों के पश्चात् पता चला कि मेरे पिता जी ने पहले ही अपनी डायरी में लिख दिया था कि वह मुझे सर्वोच्च शिक्षा देने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय करेंगे। लेकिन अब उनकी यह त्याग-भावना तथा मुझे दूसरे बच्चों के समान ही अवसर प्रदान करने का उनका यह अटल निश्चय निराशाजनक-सा प्रतीत होने लगा था।

उन्होंने यह अनुभव किया था कि भारत में सबसे अधिक आत्मनिर्भर अन्धे गायक होते थे। ऐसे ही एक मास्टर कोहली ने लाहौर में मेरी बहनों को प्रशिक्षित भी किया था। उस समय मैं बम्बई में था। अब रावलपिंडी में पिता जी ने मेरे लिए भी एक मास्टर का इन्तजाम कर दिया।

मेरे यह अध्यापक, जिनका नाम श्री हुकमचन्द था, तथा जिन्हें हम पंडित जी

कहा करते थे, बहुत-से अन्य गायकों के समान ही प्राचीन भारतीय गायन के शास्त्री थे तथा उन्होंने किसी स्कूल में जाकर नहीं बल्कि अपने गुरू के पास रहकर तथा उनके सभी व्यक्तिगत कार्य करके शिक्षा ग्रहण की थी। इसी परम्परा के अनुसार वह अपने गुरू जी के भक्त थे। उन्होंने उनका ज्ञान उनके पैर दबाकर, उनका खाना बनाकर, उनके कपड़े धोकर तथा उनके ऐसे ही विभिन्न कार्य करके प्राप्त किया था।

गुरू जी अपने विद्यार्थियों को कुछ विशेष रागों का ज्ञान, उनकी धुनें तथा अन्य विभिन्न रागों का ज्ञान कराते थे जो उन्होंने अपने गुरू से सीखे थे तथा उनके गुरू ने अपने गुरू से सीखे थे और यह क्रम चलता आया था। इस प्रकार इनके ज्ञान का हस्तांतरण उन हकीमों के नुस्खों की तरह था जो कभी भी लिखे नहीं गए बल्कि एक के द्वारा दूसरे को केवल स्मृति के सहारे ही प्रदान किए जाते रहे हों। ये केवल उसी शिष्य को बतलाए जाते थे जो उनका परम भक्त होता था तथा इसी प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी इनका मौखिक प्रचार होता चला आया था।

पंडित जी इस परिवर्तनशील समाज को, जिसमें उनके अधिकार कम होते चले जा रहे थे, अच्छा नहीं समझते थे और केवल परिस्थितियों में पड़कर ही फीस के बदले में अपने संगीत की गुप्त बातें बताने के लिए बाध्य हुए थे जो उन्हें बड़ी मुश्किलों का सामना करके, असहनीय परिस्थितियों को पार करके उत्तराधिकार में मिली थीं। इनका वर्णन केवल वे ही कर सकते थे। चाहे धन को वह कितना ही अधिक मानते हों लेकिन इसके लिए वह भारतीय संगीत की ग़ुप्त बातें बतलाना श्रेयस्कर नहीं समझते थे।

आश्चर्य नहीं कि कठिनाइयों में पड़कर पंडित जी विवेकशून्य भी बन गए थे। वह मुझे पढ़ाने के लिए इसलिए नहीं आते थे कि उन्हें मेरे प्रति कोई सम्मान अथवा प्रेम था जो एक ग़ुरू को अपने शिष्य के प्रति होना चाहिए, किन्तु इसलिए कि यह कार्य उन्हें बाध्य होकर करना ही पड़ता था, चाहे वह कितना ही उनके स्वभाव के विपरीत क्यों न हो।

पंडित जी सप्ताह में तीन बार अपराह्न में अपना पाठ पढ़ाने के लिए आया करते थे। उनका कहना था, 'गायन कला में पहली बात आवाज़ को नियंत्रित करना है, जिससे कि वह प्रत्येक अष्टपद पर बिना किसी कठिनाई के चल सके।' इस प्रकार सारा घण्टा स्वर-तन्तुओं के अभ्यास में ही बीत जाता था तथा उनके

जाते समय मेरा कण्ठ सूख जाता था और सांस फूल जाती थी।

मैं जब गाता था तो वह बैठकर तबला बजाया करते थे, जिसकी कसी हुई खाल पर उनकी प्रत्येक थपकी के साथ मेरा दिल धड़कने लगता था। पंडित जी बहुत तुनक-मिजाज थे और मैं भली प्रकार जानता था कि एक भी गलती होने पर मेरे ऊपर उनका वाक्य-अभियान शुरू हो जायगा। पुराने दिन होते तो वह छड़ी से उसी प्रकार मेरी मरम्मत करते जिस प्रकार उनकी अपने गुरू द्वारा हुई थी।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में कोई अनुरूपता नहीं होती तथा शताब्दियाँ गुजर जाने पर भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया, अतः इस पर अधिकार के लिए ताल अथवा स्वर साधना में सिद्धहस्तता प्राप्त करनी आवश्यक थी। इसके अतिरिक्त भारतीय संगीत का निर्माण विभिन्न रागों से हुआ है तथा प्रत्येक राग विशेष प्रकार से बना है और उससे एक विशेष भाव ही उत्पन्न होता है। दिन के विभिन्न भागों के लिए अलग-अलग भाव वाले राग होते हैं। हमारा बाकी समय यह अध्ययन करने में बीतता था कि किस राग से कौन-सा भाव उत्पन्न होता है। आदर्श भारतीय शास्त्रीय संगीत में यदि एक बार एक विशेष राग अपना लिया गया— उदाहरण के लिए 'भैरवी' जो अपनी साधारण प्रकृति के कारण उदासी के वातावरण की सृष्टि करती है, उषाकाल के शान्त, समय के लिए ही उपयुक्त है— तो फिर उसमें परिवर्तन की संभावना नहीं रह जाती। अतः भारतीय संगीत की शोभा यह है कि विभिन्न रागों पर अनेक प्रकार की धुनें बनाई जाएँ।

अतः हमारा समय ताल सीखने, स्वर साधने तथा विभिन्न रागों की जानकारी में व्यतीत होता था। पंडित जी मुझे हर दिन रागों का प्रशिक्षण कराने पर काफी ज़ोर देते थे जिससे, मैं उनमें विदेशी प्रभाव न पड़ने दूँ तथा संगीत की पवित्रता बनी रहे।

वह कहा करते थे कि फिल्म-निर्माता, जो लोकप्रिय संगीत के निर्माण में अधिक रुचि रखते हैं, भारतीय शास्त्रीय संगीत को समाप्त करने पर तुले हुए हैं, तथा नई पीढ़ी का यह दायित्व है कि वह संगीत की पवित्रता को नष्ट न होने दे।

वह अपनी शिक्षा को पाठ रूप में देने की बजाए कृपा के रूप में ही अधिक देते थे। यदि मैं फिल्म-निर्माताओं के विरुद्ध मत प्रकट करने लगूँ तो वह मुझे अधिक प्यार के साथ पढ़ाते थे। उस समय वह मुझे ऐसे-ऐसे राग समझाते थे कि जिन्हें लिखने का कष्ट आज तक किसी ने नहीं किया।

पंडित जी में अपने कार्य को उत्तरदायित्व के साथ करने की भावना की कमी थी। वह बिना इस बात का ध्यान किये कि गाते समय भी मेरे कान उनकी गतिविधि पर ही लगे रहते है, मैंटलपीस पर जाकर घड़ी को दस मिनट तेज कर आते थे जिससे उनके कार्य-काल में कुछ समय की बचत हो जाए। इस पर भी उनकी ईमानदारी को, कोई सबूत न होने के कारण, कोई भी व्यक्ति चुनौती नहीं दे सकता था क्योंकि पंडित जी अत्यधिक योग्य व्यक्ति थे और कोई भी गलती वे आवश्यकता के कारण ही करते थे।

लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि जिस समय वह घड़ी को आगे कर रहे थे, पिता जी कमरे में आ गए। पंडित जी को रंगे हाथों पकड़ने के कारण पिता जी को बड़ा क्रोध आया तथा अपने क्रोध को दबा न सकने पर वह बोले, 'पंडित जी, क्या कारण है कि आप यह समझने पर भी कि विद्यार्थी कुशाग्र बुद्धि है, इससे इतने उदासीन है ? आप घड़ी को आगे करने के लिए प्रेरित हो जाते है ? क्या आप मेरे पुत्र की योग्यता के सम्बन्ध में बतलाते समय मुझसे छल कर रहे थे ?'

पंडित जी ने उत्तर दिया, 'नहीं, मैं उस समय छल नहीं कर रहा था। लेकिन डाक्टर जी, यदि झूठ का प्रयोग न किया जाए तो ईश्वर ने झूठ बनाया किसलिए है ? कितना बड़ा अनर्थ हो जाता यदि प्रत्येक व्यक्ति सचाई के मार्ग पर ही चलता ? क्या आप इस तथ्य की सत्यता को मानते हैं ?'

'लेकिन पंडित जी, ईश्वर ने साँप तथा ज़हर भी तो बनाए है, क्या आप इस तर्क के अनुसार विष पीना पसन्द करेंगे ?'

'आह ! डाक्टर जी, आप नहीं जानते कि जिस समय मैं बीमार पड़ जाता हूँ तो वास्तव में विष खाता हूँ और फिर जहर झूठ के समान स्वाभाविक नहीं होता जिसके बिना हम सत्य को समझ ही नहीं सकते। डाक्टर जी, आप स्वयं भी तो मृत्यु के सन्निकट रोगियों से झूठ बोलते हैं। आप उसे बतलाते हैं कि वह ठीक हो जाएगा, यद्यपि आप जानते हैं कि वह कुछ ही क्षणों का मेहमान है। काला हो या सफेद लेकिन झूठ तो झूठ ही है। इसके अलावा विश्व में यदि झूठ न हो तो सत्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। इसलिए डाक्टर जी, मैं झूठ भी उसी प्रकार से समय-समय पर बोल दिया करता हूँ जैसे सच बोलता हूँ, जिससे सत्य का महत्व बढ़े।'

पंडित जी के इस दार्शनिक व्याख्यान से चिढ़कर पिताजी ने केवल इतना ही

कहा, 'पंडित जी, इस घर का वातावरण झूठ के समीप न होकर सचाई के अधिक निकट है।' इसके पश्चात् वह कमरे से बाहर चले गए तथा पंडित जो इस अपमान को भी अपनी जीत समझकर यह सोच रहे थे कि आखिर इतने वर्षों की उनके गुरू की शिक्षा व्यर्थ नहीं गई।

लेकिन इस घटना का एक परिणाम यह अवश्य हुआ कि पंडित जी ने मुझे फिर नहीं पढ़ाया तथा मैंने भी पंडित जी से फिर कभी पढ़ाने के लिए कहने का साहस नहीं किया।

अब केवल वर्ष में एक ही बार उनका शुभागमन होता था तथा वह भी उनकी घुँघरुओं की कला के प्रदर्शन के लिए, जो अपने गुरू से सीखी हुई उनकी सबसे महत्वपूर्ण कला थी।

भारत में नर्तक अपने टखनों के चारों और छोटे-छोटे घुँघरुओं की एक छोटी-सी पेटी नृत्य के समय बाँध लेते हैं। नृत्य के समय ये घूंघरू बड़ी तान के साथ मनोरंजक ढंग से बजते रहते हैं तथा पैरों की गति के परिचायक होते हैं। पंडित जी ने अपने गुरू से इन्हीं घुँघरुओं की ध्वनि कण्ठ से निकालनी सीखी थी तथा वह यह कार्य इस सफाई से करते थे कि दर्शक को यह भ्रम होता था कि घूंघरूँ कहीं उनके सीने से बँधे हुए हैं। वर्ष में एक बार दीपावली के आसपास, जो हिन्दुओं का एक बहुत बड़ा पर्व होता है तथा श्री रामचन्द्र जी के लंका को विजय करने के उपरान्त अयोध्या लौट कर आने की खुशी में आज तक मनाया जाता है, हम पंडित जी को, मिठाई या सेवा की सभी इच्छाएँ पूरी करके एक बार प्रदर्शन करने के लिए राजी कर ही लेते थे।

इस काम के लिए उनकी एक शर्त यह होती थी कि हम अपने किसी मित्र को नहीं बुलाएँगे, लेकिन पाम बहन की मित्र पुष्पा, जो स्वयं भी एक अच्छी संगीतज्ञ थी, के आग्रह करने पर हमें उसे पंडित जी की कला का रसास्वादन कराने के लिए पर्दे के पीछे छिपाना पड़ता था।

दीपावली से एक दिन पहले पंडित जी ड्राइंगरूम में आ जाते थे तथा वहाँ मुझे अकेले को ही न पाकर समस्त परिवार को उपस्थित पाते थे।

'आज पाठ नहीं पढ़ेंगे, वेद जी ?' वह मुझसे कहते। जब मैं कुछ आश्चर्य करता तो वह कहते, 'भाई, आज छुट्टी का दिन है। अब मैं दीपावली के बाद आऊंगा।' और चलने की तैयारी कर देते। तब माँ उनसे कहती, 'पंडित जी, एक

गिलास लस्सी तो पीते जाइये।'

'ना, ना, ना' वह कहते और मेरी माँ एक विशिष्ट भारतीय मेजबान की तरह किसी भी प्रकार के विरोध की चिन्ता न करती हुई उनसे ठहरने का आग्रह करती और यह कशमकश चलती ही रहती कि मैं दौड़कर भंडार से एक गिलास लस्सी ले आता और कहता कि अब आपको ठहरना ही पड़ेगा, और अन्त में वह उत्तर देते, 'अच्छा खैर, तुम कहते हो तो—'

उनके फर्श पर हारमोनियम के पास बैठने के उपरान्त भी यह आवश्यक नहीं था कि वह गाना प्रारम्भ कर देंगे। किसी को इसका प्रस्ताव करने का साहस नहीं होता था क्योंकि यदि वह एक बार 'नहीं' कर दें तो फिर कभी भी मानने वाले जीव नहीं थे। यह कोई लस्सी के गिलास के समान नहीं था जिसे कि पंडित जी पहली बार मना करने के उपरान्त ले लेते थे। उनके कार्य के लिए प्रेरणा अन्दर से उत्पन्न होती थी तथा बाहरी दबाव अथवा हस्तक्षेप से नहीं जाग सकती थी।

फर्श पर अपना आसन ग्रहण करने के उपरान्त वह धीरे-धीरे अपनी कमानीदार अंगुलियों को हारमोनियम पर फिराते थे। पहले हल्की आवाज आती थी तथा जब वह हारमोनियम की धोंकनी होशियारी से चलाने लगते थे तो स्वर कुछ कठिन हो जाते थे। लगभग आधा घण्टे तक तो वह केवल राग ही बनाते रहते। और फिर बड़ी सरलता से 'गुरु' की रागनियाँ सुनाना प्रारम्भ करते थे तथा हर समय वह निरन्तर ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास करते रहते थे जो उनके प्रदर्शन के लिए उपयुक्त हो। हम सब गम्भीर होकर प्रतीक्षा करते रहते, जैसे हमारी हफ्तों की मिठाई का कोई असर होगा भी या नहीं।

कभी-कभी वह हारमोनियम बिल्कुल छोड़ देते तथा अपने हाथ कुंजियों पर से उठा लेते थे। 'वाह क्या कहना!' मैं सोचता और इसके बाद कुछ क्षणों के लिए पूर्ण नीरवता छा जाती जो उनके हाथों की परस्पर रगड़ से ही भंग होती थी, परन्तु फिर वह तुरन्त हारमोनियम बजाना प्रारम्भ कर देते थे।

अब प्रारम्भिक राग, जिनको वे हलके-हलके बजाते थे, शुरू होते थे। तब ये अत्यन्त मधुर धुनों में बदल जाते थे जिनमें दीर्घ बोलों को जोर देकर बजाया जाता था और आखिरकार स्वर-लहरी इस लायक हो जाती थी कि उनका घुंघरुओं वाला प्रदर्शन हो सके। अब हमारी उत्सुकता बढ़ जाती थी और फिर मैं बिना शोर की सीटी जैसी आवाज सुनता था। अगर मैं जानता न होता कि आगे क्या

होगा, तो यही सोचता कि उनकी साँस उखड़ गई है। तथा इसके बाद उनके मुख से निकलने वाली ध्वनि लगातार जारी रहती थी। अन्त में वह घंटियाँ-सी बजाना आरम्भ कर देते थे। धीरे-धीरे यह ध्वनि बहुत-सी छोटी-छोटी वास्तविक घंटियों के बजने की ध्वनि के समान हो जाती थी। अन्त में हारमोनियम तथा उनकी ध्वनि की समानता बढ़ती चली जाती थी—उस समय तक बढ़ती रहती थी जब तक कि दोनों मिलकर एक मधुर राग नहीं बन जाते थे।

मैं मन ही मन समझता था जैसे महान् नृत्यकार उदयशंकर ही सामने नृत्य कर रहा हो। क्या कला थी, कितना श्रेष्ठ साँस लेने का क्रम था, कितना अच्छा उनका अपने फेफड़ों पर नियन्त्रण था, मैं यही सोचता था। कभी-कभी तो वह दो-दो, तीन-तीन मिनट तक साँस ही नहीं लेते थे तथा घुँघरू प्रत्येक अष्टपदी पर बिना उनके साँस के क्रम में विघ्न डाले बजते थे। पूरे एक घण्टे तक बिना एक साँस भी रुके वह अपना क्रम जारी रखते थे तथा विशेषता यह थी कि एक ही ताल दूसरी बार नहीं होती थी, मानो उनकी कार्य-शक्ति का भण्डार अनन्त है। उनके ताल तथा स्वर-संतुलन वस्तुतः सराहनीय ही नहीं किन्तु कमाल के थे। तथा उस समय हम हर्षातिरेक में मन्त्रमुग्ध हो बैठ जाते थे। उस समय, लेकिन केवल उसी समय, मैं प्रसन्नतापूर्वक उनका शिष्य बनने का इच्छुक हो उठता था।

जब वह रुकते थे तो पसीने से तर हो जाते थे तथा स्वच्छ वायु में आराम के साथ साँस लेने की उनकी इच्छा होती थी। उन्हें अपने प्रभाव का विश्वास दिलाने के लिए किसी भी प्रकार की प्रशंसा की आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि हमारी पूर्ण प्रसन्नता का उन्हें ज्ञान होता था। लगभग पन्द्रह मिनट तक शान्त बैठने के पश्चात् जब तक कि उनकी साँस सामान्य स्थिति में नहीं आ जाती थी, वह चुपचाप बिना कुछ अधिक कहे-सुने चले जाते थे और हमारे लिए दिवाली का, सैकड़ों मोम-बत्तियों और दीपों के साथ तथा भूख को जगाने वाली सुगन्धों के साथ, एक दिन पूर्व ही शुभ आरम्भ हो जाता था।

जब कभी भी मैं तथा हमारा परिवार इस व्यक्ति के दुःखदायी विलक्षण स्वभाव के कारण निराश हो जाते थे, उसी समय इसका ध्यान आता था तथा हम उनके ज्ञान की प्रशंसा करने के लिए बाध्य हो जाते थे, जो विभिन्न रागों के पूर्ण अधिकार तक ही सीमित नहीं था लेकिन कण्ठ अथवा स्वर-साधना में भी अग्रगामी था। और यदि मामूली-से कसूर पर भी उनका असहनीय क्रोध जो कि धीरे-धीरे

मामूली हवा के झोंकों से बढ़कर एक बवन्डर का रूप धारण कर लेता था, न होता तो हम निश्चय ही उन्हें अपने पास ही रखते। यह हम अच्छी तरह जानते थे कि रावलपिंडी में कोई भी शास्त्रीय संगीत का ज्ञाता उनकी टक्कर का नहीं था और यद्यपि उन्होंने मेरे विचारों के, जो भारतीय संगीत के सम्मान तथा ज्ञान के लिए मेरे मन में पल रहे थे, पनपने का पूर्ण अवसर प्रदान नहीं किया फिर भी मैं उनकी उपस्थिति अनिवार्य समझता था। जो कुछ मैं उन दिनों सीख सकता था यद्यपि यह उसके लिए काफी नहीं थी किन्तु कम से कम इसके द्वारा आंशिक क्षति-पूर्ति तो हो ही जाती थी। यदि मैं सौभाग्यवश कुछ दिन और उनके सम्पर्क में रहता तो मैं उनका काफी ज्ञान सीख सकता था जो वर्षों तक सन्त-परम्परा की संगति के कारण परिपक्व हुआ था। घुँघरुओं की नकल करने की कला भी सम्भवतः मैं उनसे सीख लेता जिससे कि यह अमूल्य निधि उनके जीवन के साथ समाप्त न होती। मैं सम्भवतः एक गायक भी बन जाता तथा उनकी सभी कलाओं का और संगीत के उस स्कूल का ज्ञान हो जाता, क्योंकि उन्होंने यह कहा था कि मैं एक कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी था। लेकिन यह तभी सम्भव था जब मैं उनका परम् भक्त बन जाता तथा अपनी स्कूल की शिक्षा तथा घर को छोड़कर केवल उन्हीं के पीछे लग जाता किन्तु इससे मेरे विचार एक दूसरे पथ पर चलने लगते। अब मैं यह नहीं कह सकता कि मैं उसके लिए दुःख अनुभव करता हूँ।

अपने निजी घर में | ८

अक्टूबर १६४५ में पिताजी वह आदेश लाए जिसके अनुसार हमें लाहौर लौटना था। कुछ वर्ष पहले हमें इन आदेशों से अत्यधिक प्रसन्नता होती लेकिन अब हम सिविल लाइन्स के सुन्दर तथा शान्त वातावरण के अभ्यस्त हो गए थे तथा इसमें परिवर्तन से हमें घबराहट अनुभव होती थी।

जब हम लाहौर पहुँचे तो हमारा घर, जो हमारी अनुपस्थिति में किराए पर दे दिया गया था, बिल्कुल निर्जन-सा प्रतीत होता था तथा हमें वहाँ हमेशा के लिए अपना घर बनाने में लगना पड़ा। कुछ ही सप्ताहों में मिस्त्री बुलाए गए तथा उस मकान को एक नवीनता प्रदान की गई। किशोर बच्चों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कुछ नए कमरे भी बनवाए गए। अब हमें स्थायी रूप से लाहौर में रहना था। एक-एक आने की बचत करके हमें वह राशि लाहौर के अपने घर पर लगानी थी जिससे वह हमारे लिए जीवनपर्यन्त आरामदायक बन सके।

इस घर की सज्जा तथा नवीनीकरण में छः महीने लग गए। वे सभी चित्र, जो पिताजी अपने साथ यूरोप से लाए थे, स्टोर रूम से निकलवा कर साफ करके सबकी इच्छा से कमरों में लटकाए गए। मोटे-मोटे गलीचे मिस्त्रियों ने हथौड़ियों की सहायता से नियत स्थानों पर बिछाए। अब यह निर्जन सज्जाहीन मकान वास्तव में एक घर के समान लगने लगा। अब वहाँ कोई भी कालीनों पर लुढ़कते अशोक के असंगत बोल सुन सकता था, जिससे कि उसे ज्ञात हो सकता था कि घर में पुनः जीवन आ गया है।

इस घर में हमारे पास हर एक का अलग-अलग कमरा ही नहीं था, बल्कि उसकी इच्छानुसार सुन्दरता से सजाया गया था तथा कीमती फरनीचर कमरे में रहने वाले की इच्छानुसार लगाया गया था। इस साज-सज्जा में शताब्दियों पुरानी चीजें भी, जिनका ऐतिहाहिसक महत्त्व था, सम्मिलित थीं। वहाँ हमारा परस्पर वार्तालाप होता था जोकि बाद में राजनैतिक घटनाओं पर होने वाले विचार-

विमर्श में परिवर्तित हो जाता था। नौकरों ने एक दिन खाने की मेज साफ की थी तथा हम सभी आराम से उसके चारों ओर बैठे हुए थे।

'जिओ' माँ ने प्रारम्भ किया, 'मेरा विचार है कि आप कुछ अपने मस्तिष्क में सोच रहे हैं।'

पिताजी आज असाधारण रूप से मौन थे। 'शान्ति', पिताजी भारी स्वर में बोले, 'जो कुछ चारों ओर हो रहा है मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'क्या हो रहा है ?' ओम् भैया बोले। पिताजी ने बताया कि हिन्दू तथा मुसलमानों में परस्पर झगड़े की सम्भावना है। मैं अपने को यह सोचने से नहीं रोक सका कि रामसरन एक हिन्दू तथा कासिम अली एक मुसलमान दोनों ही मेरे मित्र थे !

'भारत के इतिहास में' मेरे पिताजी कहते गये। 'दो प्रमुख तथा अमूल्य सिद्धान्त कार्य करते रहे हैं। एक अहिंसा का जो बुद्ध, अशोक तथा गांधी जैसे नेताओं के द्वारा प्रतिपादित किया गया तथा, जिन्होंने हमारे राष्ट्र की लम्बी यात्रा में मार्ग-दर्शक का कार्य किया है। इन व्यक्तियों ने ऐतिहासिक घटनाओं को पारस्परिक मेल और शान्ति की ओर अग्रसर किया है। लेकिन अब भी जब कि हम इस खाने के कमरे में बैठे हुए हैं, एक भयंकर आँधी चल रही है जिसने हमारे हजारों वर्षों के कार्य को मिट्टी में मिला दिया है।

'गांधी जी के अनुयायी लड़ाई के दौरान में अंग्रेजों द्वारा जेलों में भर दिए गए थे जिससे कि अंग्रेजों के लड़ाई के समय अपने ही घर में फूट न पड़ी रहे। लेकिन इसी समय सैनिक विचारों वाली शक्तियाँ यहाँ पनपी हैं जो हमारे घर तथा राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।'

'लेकिन इसमें से बहुत कुछ,' उम्मी बहन ने एकाएक कहा, 'अंग्रेजों के द्वारा फैलाई गई अफवाह है। डैडी जी, हो सकता है कि वह हर एक को यह समझाना चाहते हों कि जैसे ही वह यहाँ से जाएँगे, हमारा राष्ट्र विभाजित हो जाएगा, यहाँ शान्ति नहीं रहेगी तथा बहुत सम्भव है कि हम स्वयं उनसे यहाँ रुकने के लिए कहने लगें।'

'हो सकता है' पिताजी ने विचारशील होकर कहा, 'लेकिन वे गलत सोच रहे हैं, भारत स्वतन्त्र अवश्य होगा किन्तु किस प्रकार की स्वतन्त्रता वह होगी, मुझे शंका है।'

'मैं बड़ी कठिनता के साथ इन्तजार कर रही हूँ' निम्मी बहन बोली, कब स्वतन्त्रता दिवस की दिवाली के समान ही रोशनी होगी, वह भी वास्तव में एक दीपावली होगी ।'

'जैसी कि वी—जे दिवस पर हुई थी', ऊषा बोली ।

'उससे भी बहुत अच्छी' पाम बहन बोली ।

'मैं दस रुपये, जो मैंने मित्र राष्ट्रों को जीतने की शर्त पर रामसरन से जीते थे, उस अवसर पर अपने घर के लिए दीपक खरीदने के लिए बचा लूँगा।' मैंने कहा ।

'डैडी जी' ऊषा ने पूछा, 'क्या आप वास्तव में यह समझते है कि कासिम अली और रामसरन आपस में लड़ेंगे ?'

इसके बाद काफी समय तक मौन रहा और फिर वह भावुकता के साथ बोले, 'रामसरन और कासिम अली के हित के लिए हमें ऐसी आशा नहीं करनी चाहिए ।'

मेरी तीन बड़ी बहनें शीघ्रता के साथ बीसवें वर्ष तक पहुँच रही थीं और उनकी शादी का प्रश्न परोक्ष रूप में विचार का विषय बन गया था । भारत में इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत उस समय तक नहीं किए जाते जब तक लड़की की कहीं सगाई निश्चित न हो जाए तथा उसके दुलहन बनने में कोई सन्देह न रहे । तब तक वह कह देते है कि किसी और की शादी की बात कर रहे हैं या माँ स्वयं परोक्ष रूप से उल्लेख करती है ।

एक बार जब पिताजी एक लम्बे दौरे पर गए हुए थे और हम सब खाना खाने मेज के चारों ओर बैठे थे, यह अति पवित्र विषय उम्मी बहन के द्वारा प्रारम्भ किया गया । उम्मी आरामपसन्द लड़की थी तथा पाम और निम्मी से कम मनन-शील थी । जब कभी बातचीत गम्भीरता का रूप धारण करती, वह तुरन्त कोई न कोई मज़ाक की बात कह देती थी ।

जिस समय हम खाने के बाद की अपनी 'डिश' समाप्त कर ही रहे थे, उसी समय माँ ने कहा, 'कितना अच्छा हुआ कि देव तथा निश्चिन्त के बारे में सब कुछ पक्का हो गया ।' महीनों से देव के लिए, जो पिताजी का भतीजा था, लड़की देख रहे थे और अन्त में पाम बहन की पक्की मित्र निश्चिन्त के साथ शादी करने का निश्चय किया गया था ।

उम्मी बहन, जोकि समस्त सायंकालीन भोजन के दौरान में शान्त बैठी रही

थीं जो उसके लिए असाधारण बात थी बोलीं, 'कितना अच्छा होता यदि हम पश्चिम में रहते जहाँ लड़कियों को अपना वर चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है तथा जहाँ बीच के व्यक्ति को भी, जैसे मेरी माँ को, दूर के रिश्ते के भतीजे के लिए परेशान होने की आवश्यकता न होती। मान लो कि कहीं देव तथा निश्चित का विवाह अच्छा न निकला तो कम से कम कुछ दोष तो अवश्य माँ के सर भी मढ़ा जाएगा।' वह बोली, 'इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि माता तथा पिता और श्वसुर तथा उनकी पत्नी लड़की के जन्म का स्वागत उमंग रहित भावनाओं के साथ करते हैं।'

'यह कितना अच्छा होता' उम्मी बहन बोलीं। 'यदि माता-पिता को अपनी लड़कियों के लिए वर ढूँढने की चिन्ता न करनी पड़ती तथा उनके सुखद विवाहों की गारन्टी करने का उत्तरदायित्व उन पर न पड़ता। मैं अपना साथी चुनने में स्वयं को समर्थ समझती हूँ। और यदि मैं गलती करती हूँ तो जिम्मेदारी भी पूर्ण रूप से मेरी होगी न कि माता-पिता की।' इसके पश्चात् उसने दहेज की प्रथा का विवेचन करना प्रारम्भ किया। 'अक्सर माता-पिता को अपनी सामर्थ्य से कहीं अधिक दहेज देना पड़ता है, केवल इस आशा से कि अधिक दहेज देने से शायद अधिक अच्छा वर मिल जायेगा।'

'मेरी तुम्हारे पिताजी के साथ जब शादी हुई थी,' माताजी बोलीं—'तो मुझमें तथा उनमें कुछ भी समानता नहीं थी। मैं अँग्रेजी नहीं बोल सकती थी तथा उनके साथ योग्यता से बातें करने के लिए भी मेरी शिक्षा अपर्याप्त थी। अपनी शादी में मेरा बिल्कुल भी हाथ नहीं था तथा न ही उनका। सब कुछ हमारे माता-पिता द्वारा तय किया गया था। मैंने दुलहन बनने से पूर्व उस व्यक्ति को, जिसके साथ मुझे शेष जीवन काटना था तथा जिसका सुख मेरा सुख होना था, मामूली-सी तस्वीर भी नहीं देखी थी। उन्हें अपने से इतना अधिक विपरीत पाकर मैं बहुत पछताई थी तथा अपने माता-पिता के निर्णय में मेरा विश्वास हिल गया था। यदि उस शादी से हटने का उस समय कोई रास्ता निकल आता तो मैं प्रसन्नतापूर्वक उस मार्ग को अपना लेती, लेकिन ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद कि उस समय ऐसा कोई मार्ग नहीं मिला। यदि उस समय मैंने इन्हें कहीं छोड़ दिया होता तो आज मुझे यह प्रसन्नता न मिलती जो कि उस समय से मुझे मिली है।

'इस प्रकार अपनी माँ की राय मानकर मैं चुपचाप कठिनाइयाँ सहती रही।

वह कहती थीं कि उनको जीतने का एकमात्र रास्ता त्याग द्वारा हैं। यदि कहीं मैं अपने पति को प्यार करने तथा उनकी आज्ञा पालन करने के वातावरण में न पली होती तो हम शायद··· ।'

मैंने सोचा, 'क्या मेरे पिता इतने पत्थर दिल हो सकते थे ? वह तो बहुत समझने वाले तथा सज्जन व्यक्ति हैं।'

'फिर भी मेरे बच्चो, जब तुम पैदा हुए थे वह क्लब जाने के बजाए तुम्हारे साथ खेलना अधिक पसन्द करते और यह उन्हें बहुत अच्छा लगता था। उर्मिल, जब तुम्हारा जन्म हुआ था तो मुझे बिल्कुल भी दुःख नहीं हुआ था क्योंकि वह मेरे पास थे। त्याग अपना रंग लाया था।'

निम्मी बहन ने माँ को बीच में टोककर कहा, 'लेकिन क्या आप इतनी ही प्रसन्न या सम्भवतः इससे भी अधिक खुश न होतीं यदि आपका विवाह किसी और के साथ हो गया होता जो शायद कम पढ़ा-लिखा होता और पश्चिमी रंग में इतना न रंगा होता ?'

'यह कहना बड़ा कठिन है क्योंकि अब मैं बड़ी प्रसन्न हूँ और एक प्रकार से मैं उस समय भी खुश थी जब मैं कठिनाई तथा दुःख में थी। मैं उसी प्रकार के वातावरण में पली थी और अब जब मैं गत वर्षों को देखती हूँ तो सोचती हूँ यदि मैं उनके लिए तैयार न होती तो प्रारम्भिक वर्ष मेरे लिए बहुत ही कष्टदायक होते।'

'मैं माताजी के विचारों के साथ सहमत हूँ' पाम बहन बोली, 'अच्छी माँ बनने के लिए एक दूसरे प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होती है।'

उम्मी बहन फिर इसी समय बीच में बोल उठीं, 'मैं नहीं समझती कि कष्ट उठाने में भी कोई प्रसन्नता होती है।'

'मैं समझती हूँ' पाम बहन बोलीं, 'यह वही प्रसन्नता है जो किसी को बिना कुछ भी लेने की दृष्टि से कुछ देने पर होती है।'

उम्मी कहती रहीं, 'लेकिन माता-पिता के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में क्या कहना चाहिए ?'

'लेकिन हमारा सारा जीवन उत्तरदायित्व पर आधारित है,' माताजी ने कहा, 'जब मैं कुमारी थी तो अपने सब भाई-बहनों की देख-भाल किया करती थी, ठीक उसी प्रकार से जैसे मेरी अनुपस्थिति में प्रमिला तुम्हारी देख-भाल करती है।

क्या तुम इस उत्तरदायित्व को बहुत अधिक समझती हो ? अपने पिताजी को ही देखो ! सोचो तो उन्हें अपने भाइयों को भी पढ़ाना पड़ता है। जिस समय तुम्हारा परिवार बड़ा हो जाता है तो तुम्हें इस प्रकार के उत्तरदायित्व के संबंध में सोचना चाहिए। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि तुम सब नहीं सोचोगे तो मैं क्या करूँगी।'

'क्या यह उचित तथा अधिक अच्छा नहीं होगा यदि मैं अपने मन की पसन्द का वर देखूं ?' अभी भी असन्तुष्ट रहते हुए उम्मी बहन ने कहा।

पाम बोलीं, 'मैं नहीं समझती कि किस प्रकार तुम अपने माता-पिता से अच्छी पसन्द कर सकती हो। उनका अनुभव तुमसे कहीं अधिक है। यदि मुझे अपना वर स्वयं तलाश करना पड़ता तो मैं तो यह भी नहीं जानती कि इस कार्य को कैसे प्रारम्भ करना होता है।'

उम्मी ने इस पर जोर देकर कहा, 'यदि रीति-रिवाज दूसरे होते तो मुझे ज्ञान होता कि किस प्रकार प्रारम्भ किया जाए।'

निम्मी बहन ने, जो अब तक बिल्कुल चुप बैठी हुई थीं, कहा, 'मैंने तीन लड़कियों को हलवाई के सामने भूखे खड़े देखा था। क्या यही खुशी अथवा प्रसन्नता है पाम ! मुझे जब कभी भी उनका ध्यान आता है, मैं लगभग चीख पड़ती हूँ। यदि उनके माता-पिता को उनके दहेज की चिन्ता न होती तो सम्भवतः वह भी अपने भाईयों के साथ आलू-छोले खातीं।'

'लेकिन हर हालत में उनमें से किसी न किसी को भूखों मरना ही पड़ता,' पाम ने कहा, 'तुम्हें इसका कारण दहेज ही नहीं समझना चाहिए। उनके पास सबको खिलाने के लिए काफी खाना नहीं होगा। और ऐसे ही न जाने कितने बच्चे गरीबी से मर रहे होंगे। निस्सन्देह मेरे विचार से भी, जैसा कि तुम सोचती हो, दहेज की प्रथा वास्तव में घृणा के योग्य है।'

'हमारी रीतियों और परिपाटियों में कितनी भी खराबियाँ क्यों न हों, यह बात तुम्हें माननी पड़ेगी,' माताजी बीच में ही बोल उठीं, 'कि हमारे यहाँ विवाह सफल ही होते हैं। निस्सन्देह यदि हम यह सोचना बन्द कर दें कि किसी भी कीमत पर अपने पति को प्रसन्न रखेंगी तो यह सफलता सम्भवतः न हो। लड़कियो, तुम नहीं समझ सकतीं कि मुझे कितनी प्रसन्नता हुई थी जब तुम्हारे पिताजी ने तुममें दिलचस्पी लेना प्रारम्भ कर दिया था और इतने सहिष्णु बन गए थे। वेद के

सम्बन्ध में भी मेरा उनके साथ जो वाद-प्रतिवाद हुआ करता था, उसमें भी वे ही ठीक कहते थे।'

'यदि मुझे स्वतन्त्रता होती तो भी मैं अपने बच्चों की देखभाल करती और कुछ पुरानी परम्पराएँ भी बनाए रखती,' उम्मी बहन ने जोर देते हुए कहा।

'जिस समाज में हम रहते हैं, उसके कुछ नियम तुम ऐसे ही रद्द नहीं कर सकतीं,' पाम बहन बोलीं, 'शायद हमें अधिक कठिनाइयाँ हों लेकिन उससे सम्भवतः हमें और भी अधिक कठिनाई भोगनी पड़े जो कि दूसरी अवस्था में उठानी पड़ती।'

'लेकिन पाम ! किस मूल्य पर ?' निम्मी ने कहा, 'दुखदायी गरीबी—वास्तव में शारीरिक कष्ट क्या है, यह जानने के लिए हम कभी भी भूखे तो रहे नहीं। हमारी माँ पर उनके पति के द्वारा कभी मार भी नहीं पड़ी।'

मैंने अब अपनी दादी जी के बारे में सोचा कि वह कभी-कभी लाला जी के क्रोध की किस प्रकार शिकार होती थीं लेकिन फिर भी वह लाला जी के बारे में बड़ी नम्रता तथा श्रद्धा की भावना के साथ बातचीत करती थीं।

'लेकिन निम्मी ! जैसा कि मैंने कहा, तुम हम सबके लिए हमारे शादी करने के ढंग को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकतीं,' पाम ने कहा, 'इस अत्यधिक जनसंख्या वाले देश में वह तो जीवन का एक ढंग है।'

'मेरा विचार है कि हमारी सारी पारिवारिक प्रणाली नष्ट हो जाएगी उम्मी।' पाम ने कहा, 'हमें प्रारम्भ से ही पिता जी पर श्रद्धा रखना और उनके शब्दों को अन्तिम मानना सिखाया जाता है। सम्भवतः इसमें इतनी स्वतन्त्रता न हो लेकिन इसकी पूर्ति करने के लिए इसमें प्रेम और सौहार्द्र काफी होता है। हमारे घर विखण्डित नहीं होते जहाँ बच्चे न इधर के रहते हैं न उधर के।'

उम्मी बहुत कुछ हँसते हुए बोलीं, 'पाम, तुम्हें यह मानना पड़ेगा कि यह दुनियाँ पुरुषों की है, यह देश तो विशेष रूप से। मैं यह नहीं कह सकती कि ऐसा क्यों होना चाहिए। मैं भी उतनी ही अच्छी हूँ जितनी उनमें से कोई भी।'

'मुझे आशा है कि तुम उस समय समाज में होने वाले परिवर्तनों को समझोगी जब कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान स्वतन्त्र जीवन बिताना प्रारम्भ कर देंगी तथा उनके समान ही कार्य भी करने लगेंगी।' पाम बहन ने कहा।

'लेकिन फिर शायद इतनी निर्धनता नहीं रहेगी।' उम्मी बोलीं।

अब निम्मी धीरे से बोलीं, 'मैं तुम्हारी समर्थक हूँ ! कष्ट को सहन करना ही

अच्छा है, लेकिन इसकी अति नहीं होनी चाहिए।'

'समाज बदलेगा,' उम्मी ने कहा, 'और ज्यों ही हमें ज्यादा स्वतन्त्रता मिली, भारतीय घरों में दबाव तथा व्यर्थ का अत्याचार भी कम होगा। कोई सिद्धान्त-वादिता वातावरण को नहीं बदलेगी। मनुष्य स्वयं बदल जाएंगे। मैं उसी दिन का इन्तजार कर रही हूँ।'

जल्दी ही बातचीत का रुख भारत की भावी स्वतन्त्रता की ओर मुड़ गया तथा विवाह का विषय छोड़ दिया गया। मैं सोच रहा था कि क्या ही अच्छा होता यदि पिता जी अपने अनुभव से यह बताने के लिए वहाँ मौजूद होते कि पश्चिम में इस प्रकार की स्वतन्त्रता वास्तव में कहाँ तक सफल रही है।

पुनः स्कूल में | ६

लाहौर में मैंने एक बार फिर वही स्कूल न जाने योग्य निराशाजनक मन-स्थिति का अनुभव किया। यद्यपि रावलपिंडी में मेरे लिए एक संगीत शिक्षक रख दिया गया था लेकिन फिर भी बाकी परिवार के साथ बातचीत करने पर मैं शिक्षा की कमी अनुभव करता था। रावलपिंडी में मेरे तीन वर्ष के निवासकाल में मेरा स्वास्थ्य काफ़ी सुधर गया था। लेकिन पिता जी चाह कर भी अधिक कुछ कर नहीं पाते थे क्योंकि मेरी उन्नति के साधन बहुत ही सीमित रह गए थे।

भारत में लगभग बीस लाख व्यक्ति ऐसे हैं जो दृष्टिहीनता की बीमारियों से त्रस्त हैं जबकि संयुक्तराज्य अमेरिका में यह संख्या एक लाख है। भारत में इनमें से तीन चौथाई व्यक्तियों की ज्योति या तो बिल्कुल ठीक की जा सकती थी अथवा काफी अंश तक ठीक की जा सकती थी यदि उन्हें उपयुक्त चिकित्सा समय पर प्रदान की जाती। फिर भी नेत्र-विशेषज्ञों की कमी, तथा अंधेपन के कारण और रोकथाम के साधन न जानने से यह समस्या अत्यधिक कठिन ही नहीं बल्कि लगभग हाथों के बाहर हो गई। भारत में अंधे व्यक्तियों का कोई भविष्य नहीं होता, क्योंकि गरीबी और भुखमरी से त्रस्त इस देश में विशेष समस्याओं के लिए बहुत कम ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि देश में अंधों की संख्या उन्हें आंखों की देखभाल के साधारण नियमों का ज्ञान कराकर बहुत कम की जा सकती थी, लेकिन ऐसा नहीं हो सका और अंधे आज परावलम्बियों का जीवन बिताते हैं।

मेरे पिता जी ने इस समस्या के समाधान के लिए अधिक जागृति उत्पन्न करने का प्रयास किया। अब वह लाहौर में जनस्वास्थ्य के सीनियर उप संचालक हो गए थे और अंधेपन की बढ़ती हुई बीमारी के सम्बन्ध में अधिक अच्छी तरह सरकार को ध्यान दिला सकते थे। अंधों के लिए सुविधाओं और अवसरों का संग्रह करते समय उन्हें एमरसन इन्स्टीच्यूट का पता चला।

दादर स्कूल के समान ही इस संस्था में भी विद्यार्थियों को ऐसे काम सिखाए

जाते थे, जिससे वे जीवन में स्थाई रूप से कार्य कर सकें। उनकी शिक्षा-प्रणाली में कक्षाओं इत्यादि का कोई क्रम नहीं था और यदि होता भी तो शिक्षा पाँचवीं कक्षा में ही जाकर समाप्त हो जाती तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण प्रशिक्षित शिक्षक नहीं रखे जाते थे जो बहुत ही कठिनाई से मिलते थे। प्रिंसिपल के अति-रिक्त, जो अंधे नहीं थे, एमरसन स्कूल में पढ़ाने वाले छः शिक्षक थे, जिनकी शिक्षा अधिक से अधिक हाई स्कूल तक थी। उस समय अंधे व्यक्तियों के लिए इतना पढ़ लेना बड़ा आश्चर्यजनक माना जाता था।

मेरे पिताजी ने जब इस स्कूल का दौरा किया तो इसकी आर्थिक कठिनाई से बहुत प्रभावित हुए। शिक्षण तथा कुशलता स्तर से कम पाकर बहुत हताश हुए। परिणामस्वरूप उन्होंने वित्त मंत्री सर मनोहरलाल से सम्पर्क स्थापित किया जिन्हें वह व्यक्तिगत रूप से जानते थे। सर मनोहरलाल भी मेरे पिता जी की विशेष दिलचस्पी को जानते थे तथा उन्होंने एक ही बार में इस संस्था को ४५,००० रुपये की सहायता दे दी।

इस राशि से इस संस्था को एक नई इमारत बनाने में सहायता मिल गई तथा वर्षों से लिस्ट पर रखे हुए विद्यार्थियों को दाखिला मिल गया। लेकिन शिक्षा के स्तर में अभी भी कोई उन्नति नहीं हुई। बाद में एक और राशि का अनुदान मिलने पर एक अत्यधिक कुशल प्रशासक श्री खन्ना की नियुक्त सम्भव हो सकी, लेकिन श्री खन्ना को भी अपने शिक्षा के स्तर को बढ़ाने के प्रयासों में निराशा ही हाथ लगी।

मुझे इस स्कूल में भेजने तथा वहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए मैंने पिताजी को मनाने का प्रयास किया जिस पर उन्होंने कोई विशेष सहानुभूतिपूर्वक विचार नहीं किया। स्कूल हमारे घर से कुल तीन ही मील था किन्तु फिर भी टैम्पिल रोड पर स्थित हमारे घर से शेराँवाला गेट के पास स्थित एमरसन स्कूल जाने के लिए रास्ता पतली-पतली तंग गलियों तथा कच्ची मिट्टी से भरी सड़कों से होकर जाता था। दादर के समान, हवा में दम घोंटने वाला धुआँ फैलाने वाली मिलें जरूर यहाँ नहीं थीं, लेकिन जरा दूर चलकर शेरांवाला गेट के पास ही सड़ी सब्जियों और मल के रूप में उनके स्थानापन्न मिल जाते थे। इसके अतिरिक्त प्रश्न यह था कि इस फासले की कठिनाई को हल कर लेने के उपरान्त भी मुझे इस व्यापारिक संस्था से लाभ कितना होगा। लेकिन पिताजी ने घर की चाहारदीवारी से बाहर

निकलने के मेरे अटल निश्चय को देखकर इस योजना पर भी काम करने का निश्चय किया ।

घर के एक नौकर ज्ञानचन्द को गेगाँवाला गेट के लिए कम से कम खतरे वाला तथा सरलतम मार्ग साइकिल पर जाकर ढूँढने का काम सौंपा गया । तय किया गया कि यदि वह मार्ग ठीक होगा तो ज्ञानचन्द मुझे साइकिल पर स्कूल ले जाएगा । लौटकर उसने बताया कि एक रास्ता अपनाया जा सकता है, हालाँकि उसमें कभी-कभी उसे साइकिल धकेलनी भी पड़ेगी ।

पहले दिन पिताजी मुझे कार में स्कूल ले गए और यद्यपि हमने एक लम्बा रास्ता अपनाया फिर भी वह रद्दी और थकाने वाला था । उस दिन केवल मेरा परिचय श्री खन्ना से कराया गया और मुझे स्कूल का भवन दिखलाया गया । अगले दिन मैं और ज्ञानचन्द प्रातःकाल ही लगभग सात बजकर बीस मिनट पर चल पड़े । उस समय जून मास का सूर्य तेजी से चमक रहा था मक्खियाँ झुंड की झुंड उड़ने लगी थीं । जैसे ही हमने माल रोड पार की, गलियों में तांगों, साइकिलों तथा पैदल चलने वालों की भीड़भाड़ अधिक बढ़ गई । ज्ञानचन्द को अक्सर साइकिल पर से नीचे उतर कर साइकिल चलानी पड़ती थी जब कि मैं अपनी सैंडविच पकड़े हुए आगे की बेढंगी-सी सीट पर बैठा रहता था । सारे फासले को तय करने में हमें चालीस मिनट लगे और जब हम वहाँ पहुँचे तो ज्ञानचन्द श्रम के कारण तथा मैं गर्मी तथा घबराहट के कारण पसीने-पसीने हो गया था ।

मैं अपनी प्रथम श्रेणी में गया जिसके अध्यापक श्री बाकिर थे । मुझे मालूम हो गया कि वह एक छोटा-सा कमरा था शायद रामसरन के कमरे से दुगना हो । एक लम्बा-सा बाँस का पंखा, जिसके ऊपर कपड़ा चढ़ा था, कमरे की चौड़ाई में फैला हुआ छत से लटका हुआ था । इससे बंधी एक डोर गिर्री के ऊपर से होती हुई एक लड़के तक पहुंचती थी जो उसे खींचता रहता था, जिससे वातावरण में कोई घुटन-सी उत्पन्न न हो जाए । श्री बाकिर ने मेरा स्वागत करते हुए मेरा दूसरे छः लड़कों से परिचय कराया, 'एक नया लड़का···दिन के समय का विद्यार्थी है ।'

यदाकदा वह बीच-बीच में चिल्लाकर कहते रहते थे, 'जरा तेज चलाओ, मेरे बच्चे' और झलने वाले पंखे की चिढ़ पैदा करने वाली आवाज़ और तेज हो जाती थी । कारण कि थके हुए लड़के का हाथ धीरे-धीरे नहीं चलता था, बल्कि डर के

मारे वह तेजी से खींचने लगता था । श्री बाकिर अपनी बीड़ी का धुआँ छोड़ते हुए बैठे रहते थे तथा पान खाकर होंठों को चपचपाते रहते थे। तभी एक हाथ से बेंत को डेस्क पर मारकर कहते, 'होशियार रहो लड़को, खबरदार !' कितनी बार यही वाक्य सुनता था। यह श्री खन्ना के जूते की आवाज की ओर ध्यान दिलाने के लिए एक संकेत होता था जो उनके आगमन की सूचना होती थी। विद्यार्थियों का ध्यान दो घबराहट पैदा करने वाले कामों में बँट जाता था। श्री बाकिर वक्रोक्ति की कला में माहिर थे और कभी-कभी 'ब्रेल' के संक्षिप्तीकरण के बारे में भी कहने लगते थे।

वह किसी विद्यार्थी से अपनी पुरानी किताब में से अपनी कड़ी अँगुलियों के सहारे पढ़ने के लिए कहते थे, और जब वह कुछ गलती करता तो फटकारने लगते थे।

मैं जल्दी ही समझ गया कि वे राजनीतिक सिद्धान्तों को प्रतिपादित करना अपना कर्तव्य समझते थे, पढ़ाना नहीं। वह अपनी कड़ी तथा चुनौती देने वाली आवाज में कहते, 'लड़को, मुझे बतलाओ कि हिन्दू धर्म क्या है? क्या उनके यहाँ मोहम्मद जैसे कोई पैगम्बर हुए हैं ? क्या वे वीर लोग हैं ? नहीं वे लोग कायर तथा बुजदिल हैं और रूढ़िवाद तथा अन्धविश्वास के शिकार हैं। हम मुसलमानों ने उन पर अत्यधिक सरलता से विजय प्राप्त कर ली। क्या यह हमारे धर्म की शक्ति नहीं थी कि बहुत-से बहादुर लोग भी धर्मपरिवर्तन कर मुसलमान बन गए।'

मैं अभी नया था तथा श्री बाकिर की प्रणाली का आदी नहीं था। सचाई की इस तोड़-मोड़ ने मुझे एक अजीब भुलावे में डाल दिया। मैं अपनी कक्षा में इस अध्यापक की उपस्थिति से बहुत घबराने लगा जो हमें भली प्रकार 'ब्रेल' पढ़ने लायक न बनाकर दूषित (फिर भी अच्छी लगने वाली) भाषा का प्रयोग करना अच्छी तरह सिखा सकते थे। श्री बाकिर के मेज पर बेंत मारने की ध्वनि, पंखे के चलने की आवाज तथा श्री बाकिर की ही गर्जना से वास्तव में श्री खन्ना के पदचापों को सुनना मुश्किल हो जाता था जिससे श्री बाकिर को सूचना दे दें और वह अपनी भाषा को संयत करके 'ब्रेल' के पाठ पर ही बोलने लगें। यदि हम श्री खन्ना के आने की सूचना समय पर न दे पाते तो फिर हमारी अँगुलियों के जोड़ों पर एक गीली बेंत से मार पड़ना निश्चित था, कभी निशाना चूक जाता था तो बेंत दूसरे

कोमल स्थान पर जा पड़ती थी।

दो घण्टे तक श्री बाकिर बिना तनिक भी थके गरजते रहते थे। इस व्यक्ति के अत्याचार को देखकर मेरा कलेजा धक से रह गया। मुझे उन सज्जन 'ननों' की याद आती जिनके बारे में मेरी बहनें रावलपिंडी में बताया करतीं और मैं बड़ा निराश हो उठता। मेरी शिक्षा की अभिलाषा की नींव हिलने लगी जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। मुझे ऐसा प्रतीत होता जैसे चारों दीवारें संकुचित होती जा रही हैं तथा ऊपर की छत नीचे दबकर मेरी आशाओं को चूर-चूर कर रही है। मुझे चक्कर आ रहा था और सिर उठाये रखना बड़ा मुश्किल हो रहा था। बड़ी उतावली से मैं चार बजने की प्रतीक्षा करता, ज्ञानचन्द को मुझे लेने के लिए आना था।

अगले दो घण्टे कुछ अच्छे वातावरण में गुजरे क्योंकि यह मेरे संगीत के पाठ के लिए थे तथा यह स्कूल के नए विंग में लगते थे। मेरे गाने, तबले की आवाज तथा हारमोनियम की ध्वनि से मेरे संगीत शिक्षक श्री चन्दर अगर श्री बाकिर का बोलने का ढंग अपनाना भी चाहते तो न कर पाते थे। वे शान्तिपूर्ण दो घण्टे मेरे क्लान्त शरीर और निराश आत्मा को बल प्रदान करते थे।

आखिर दोपहर के खाने का घण्टा बजा तथा मुझे एक घण्टे तक स्कूल के भवन के बाहर खुली हवा में रहने पर बहुत शान्ति मिली। मूझे भूख बिल्कुल नहीं लगी थी अतः मैंने अपना दोपहर का खाना दूसरों को दे दिया।

अब मुझे स्कूल के निश्चित पाठ्य-क्रम, अगर उसे पाठ्य-क्रम कहा जाये तो, के अनुसार कार्य करना पड़ता था तथा मध्याह्न में कुर्सियाँ बुनने का कार्यक्रम रहता था। यद्यपि यह कोई अच्छा कार्य नहीं था लेकिन फिर भी यह बहुत-से लड़कों को सड़कों और गलियों में मारे-मारे फिरने से तथा भीख माँगने से तो बचा ही लेता था। मेरे सम्बन्ध में बाद में जब यह अनुभव किया गया कि बेंत की तेज नोकों के कारण मेरे हाथ की अँगुलियाँ कट गई हैं, जिसके कारण मुझे ब्रेल पढ़ने में कठिनाई होती है और चूँकि मुझे एक बिलकुल भिन्न जीवन-क्रम अपनाना था, अतः श्री खन्ना से सम्पर्क किया गया और मेरे पाठ्य-क्रम से कुर्सियाँ बुनने का कार्य निकाल दिया गया। उस दिन मैं जब घर वापस लौटा तो अपनी बहनों के सामने, जो अपने कान्वेंट स्कूल के अनुभव सुना रही थीं, मेरा सर अपने स्कूल के अनुभव सुनाते समय शर्म से झुक गया। मुझे हमेशा से अपनी महत्वाकांक्षा पर गर्व था तथा अक्सर रात को बिस्तर पर लेटे हुए मैंने शिक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलि-

दान करने की प्रतिज्ञा की थी। मैं यह जानकर, कि कितनी शीघ्रता से मेरा यह निश्चय टूट रहा था, बड़ा लज्जित हो रहा था। कुछ ही दिन पूर्व मैंने ही प्रस्ताव करके पिताजी को इस स्कूल के लिए परीक्षण के तौर पर मुझे भर्ती कराने को तैयार किया था। अब यदि मैं उनसे यह कहता कि स्कूल के एक ही दिन के अनुभव ने मुझे इतना हतोत्साहित कर दिया है कि अब मेरी वहाँ पढ़ने की इच्छा नहीं रह गई है तो मेरा उन्हें मनाने का सारा प्रयास एक बचपना ही समझा जाता। अतः मैंने स्कूल के कष्टदायक अनुभवों को बतलाने के बजाय मौन रहना ही श्रेयस्कर समझा।

श्री बाकिर, पंखे की डोरी खींचने वाला डरा हुआ-सा लड़का तथा भीड़-भाड़ से परिपूर्ण सड़कों पर गुजरते समय मन में रहने वाली चिन्ता सब कुछ हमारे भोजन करने के कमरे के शान्त, खुशनुमा वातावरण में बिल्कुल ही संगत नहीं बैठ रहे थे।

यद्यपि मैंने श्री खन्ना को कभी नहीं देखा था किन्तु एक दिन उन्होंने मुझे अपने दफ्तर में बुलाया। मैं कुछ डरता हुआ-सा तथा यह सोचते हुए कि आखिर कौन-सी गलती मैंने की है, वहाँ गया। लेकिन वहाँ पहुँचकर यह पता चला कि वह केवल कुछ मित्रतापूर्ण बातचीत करना चाहते थे।

'यह स्कूल तुम्हें कैसा लगा ?'

'मुझे अच्छा लगता है, श्रीमान्।'

'मैंने तुम्हारे पिता जी से कहा था कि मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि तुम्हें इस स्कूल से कोई लाभ पहुँच सकता है या नहीं। लेकिन उन्होंने मुझसे कहा कि तुमने यहाँ अध्ययन करने का निश्चय कर लिया है, तुम्हें स्कूल छोड़े काफी समय व्यतीत हो गया है न ?'

'जी हाँ, श्रीमन्, चार वर्ष बीत गए हैं।'

'तुम दादर स्कूल में थे न ? तुम्हें वह स्कूल कैसा लगा ?'

'श्रीमान्, मैं वहाँ बड़ा प्रसन्न था किन्तु वहाँ की जलवायु मेरे अनुकूल नहीं थी अतः अधिक समय तक मैं बीमार ही रहा।'

'यानी तुम्हें बहुत थोड़ी अवस्था में ही पता चल गया था कि अन्धों के स्कूल किस प्रकार के होते हैं। फिर तुमने ऐसे स्कूल में आने के लिए हठ क्यों किया ?'

'श्रीमान्, मेरे भाई और बहन सभी स्कूल जाते हैं। मुझे प्रसन्नता है कि

पिताजी अपनी दूसरी सन्तानों के समान ही मुझे उच्च शिक्षा देना चाहते थे। कुछ वर्ष पहले उन्होंने मुझे पर्किन्स में भी भेजने का प्रयास किया था।

'उन्होंने तुम्हें वहाँ दाखिल क्यों नहीं किया ?'

'श्रीमान्, उन्होंने कहा कि मै अभी बहुत छोटा हूं और वहाँ जाने से पहले मुझे अपने देश का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।'

'यह तो बिल्कुल ठीक है, किन्तु इन पिछले कुछ वर्षों में तुमने क्या जानने का प्रयास किया है ? यदि तुम अमेरिका जाना चाहते हो तो तुम्हारी तैयारी वर्तमान तैयारी से कहीं अधिक होनी चाहिए।'

'लेकिन श्रीमान्, यहाँ स्कूल ही पढ़ने के लिए नहीं मिले।'

'तुम्हें घर पर ही शिक्षक के द्वारा पढ़ाया जा सकता था।'

'मैं संगीत का अध्ययन करता था।'

'अरिथमैटिक तथा अंग्रेजी का क्यों नहीं ?'

'किसी को इस बात का ज्ञान नहीं है कि एक अन्धे लड़के को किस प्रकार पढ़ाया जाए।'

'अन्य साधारण बच्चों को पढ़ाने से कोई अधिक भिन्न नहीं होता। हाँ, इसके लिए कुछ समझ की आवश्यकता है। फिर भी तुम्हारी बहनें आसानी से तुम्हें पढ़ा सकती थीं।'

यह पहला अवसर था जब कि ऐसा प्रश्न मुझसे किया गया और तभी से यह निरन्तर मेरे विचार में आता रहा। यदि उनमें से हरएक ने मुझे केवल एक घण्टा प्रतिदिन भी दिया होता तो मुझे उतना ही ज्ञान हो जाता जितना कि निरन्तर स्कूल जाने पर हो सकता था।

'इस बारे में मैं नहीं जानता, श्रीमान्! सम्भवतः वह अत्यधिक व्यस्त रहती होंगी।'

'इतनी अधिक व्यस्तता कि तुम्हें पढ़ाने में भी असमर्थ रहीं! तुम्हारे परिवार के बारे में मेरी तो ऐसी धारणा नहीं है।'

'मेरी समझ में तो और कोई दूसरा कारण नहीं आता।'

'यह सम्भव है कि उन्होंने तुम्हें आवश्यकता से अधिक सामान्य स्थिति में समझा तथा कभी भी तुम्हारी विशेष आवश्यकताओं की ओर ध्यान नहीं दिया।'

'मेरे पिताजी तो हमेशा यह कहते हैं कि मैं एक दिन अमेरिका जाकर पढ़ूँगा।'

'लेकिन वह इसको बहुत अधिक आसान समझे हुए हैं। यह मत भूलिये कि यदि आपको कभी वापस आना हो तो दिक्कत न उठानी पड़े। अपने देश के सम्बन्ध में काफी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए ताकि मान लो कि तुम्हें अमेरिका भेज दिया जाए तो क्या करोगे, क्या तुम भारत वापस आकर यहाँ के गरीबों की मदद करना चाहोगे ?'

'मेरा ऐसा विचार नहीं है। यदि मैं देख सकता तो अपने पिताजी के समान ही डाक्टर बनता।'

'लेकिन तुम देख तो सकते नहीं। अतः वहाँ तुम्हारे लिए सिवाय पढ़ने के और क्या हो सकता है ?'

'मैं विश्वविद्यालय में पढ़ा सकता हूँ। सम्भव हो सका तो कानून का भी अध्ययन कर सकता हूँ।'

'मुझे तुम्हें यह बतलाने में कोई आपत्ति नहीं है कि तुम आवश्यकता से अधिक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति हो और तुम्हारे पिताजी भी ऐसे ही हैं। मैं तुम दोनों को जानता हूँ और कुछ सहूलियतें दे देता हूँ। लेकिन मैं नहीं समझता कि अमेरिका में भी ऐसा ही होगा। सम्भव है कि मैं तुम्हारी सहायता कर सकूँ। तुम यहाँ प्रतिदिन एक घण्टे के लिए आ सकते हो—तुम अपने दो घण्टे श्री बाकिर के साथ व्यतीत करते हो। क्यों ठीक है न ! अच्छा उनमें से एक घण्टा मेरे पास व्यतीत कर सकते हो। मैं तुम्हारी इतिहास में कुछ सहायता करूँगा। बातों-बातों में ही हम ऐसा कर लेंगे, क्या तुम्हें यह अच्छा लगेगा, मेरे बच्चे ?

'जी श्रीमान् !' इसके पश्चात् मैंने अपने को व्यवस्थित करते हुए कहा, 'यह मुझे बहुत अच्छा लगेगा, श्रीमान्।'

'अच्छा, तुम ऐसा ही करो' पहली बार वे शब्दों के लिए हिचकिचाए, 'अच्छा देखेंगे, अब तुम जाओ।'

इस प्रकार समय-समय पर श्री खन्ना एक परीक्षक के समान प्रश्न पूछने लगे। उन्होंने मुझे इस तथ्य से अवगत किया कि मेरी अमेरिका जाने की मनोकामना ने बाकी सभी तथ्यों को दबा रखा है। मैं केवल वह जानता था जो मैं नहीं बनना चाहता था, जैसे भिखारी, फेरी वाले, दुकानदार आदि। लेकिन मैं नहीं जानता कि

मेरा भविष्य क्या होगा। जब कभी भी मैंने यह प्रश्न अपने पिताजी से किया, वह या तो उसे बचा जाते थे अथवा घुमा-फिराकर उत्तर देते थे। वह कहते थे कि 'विद्या-जीवन भर अपने साथ रहती है और इसकी मदद से हमेशा कुछ न कुछ काम किया जा सकता है।'

मुझे जल्दी ही पता चलने वाला था कि यह उत्तर कितना अपूर्ण है। कहीं भी कोई भी शिक्षा विशेषज्ञ इसको उचित नहीं कह सकता। उनके कथनानुसार शिक्षा एक कर्ज के समान थी जो हमें अपने ही समाज में रहने के अयोग्य बना देती है। श्री खन्ना ने मुझे पूर्ण रूप से अन्धकार रहित कर दिया था। वह बार-बार इसी अनिश्चितता की ओर इशारा करते थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, 'मैं तुम्हारी महत्वाकांक्षा के लिए तुम्हारी तथा तुम्हारे पिताजी की प्रशंसा करता हूँ। लेकिन जो लोग तुम्हें नहीं जानते, इसे मूर्खता ही कहेंगे। तुम्हें काफी हतोत्साहित होना पड़ेगा तथा अपने अपमान को सहन करना सीखना पड़ेगा। तुम अत्यधिक संवेदनशील हो और यही बुरी बात है, विशेष रूप से इसलिए कि तुम अन्धे हो। तुम चाहे कुछ भी क्यों न करो लेकिन कभी भी दुनियाँ को यह नहीं समझा सकते कि तुम एक सामान्य व्यक्ति हो, और यदि तुम विदेश गए तो और भी अधिक अलग-अलग हो जाओगे क्योंकि उस समय तुम अपने परिवार तथा देश से भी दूर होगे।'

इन विचारों ने मेरे मस्तिष्क की उथल-पुथल को और अधिक बढ़ा दिया और रावलपिंडी में मैं शिक्षा को एक सर्वरोगनाशक तथा सब दुख दूर करने वाली महौषधि समझता था, अब मुझे इस पर पूर्ण विश्वास नहीं रह गया था। श्री खन्ना मुझसे आत्मचिन्तन करा रहे थे तथा शिक्षा के सम्बन्ध में आने वाली कठिनाइयों से मेरा ज्ञान करा रहे थे लेकिन फिर भी मेरी महत्वाकांक्षा ने मुझ पर अत्यधिक अधिकार कर लिया था। मेरे चार वर्ष तक बेकार बैठे रहने के समय में यही एक प्रबल विचार रहा जिसने मुझ पर निरन्तर अधिकार रखा तथा इस प्रकार के किसी भी अज्ञात से पर्दा हटाने के प्रयास ने मुझे कभी भी प्रभावित नहीं किया।

मैं प्रतिदिन एक घण्टे तक श्री खन्ना के साथ रहता था, जो अत्यधिक मूल्यवान साबित हुआ। हम इतिहास के बारे में बातचीत किया करते थे तथा अंग्रेजी का शब्दकोष बढ़ाने के लिए वे मुझे पाठ दिया करते थे। श्री बाकिर की कक्षाओं में भी धीरे-धीरे पहले दिन के मुकाबले में मुझे अधिक अच्छा लगने लगा। यद्यपि किसी अच्छे स्कूल में समय का अधिक सदुपयोग हो सकता था लेकिन फिर

भी मुझे अपने एमरसन स्कूल में पढ़ने पर दुख नहीं हुआ। वहाँ के विद्यार्थियों ने मेरे साथ काफी मित्रतापूर्ण व्यवहार किया तथा उनकी मित्रता तथा श्री खन्ना के सम्पर्क ने मेरी प्रथम दिवस की भ्रान्त धारणाएँ दूर कर दीं।

अपने सात महीने के एमरसन विद्यालय के काल में मैंने खूब प्रसन्नता अनुभव की। सुबह सात बजकर बीस मिनट से लेकर शाम के पाँच बजे तक मैं काम में रत रहता था। शाम को घर लौटकर मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में जाता था। यह एक हिन्दू राष्ट्रीय संस्था थी जो भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए कटिबद्ध थी। सर गंगाराम मेडिकल अस्पताल का एक विद्यार्थी रोज शाम को मुझे लेने के लिए आ जाया करता था और वहाँ से हम दोनों साथ-साथ घूमते हुए अपने घर से लगभग एक मील तक शाखा के मैदान तक खेलने के लिए जाया करते थे।

हम वहाँ नौ बजे तक रहते थे तथा इस दौरान में हम विभिन्न खेल, व्यायाम तथा ड्रिल किया करते थे। लेकिन इससे भी अधिक कविता पाठ, तथा गीत गाया करते थे। लगभग सभी उपस्थित विद्यार्थी कालेज के विद्यार्थी होते थे और मैं बारह वर्ष का होने के कारण वहाँ सबसे छोटा लड़का था। स्वतन्त्रता-दिवस तेजी से पास आ रहा था, अतः हम सभी के लिए और विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए विचार का विषय राजनीति ही था। तथा अन्तिम प्रार्थना होने के काफी समय पश्चात् भी हम सब भूमि पर बैठकर वर्तमान राजनीतिक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया करते थे। उनमें बहुत-से आशावादी भी थे तथा बहुत-से डरपोक भी। कुछ कहा करते थे कि जब भारत स्वतन्त्र हो जाएगा तो वह पाश्चात्य देशों के समान ही उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो जाएगा। लेकिन दूसरी ओर कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जिन्हें सिवाय अन्धकार के और कुछ दिखलाई ही नहीं देता था। वह मुसलमानों में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता को उस स्वतन्त्रता का बिल्कुल नाश करने वाला समझते थे, जिसके लिए हमने इतना प्रयास किया था। उनका विचार था कि विभाजित भारतीय शीघ्र ही अपने को प्रशासन के अयोग्य समझेंगे और उस समय यदि अंग्रेज नहीं तो कोई और शक्ति शासन की बागडोर सँभालने के लिए आ धमकेगी।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया तथा दिसम्बर १९४६ तथा जनवरी १९४७ के महीने आए तो उनके विचार करने का तरीका बदल गया। वे अपने को उन वीर पुरुषों में समझने लगे जिनके कन्धों पर भारत को उस खून-खराबी के मार्ग

पर ले जाने वाले पागल लोगों से बचाने का दायित्व था।

वे कहते, 'हमें समय दो। हम खून-खराबी को रोक देंगे।' जैसे-जैसे भारत के विभाजन के लिए दबाव बढ़ता गया, सबको एक लक्ष्य पर संगठित करने का प्रयास किया गया कि भारत को एक रखा जाए। उनमें कोई घृणा, कोई धमकी नहीं थी और न अपनी बातों को क्रियान्वित करने की कोई योजना थी। लेकिन उनमें थी उत्तरदायित्व की, कर्त्तव्य तथा साहस की भावना। अतः यहाँ यदि मैं ब्रेल तथा हिसाब नहीं सीख रहा था तो भी मुझे विभिन्न प्रकार के विचारों से अवश्य अवगत किया जाता था। श्री बाकिर के पागलपन से लेकर श्री खन्ना के ऐतिहासिक ढग तक तथा विद्यार्थियों की तीव्र बुद्धि तक जिसके द्वारा कि वह वर्तमान घटना-क्रम पर विचार करते थे। अब उनमें इस तथ्य के प्रति जागरूकता थी कि कुछ हलचल हो रही है और हम एक संकटकालीन स्थिति से गुज़र रहे हैं, जिसमें और अधिक गहरा अँधेरा है और हमें नहीं मालूम आगे क्या होगा।

विवाह की तैयारियाँ | १०

फरवरी के महीने में, जब हमें लाहौर में रहते लगभग चार महीने हो चुके थे, हमने अपने पिताजी के एक मित्र से, देहरादून के एक योग्य नौजवान दन्त-चिकित्सक के सम्बन्ध में सुना, जिसका नाम काकाजी मेहरोत्रा था। जैसा कि ऐसे मामलों में होता है, इस सम्बन्ध में खूब जाँच-पड़ताल की गई, जिसमें उस युवक तथा उसके परिवार के पिछले इतिहास की खूब छानबीन हुई। उसके मित्रों तक की खोज-खबर ली गई। कहीं वह शराब वगैरह तो नहीं पीते ? एक वकील के समान उनकी जायदाद तथा सम्पत्ति और कर्ज इत्यादि को आँका गया।

यद्यपि पाम बहन के भविष्य की सारी खुशी इस बात पर निर्भर करती थी क्योंकि सबसे बड़ी होने के कारण परम्परा के अनुसार सबसे पहले विवाह उन्हीं का होना था, फिर भी इस सम्बन्ध में उन्हें बिल्कुल अनभिज्ञ रखा गया। ऐसा करने के कई कारण थे। पहला तो यह कि कोई लड़की जब विवाह की अवस्था की हो जाती है तो बहुत-सी जाँच-पड़ताल की जाती है तथा सभी सम्बन्धी वर की खोज-खबर रखते हैं। परिवार चूँकि बहुत बड़े होते हे और इतने अधिक सम्पर्क में रहते हैं कि सैकड़ों व्यक्ति दूसरे परिवारों के लिए सम्भावित होते हैं। अतः एक से बढ़कर एक होते हैं जिनमें से कि बहुत ध्यानपूर्वक निश्चय किया जाता है। इसलिए श्रेयस्कर यही समझा जाता है कि बच्चों को इस बारे में कुछ भी पता न चले। फिर अन्तिम निर्णय माता-पिता के द्वारा ही होता है, इसलिए बात पक्की होने से पूर्व वे अपने बच्चों से परामर्श करने की आवश्यकता भी नहीं समझते।

काकाजी सबसे अधिक श्रेष्ठ युवक थे अतः अन्त में उनके माता-पिता से सम्पर्क स्थापित किया गया; इस सम्बन्ध में पहला कदम हमेशा लड़की के माता-पिता को ही उठाना पड़ता है। तथा इसके पश्चात् उसका परिवार इसी प्रकार की कड़ी जाँच-पड़ताल के लिए कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। यह कार्य अक्सर वहाँ के अपने सम्बन्धियों द्वारा किया जाता है। और यदि वे सब ठीक

समझते हैं तो कभी-कभी माता-पिता अपने लड़के को लेकर सम्बन्धित लड़की को देखने के लिए आते हैं। लेकिन चूँकि देहरादून लाहौर से बहुत दूर था इसलिए काकाजी अकेले ही आए।

मार्च के प्रारम्भिक दिनों में वह लाहौर आ गए तथा एक दिन आकस्मिक रूप से चाय पर आ धमके। मैं आकस्मिक इसलिए कहता हूँ कि उनके आने का ढंग कुछ इसी प्रकार का था। किन्तु पहले ही जो सब तैयारियाँ की गई थीं, उन सबको देखते हुए यह बिल्कुल आकस्मिक नहीं था। पाम बहन को, जो अब उन्नीस वर्ष की हो गई थीं, बुलाया गया। वह माँ के साथ ड्राइंग रूम में आईं। उन्होंने चाँदी के बॉर्डर की साड़ी पहने हुए, शर्माते-शर्माते काकाजी को चाय परोसी, जबकि काकाजी परिवार के दूसरे सदस्यों से बात करते रहे। चाय के दौरान में उन्होंने पाम बहन से कुछ बातें पूछीं जैसे उनकी कालेज की पढ़ाई के बारे में, मैंटलपीस पर हुई चित्रकारी के बारे में तथा उन्हें अपनी पहाड़ी स्थान पर होने वाली ग्रीष्मकालीन प्रैक्टिस के बारे में भी बतलाया।

इस छोटी इन्टरव्यू के पश्चात्, जिस पर इतना कुछ निर्भर था, यदि काका-जी पाम बहन की ओर आकर्षित हो जाते तथा हमारे परिवार को प्रभावित कर लेते तो बातचीत आगे बढ़ाई जाती। लेकिन इसमें पाम बहन की स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं थी। काकाजी ने चतुरतापूर्वक कोई भी अपना निर्णय देने से उस समय तक के लिए इन्कार कर दिया, जब तक कि वह इस सम्बन्ध में अपने माँ-बाप से परामर्श न कर लें। यदि वह इसे पसन्द न करें तो मामला जहाँ का तहाँ दबा दिया जाएगा।

चार दिन पश्चात् वास्तव में उनकी माँ के पास से एक पत्र आ गया जिसमें यह पूछा गया था कि पाम बहन की सगाई यदि काकाजी के साथ हो जाए तो मेरे माता-पिता इस सम्बन्ध में क्या अपनी स्वीकृति प्रदान करेंगे ? मेरे पिताजी ने अपने पाश्चात्य विचारों के कारण उस समय तक इस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया जब तक कि पाम बहन के साथ इस सम्बन्ध में परामर्श न कर लिया जाय। अतः एक दिन, रात को माँ पाम बहन से यह मालूम करने के लिए ड्राइंग रूम में आईं कि उसका काकाजी के सम्बन्ध में क्या विचार है। पाम बहन के कुछ भी कहने से पहले उम्मी बहन ने, जो सारे इन्तजाम किये गए थे, उनका मज़ाक उड़ाते हुए कहा, 'आप इस सम्बन्ध में उसके विचार जानने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं जबकि

उन्होंने केवल फरनीचर के बारे में ही बात-चीत की थी ? क्या वह उससे एक क्षण में ही प्रेम करने लगी होगी ?'

'प्रेम, उर्मिला', मेरे पिताजी ने उत्तर दिया, 'प्रेम करने लगने के अर्थ से बहुत भिन्न होता है। यह कोई एक कार्य न होकर प्रक्रियाओं का क्रम होता है और इसे केवल समय ही साकार कर सकता है। हम तो अधिक से अधिक इसकी सफलता के लिए हर एक सम्भव प्रयत्न ही कर सकते हे। और यह हम स्वीकार करेंगे कि यह एक बड़ा कठिन कार्य है।'

'लेकिन क्या प्रत्येक सम्भव प्रयास में व्यक्ति को भली प्रकार जानना सम्मिलित नहीं है ?' उम्मी बहन ने पूछा।

'हाँ, यह होना चाहिए' पिताजी ने उत्तर दिया, 'लेकिन यहाँ प्रश्न चुनने का नहीं है। किसी भी व्यक्ति को भली प्रकार जानने में वर्षों लग सकते हैं। और हमारा विश्वास है कि जानना साथ-साथ रहने पर ही सम्भव हो सकता है।'

उम्मी बहन बोली, 'तो क्या आपका तात्पर्य है कि किसी व्यक्ति को जानना तथा उससे प्रेम करना एक ही बात है ?'

'बिल्कुल नहीं, लेकिन परस्पर एक दूसरे को समझने की तथा श्रद्धा की भावना प्रेम के परिपक्व होने में अत्यधिक आवश्यक है। और गहरी समझ केवल मित्रता से ही उत्पन्न नहीं हो सकती। यहाँ तक कि गम्भीरता से बातचीत करने पर भी किसी व्यक्ति के चरित्र का पता नहीं चलता। यह केवल अनुभव द्वारा ही विदित हो सकता है, एक दूसरे की कठिनाइयों में परस्पर हाथ बँटाने पर ही इसका आभास होता है। वार्तालाप कितना भी अधिक क्यों न हो लेकिन उससे एक दूसरे की पूर्ण जानकारी उपलब्ध होना असम्भव है। तुम वास्तविक पारस्परिक समझ का अनुभव तभी कर सकती हो जब कि एक दूसरे की कठिनाई को अपनी कठिनाई समझो।'

'लेकिन पिताजी,' निम्मी बोली, जो परिवार की राजनीति में विद्रोहिणी थी, आप तनिक विचारिए तो सही कि इसमें कितनी हानि की सम्भावना है।

'इस हानि की सम्भावना को हम जहाँ तक हो सके कम करते हैं,' उन्होंने समझाया। 'हम ऐसा घर ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं जो हमारे घर के समान हो, अब काकाजी को ही ले लो। वह एक दन्त-चिकित्सक हैं; उनका जीवन मेरे जीवन से कोई बहुत भिन्न नहीं होगा। यदि हम प्रमिला का विवाह किसी ब्राह्मण परिवार में कर दें तो इस जुए की सम्भावना और अधिक बढ़ जाएगी, सम्भव है कि वे गोश्त

न खाते हों। वे दो-तीन बार प्रार्थना करते होंगे तथा उनका कार्य बिल्कुल विपरीत प्रकार का होगा। शायद ये बातें मामूली हों किन्तु इनके परिणाम बहुत गम्भीर होते हैं।'

निम्मी फिर बोली, 'इसका तात्पर्य यह है कि आप इस जातिभेद को स्थायी रखना चाहते हैं, आप इसका पूर्व ही अनुमान कर लेते हैं कि पाम का विवाह किसी क्षत्रिय परिवार में ही होगा। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं प्रसन्नतापूर्वक किसी भी बनिए दुकानदार के साथ और यहाँ तक कि अछूत के साथ भी इन बन्धनों को तोड़ने के लिए विवाह कर लूँगी।'

'वह दिन भी आ सकता है। लेकिन यह तुम्हें मानना पड़ेगा निर्मल, कि ऐसा करके तुम हानि की सम्भावना को अधिक बढ़ा दोगी।'

'लेकिन एक आदर्श के लिए जिस पर मुझे आस्था है।' निम्मी बोली।

'हाँ,' उन्होंने उत्तर दिया, 'लेकिन यह एक बिल्कुल दूसरा मामला है।'

निम्मी बीच में ही बोल उठी, 'आप कहते हैं कि पारस्परिक समझ तथा श्रद्धा किसी विवाह को सफल बनाने के लिए आवश्यक है। लेकिन मैं नहीं समझती कि आप किसी व्यक्ति का केवल इसलिए आदर करें क्योंकि आप उसके साथ रहे हैं तथा उसकी कठिनाइयों में आपने योग दिया है।'

'हमारे समाज में' पिताजी ने कहा, 'श्रद्धा की उपलब्धि केवल त्याग द्वारा ही सम्भव समझी जाती है।'

उम्मी ने कहा, 'तब तो आप स्त्री के छोटे स्थान तथा शोषण की वकालत कर रहे हैं। कारण त्याग करने वाला व्यक्ति काकाजी न होकर पाम बहन होंगी। और वह क्यों हो ? और यह कैसे सम्भव है कि पाम बहन काकाजी के लिए इसलिए श्रद्धा रखेंगी कि वह उनके लिए त्याग करेंगी ?'

'नहीं उर्मिल' तथ्य इसके विपरीत होगा, 'वास्तव में वह इसके त्याग के कारण इस पर श्रद्धा करेगा।'

'क्या इसका तात्पर्य है कि पाम बहन भी काकाजी पर श्रद्धा करेंगी ?'

'यह आवश्यक नहीं है, लेकिन यदि काकाजी प्रमिला के त्याग से प्रभावित हो गया तो वह इसके अधिक समीप रहेगा तथा इसमें उसकी निष्ठा तथा विश्वास बढ़ता चला जाएगा। मै अपने ही मामले मैं अनुभव करता हूँ कि तुम्हारी माता शान्ति को कष्ट सहन करते देखकर मुझे बड़ी वेदना होती थी। मुझे उस अवस्था

तक पहुँचने में, मैं समझता हूँ, बहुत अधिक समय लगा। शायद इसलिए कि मैं प्राचीन परम्पराओं से बहुत दूर हो गया था तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के सम्मुख मैंने सर झुका दिया था। इसी आधार पर तुम प्रमिला तथा काकाजी के परस्पर एक दूसरे की कठिनाई को समझने का अनुमान कर सकती हो। और साथ ही यह भी मत भूलो कि इस अवधि में वे निरन्तर एक दूसरे को समझने का प्रयास करते रहेंगे।'

उम्मी ने हठ किया, 'इसमें तो वर्षों लग सकते है और क्या पाम बहन इस लम्बी अवधि में निरन्तर दुखी रहेंगी ?'

'सम्भव है, लेकिन इसी बीच वह स्थायी सुख तथा प्रेम के लिए निरन्तर संघर्ष करेगी। यह अत्यधिक मूल्यवान् है जिसकी प्राप्ति में समय लगता ही हैं।'

उम्मी बहन ने अपनी बात पर बल देते हुए कहा, 'कठिनाइयाँ केवल पाम के लिए, क्या आप इस बात की निरर्थकता तथा अन्याय को नहीं अनुभव करते ? क्या काकाजी को भी अपनी प्रसन्नता तथा सुख के लिए त्याग नहीं करना चाहिए ?'

'यह याद रखो कि आखिर किसी न किसी को तो प्रारम्भ करना ही पड़ेगा। प्रमिला को जीवन-साथी बनना है, काकाजी को। वह अपने भविष्य को बनाने के लिए अपने भूत काल का त्याग करेगी और तुम इसे एक बिल्कुल नए अनुभव का प्रारम्भ कह सकती हो। यदि काकाजी तथा प्रमिला इसी बात का हठ करते रहें कि कौन शुरू करे तो क्या उनके एक होने की आशा तुम कर सकती हो ?'

'इस प्रकार तो पिताजी मेरे प्रश्न को घुमाया जा रहा है। काकाजी को इस मामले में पहल क्यों नहीं करनी चाहिए ?'

'सम्भव है कि उससे भी इस प्रकार की आशा की जा सकती थी यदि प्रमिला भी कुछ कार्य कर रही होती जो कि उसके कार्य के समकक्ष होता। इससे अधिक वास्तव में मैं कुछ नहीं कह सकता और हो सकता है कि मेरी बात में कुछ अन्याय हो।'

'यह सुख, जिसके सम्बन्ध में आप बतला रहे थे, क्या है ?' उम्मी बहन बोली, 'मैं इसे ठीक-ठीक नहीं समझ रही हूँ।'

'यह आदर्श तथा उद्देश्य का एकीकरण है। प्रेम धीरे-धीरे बढ़ता है। यही

हमारे समाज की परम्परा है। तथा यही तरीके अपने यहाँ के विवाहों को अधिक सुन्दर तथा सफल बनाने के लिए अपनाए जाते हैं। हमें व्यक्ति की अच्छाई में विश्वास होना चाहिए तथा इस पवित्र बन्धन पर निर्भर करना चाहिए। पश्चिम में इस समस्या को दूसरे ढंग से सुलझाया गया है क्योंकि उनकी परिस्थितियाँ हमसे भिन्न हैं और मैं नहीं कह सकता कि वह तरीका अधिक सफल रहा है।'

'लेकिन मुझे अपनी स्वतन्त्रता प्यारी है', उम्मी बहन ने कहा, 'क्योंकि यही मेरा आदर्श है।'

'हमेशा यह याद रखो,' पिताजी बोले, 'कि आदर्शों का निश्चय उनके मूल्यांकन करने पर ही होता है क्योंकि उनमें से तुम्हें छाँटकर निर्णय करना होता है।'

इसके पश्चात् पाम बहन से उन्होंने कहा, 'मैंने तुम्हारे लिए अपनी ओर से अच्छे से अच्छा किया है तथा तुम्हारे लिए मेरा उत्तरदायित्व अभी पूरा नहीं हुआ है। मैं हमेशा तुम्हारी मदद करने के लिए प्रस्तुत रहूँगा तथा तुम्हारे सुख में मुझे सदा प्रसन्नता मिलती रहेगी। मैंने इन्हीं सिद्धान्तों के लिए कार्य किया है तथा इन्हीं के लिए जीवित हूँ।'

'और मुझे आपके निर्णय तथा सिद्धान्तों पर श्रद्धा है,' पाम बहन ने उत्तर दिया, 'मुझे आपकी पसन्द पर विश्वास है। यदि मुझे कष्ट भी उठाना पड़ा तो भी मैं यह विश्वास करती हूँ कि हमारा विवाह किसी दिन आपके विवाह के समान ही सुखद होगा।'

इसके बाद उम्मी, निम्मी, पिताजी तथा मैं, पाम तथा माताजी को ड्राइंग रूम में छोड़कर सोने चले गए।

सगाई की रस्म बहुत साधारण-सी होती है। यह हमारे ड्राइंग रूम में उपर्युक्त बातचीत के कुछ दिन पश्चात् एक विद्वान् पंडित के द्वारा सम्पन्न कर दी गई, जिन्होंने गायत्री मंत्र का पाठ किया तथा वर-वधू के मंगल के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। पाम की अँगुली में काकाजी की बहन के द्वारा एक अँगूठी पहनाई गई। ताजी बनी हुई मिठाई का थाल काफी बड़ा था। इस उत्सव के लिए आमन्त्रित सम्बन्धियों में नौकर द्वारा मिठाई बाँट दी गई।

पाम बहन मुख को घूँघट में छिपाए एक कोने में बैठी थी और उनकी सहेलियाँ तथा हमारे सम्बन्धी वही गीत गा रहे थे जो ऐसे अवसरों पर पीढ़ी दर पीढ़ी से गाए जाते हैं और साथ के लिए केवल एक ढोलक बजती रही। यहाँ किसी भी पुरुष का

प्रवेश निषिद्ध था। लेकिन उत्सुक भाई आदि कभी-कभी किवाड़ों के पीछे छिप जाते थे तथा स्त्रियों को गाते हुए सुनते थे। कभी-कभी स्त्रियाँ दुलहन के साथ मजाक करने के लिए रुक जाती थीं। आशा की जाती थी कि होने वाली वधू घूंघट के अन्दर ही हँसेगी और रोएगी, क्योंकि गीतों के शब्द तथा उनसे उत्पन्न वातावरण विदा के दुखपूर्ण अवसर से लेकर दुलहन के नए आने वाले जीवन के उत्साह तक होता था।

मैं जब उन्हें सुन रहा था तो मुझे आश्चर्य हो रहा था कि पाम बहन अपने मन में क्या सोच रही होंगी और मुझे प्रसन्नता थी कि वह घूंघट की आड़ में थीं।

मेरा भाई ओम, चचेरा भाई योग तथा मैं एक दरवाजे की आड़ में छिपे थे; हम कुछ मुश्किल से ही कह सकते थे क्योंकि औरतें एक साथ बोलने लगती थीं। आधी रात से कुछ पहले रात का खाना परोसा गया तथा उसके बाद बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ पाम बहन को शादी की तैयारी के अपने परामर्श देती हुई चली गईं। उसकी चुहल करने वाली सहेलियाँ भी शादी के अवसर पर आने का वायदा करके जल्दी ही चली गईं।

यदि विवाह समय पर होना था तो सारी तैयारियाँ संगठित रूप से थोड़े समय के अन्दर ही करनी थीं। वास्तव में यदि साज-सज्जा न करनी होती तो बिना किसी दुलहे के ही पहले ही काफी तैयारी कर ली गई थी।

सबसे पहला काम अब दहेज का संग्रह करना था। शुरू में, वैदिक काल में, तो दुलहन को प्रेमपूर्वक साधारण ढंग से सजाया जाता था तथा दहेज में परिवार की ओर से विवाह के उतसव पर केवल कुछ उपहार दिये जाते थे। लेकिन मुझे जल्दी ही पता चल गया कि अब इसके कितना विपरीत होता था। पाम बहन के दहेज में कपड़े, जेवरात, बिस्तर, एक कपड़ा सीने की मशीन, खाना बनाने के बर्तन, कटलरी, वास्तव में सभी कुछ जो एक घर के लिए पर्याप्त था—केवल एक कार तथा घर को छोड़कर सभी कुछ—शामिल था।

मेरा ख्याल है कि अगर तीन छोटी बहनें और न होतीं तथा उनका दहेज़ भी समकक्ष देने की समस्या न होती तो शायद पाम बहन को कार और मकान भी दे दिया जाता। इस दहेज की कीमत का एक और उपयोग था कि उसके बल पर ही शेष तीन बहनों के लिए भी विवाहों के प्रस्ताव निर्भर करते थे। इसीलिए नानाजी ने बड़ी होशियारी से रिश्तेदारों को बता दिया कि कौन-कौन-से उपहार दिये जाने

वाले हैं, जिससे उपहार के लिए वही चीज कभी न ले आएँ।

यद्यपि कुछ सम्बन्धियों के विचार में बाईस साड़ियों की संख्या बहुत कम थी। फिर भी अधिकांश को यह संख्या ठीक ही लगी। माँ तथा पाम बहन ने भीड़भाड़ से भरे बाजारों में जाकर विभिन्न बॉर्डर, प्रकार तथा रंगों की साड़ियों को छाँटने तथा पसन्द करने में काफी दिन व्यतीत किए। कोई दो साड़ियाँ समान नहीं होनी चाहिएँ थीं तथा बनारस के बॉर्डर वाली मूल्यवान साड़ियाँ जिनकी कीमत सैकड़ों रुपये होती थी। कलाबत्तू तथा जरी का काम इतना भिन्न होना चाहिए था कि दुलहन कई वर्षों तक उनका विभिन्न अवसरों पर प्रयोग कर सके। वास्तव में साड़ी बहुत उपयोगी वस्त्र होता है। लम्बाई में हमेशा यह छः गज होती है। यह हर एक प्रकार के डील-डौल वाली स्त्री के अंगों पर ठीक आ जाती है। चाहे वह ठिगनी हो अथवा लम्बी, केवल कुछ चुन्नटों के हेर-फेर से शरीर पर ठीक बैठ जाती है।

साड़ियों के साथ ही मैच करने वाले जेवरात आदेश देकर बनवाए जाते थे। अभी कुछ समय पहले तक हिन्दू उत्तराधिकार के नियम विधवा स्त्री की तुलना में पुरुषों के अधिक पक्ष में होते थे, इसलिये स्त्री की सबसे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति उसका सोना तथा जवाहिरात होते थे। यही उसका स्त्रीधन होता था जो पति की मृत्यु के पश्चात् भी उससे छीना नहीं जा सकता था। हिन्दुओं के विधान-प्रणेता मनु ने यही विधान किया था। मेरी माँ ने कुछ समय पूर्व मुझे मनु द्वारा निर्मित कानूनों की व्याख्या करते हुए सुनाया था, वह जेवरात जो स्त्री के द्वारा अपने पति के जीवन पर्यन्त पहने गए हों उसके पति के उत्तराधिकारी आपस में नहीं बाँट सकेंगे। तथा जो इस प्रकार का बँटवारा करेंगे उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया जायगा।

पाम बहन तथा माँ बाजार से बहुत-से बंडल घर लातीं, लेकिन उनसे ही बात पूरी नहीं हो जाती थी, बरामदे से कपड़ा सीने की दो मशीनों की ध्वनि निरन्तर आती रहती थी जो हमारी जान-पहचान के दर्जियों के द्वारा चलाई जाती थीं। वे विभिन्न कपड़ों को सी रहे थे। उन्होंने तकियों के गिलाफ तैयार किए, कुछ साड़ियों के बॉर्डरों पर कशीदाकारी की, जो सादी खरीदी गई थीं तथा ब्लाउज जम्पर, तथा गाउन इत्यादि बनाए। भारत में बनी-बनाई चीजें कठिनाई से मिलती हैं अतः उन्होंने मेजपोश तथा बिस्तर पर बिछने वाली चादरें भी तैयार कीं जिन पर मेरी

बहनों तथा उनकी सहेलियों ने कशीदाकारी की। जौहरियों के यहाँ से भी प्रतिनिधि प्रतिदिन आते रहते थे। वे अपने साथ हार, अँगूठियाँ तथा ब्रेसलेट इत्यादि लाते थे जिससे अन्तिम रूप से चीजें पसन्द करने से पूर्व मेरे पिताजी तथा मेरी बहनों से परामर्श किया जा सके। घर के वातावरण में एक नई गन्ध भर गई थी, जिसका कारण विभिन्न प्रकार के धागे, लिनेन तथा पुष्प और सुगन्धित पदार्थ थे। सब मिलकर एक बड़ा भारी झंझट हो गया था तथा मेरे लिए तो बिना एक-दो बंडल से टकराए चलना भी कठिन हो गया था। कुर्सियों तथा पलंगों पर कुछ लिपटे तथा कुछ बिना लिपटे दर्जनों बंडलों का ढेर लग गया था।

एक ओर स्त्रियाँ दहेज के लिए ये तैयारियाँ कर रही थीं तो दूसरी ओर पुरुष बरात के स्वागत की तैयारियों में संलग्न थे। बरात में दूल्हे के बहुत-से सम्बन्धी तथा मित्र होते हैं। यद्यपि बरातियों के लाने-ले जाने का खर्चा वर के पक्ष को देना पड़ता है तो भी उनकी आवभगत तथा खाने-पीने का प्रबन्ध लड़की के पक्ष को ही करना पड़ता है। बरात तीन दिन ठहरती है। यह हमारे सौभाग्य की बात थी कि देहरादून तथा लाहौर का तीन सौ मील का लम्बा फासला होने के कारण काकाजी दो सौ अथवा इससे अधिक व्यक्तियों की बरात नहीं ला सकते थे। बरातियों की अधिक संख्या वर पक्ष के उच्च सामाजिक स्तर की परिचायक होती है। इसके अतिरिक्त उस समय बंगाल के अकाल के कारण (जिसमें बीस लाख से अधिक व्यक्ति काल कवलित हुए थे) सरकार ने पचास व्यक्तियों से अधिक की किसी भी बरात पर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

जहाँ-तहाँ कुछ लोगों ने मेरे पिताजी को चोरी से अधिक लोगों के लिए प्रबन्ध करने की सलाह दी तथा कहा कि पिताजी आसानी से इस नियम के विरुद्ध कार्य कर सकते थे। ऐसे सुझाव कभी भी वर पक्ष की ओर से नहीं दिए गए। किन्तु इन सुझावों को पिताजी ने सख्ती के साथ मानने से इन्कार कर दिया। यह सामग्री हमारी डायरी के लिए काफी थी कि हमारे पिताजी ने कोई भी ऐसा नियम नहीं तोड़ा जो उस सरकार के द्वारा बनाया गया हो जिसकी सेवा में वे लगे हुए हैं। यदि बरात की संख्या पचास से अधिक हो जाती तो हमें एक जंज-घर (एक पंचायती धर्मशाला) काफी किराए पर लेनी पड़ती और उसमें बरात के ठहराने का प्रबन्ध किया जाता। अब इन्तजाम यह किया गया था कि मेहता गली में कुछ मकानों में दो-दो परिवार एकत्र करके कुछ मकान बरात के ठहरने के लिए खाली

कर दिए गए थे। पूरियों के लिए गेहूँ के आटे की बोरियाँ, फल तथा मसाले, ढेर के ढेर मुर्गियाँ, मांस तथा मनों चावल मँगाया गया था जो एक पूरी रेजिमेंट को खिलाने के लिए काफी था। मेहता तथा मेहरा (मेरी माँ का खानदान) परिवार के नौकरों को एकत्र कर लिया गया था। तथा नाई और जूतों पर पालिश करने वाले लड़कों को १० मई से १३ मई तक के लिए निश्चित किया गया।

बरात के अतिरिक्त भारत भर से लगभग हमारे दो सौ सम्बन्धियों को आना था जिनकी देखभाल तथा आवभगत आवश्यक थी। प्रत्येक मेहता तथा मेहरा परिवार ने दूर से आने वालों के लिए एक बिस्तरा तथा नजदीक से आने वालों के लिए फर्श पर प्रबन्ध कर लिया। इस प्रकार सगाई की रस्म से लेकर वास्तविक विवाह तक कुल दो महीनों में घर भर में अन्धाधुन्ध तैयारियाँ की गईं। सभी प्रत्येक कार्य में दिलचस्पी लेते थे, और जिन चीजों से टकराकर या छूकर वा सुनकर मैं नहीं जान पाता था उनके बारे में लोग मुझे बता देते थे। बाद में विवाह की सारी शान, शौकत, रंगीनी और खुशियाँ भी मुझे बताई गईं।

दस तारीख की सुबह मेरा भाई ओम् तथा मैं मेहता गली के दूसरी ओर खड़े हो गए। मैंने अनेक कारों के जाने की आवाज सुनी, जिनमें से कुछ उधार ली गई थीं और कुछ किराए पर। इनके द्वारा बरात को स्टेशन से लाया जा रहा था। न तो पिताजी न ओम् भाई तथा न ही मैं स्टेशन पर बरात के स्वागत के लिए जा सका क्योंकि हमें औपचारिक रूप में मिलने के लिए ठहरना था, जिसे 'मिलनी' कहा जाता है। काफी देर बाद मेहता गली में आने वाली कारों का ताँता लगा, जिनमें खूब सजे-धजे लेकिन थके हुए-से व्यक्ति बैठे हुए थे। जूतों पर पालिश करने वाले लड़के हमसे उस समय अच्छी स्थिति में थे क्योंकि वे तुरन्त ही काकाजी के पास जा सकते थे। जब कि हमें कम से कम शाम तक प्रतीक्षा करनी थी। मेरे चाचा के लड़के तथा नौकर लोग अधिक नफे में रहे क्योंकि वे बरात के समाचार लाए थे। अब तीन बराती अपने बाल कटा रहे थे। काकाजी ने अभी कलेवा (नाश्ता) किया था। दो नाई आपस में इस बात पर लड़ रहे थे कि कौन काकाजी की हजामत बनाए। अब सारी बरात शहर देखने कारों में बैठकर चली गई थी। उन्होंने दोपहर का खाना भी खा लिया था। हमारे रसोइये भी खूब प्रसन्न थे क्योंकि उन्होंने खूब जी भरकर खाना खाया था। चाय समाप्त हो गई थी तथा एक नौकर ने आकर सूचना दी कि काकाजी ने तीन पेस्ट्रियाँ खा ली हैं। अब

सब बरात का जलूस 'घोड़ी' के लिए तैयार होने लगा।

जैसे ही हमने घोड़ी के बारे में सुना, हमारे घर को सजाने के लिए लगाई गई बल्वों की सभी मालाएँ तुरन्त जल उठीं। मेहता गली से एक ब्लाक से कुछ कम फासले पर मैंने बाजों की ध्वनि सुनी। सब नफीरी तथा ताशे और बाजे सिनेमा के एक प्रिय गाने की धुन पर बज रहे थे। इस प्रकार मैं जान गया कि घोड़ी घर की ओर चली आ रही थी। मैंने जल्दी से अपनी कोटनुमा लम्बी अचकन पहन ली तथा पिताजी से सर पर पगड़ी बँधवाई तथा ओम् भाई के साथ तुरन्त गली में भाग गया। साफा तथा अचकन से बड़ा अजीब-सा लग रहा था तथा अचकन साड़ी के समान सरसरा रही थी।

'मैंने पहले अचकन कभी नहीं पहनी,' मैं बोला।

'यदि माँ इसको पहनने के लिए परम्परा का दबाव न डालतीं तो मैं इसे कभी भी न पहनता,' ओम भाई ने कहा।

अपने घर के दरवाजे से मैंने बाजों के मधुर संगीत को सुना तथा अपने मस्तिष्क में यह धारणा बनाई कि काकाजी एक अच्छी नस्ल की सुन्दर घोड़ी पर बैठे हुए हैं। उनकी कमर में एक तलवार लटकी हुई है जो इस बात का प्रतीक है कि उनमें शत्रु से अपनी पत्नी की रक्षा करने की सामर्थ्य है और उस घर की सुरक्षा की भी जहाँ वह अपनी दुलहन को लाएँगे। मैंने घोड़ी के पैरों में घुँघरुओं की ध्वनि के सम्बन्ध में विचारा तथा सोचने लगा कि काकाजी और घोड़ी में से कौन अधिक तेज संगीत के कारण घबराया हुआ है। सम्भवतः काकाजी ही अधिक घबराए हुए थे क्योंकि घोड़ी को तो इस प्रकार के अनुभव पहले भी हो चुके थे। बाजों में संगीत का स्वर अब कुछ धीमा हो गया था।

'शायद उन्होंने दूल्हे को दिखाने के लिए लम्बा-लम्बा और चक्करदार मार्ग अपनाया है।' ओम् भाई ने कहा।

'तथा वे इस प्रकार से पाम बहन के साथ विवाह का विज्ञापन कर रहे हैं,' मैं बोला।

आज की शाम काकाजी की थी। वह घोड़ी पर इस प्रकार लग रहे थे जैसे कोई सरदार अपनी दुलहन को लेने के लिए आ रहा हो। प्राचीन काल की तरह यह एक वीरतापूर्ण तथा साहसिक कार्य था। इसके अतिरिक्त अन्य सरदारों के समान ही उनमें आत्मिक बल तथा शारीरिक साहस भी विद्यमान था।

जैसे ही घोड़ी मेहता गली में घुसी, ओम् भाई ने मुझे काकाजी के सम्बन्ध में बतलाया। उसने कहा कि वह एक गुलाबी रंग की रेशम की पगड़ी पहने हुए हैं, जिस पर जड़ाऊ मुकट शोभायमान है। वे फूलों के हारों से लदे हुए हैं।

'यह रहे वह।' मैं चिल्लाया तथा तुरन्त ही पिताजी, उनके मित्र तथा सम्बन्धी और पंडित मिलनी के लिए द्वार पर आ गए। अब तक सभी बराती अपनी कारों से उतर गए थे और हमारे सामने खड़े हो गये थे। उन सभी को हार पहनाए गए। मेरी बहन की कुछ सहेलियाँ उसे शादी की लाल किनारों वाली साड़ी पहनाने की रस्म में लगी हुई थीं जिसे मैं पहले देख चुका था। बाकी औरतें दहेज की वस्तुओं के मूल्यांकन में व्यस्त थीं जो प्रदर्शन के लिए ड्राइंग रूम में फैला हुआ था।

बरात का जलूस काकाजी को सबसे आगे घोड़ी की पीठ पर लिये धीरे-धीरे समीप आता गया। बाजा जोर से बजता रहा। तथा विभिन्न प्रकार के पदों से रचित अपने गीतों को इस प्रकार बजाता रहा कि उसकी आवाज ने शेष सभी शोर-गुल को दबा दिया। काकाजी की घोड़ी हमारे तथा अभ्यागतों के बीच बने रास्ते पर नियत स्थान पर खड़ी हो गई। बाजा तुरन्त बजना बन्द हो गया तथा चारों ओर गिरजा घर के समान नीरवता व्याप्त हो गई। उसी समय पंडित जी का आगमन हुआ तथा उन्होंने वेदों के श्लोक, जिनमें कि ईश्वर की ओर से आशीर्वाद प्रदान किया गया था, पढ़े। इसके पश्चात् पंडित जी ने मेरे पिता को मिलनी के लिए बुलाया। यह वर तथा वधू के पिताओं का परिचय कराने की रस्म थी। काकाजी के पिता का कई वर्ष पूर्व देहान्त हो गया था अतः उनकी ओर से आलिंगन उनके चाचा डा० प्रकाश ने किया तथा हमारी ओर से मेरे पिताजी ने किया। मेरे पिता की मिलनी के पश्चात् वर पक्ष के कुछ प्रमुख सम्बन्धिगण अपनी श्रेणी के कन्या के सम्बन्धियों से मिले। हमने बरात पक्ष के व्यक्तियों को नकद रुपयों के उपहार दिए। काकाजी के कोई छोटा भाई अथवा उसका स्थान ग्रहण करने वाला नहीं था जिसके साथ मेरी मिलनी हो सकती, अतः मैंने अपना उपहार वापस अपनी जेब में डाल लिया।

काकाजी ने, जो कि इस रस्म के दौरान में घोड़े की पीठ पर ही सवार रहे थे, अब घर के अन्दर कदम रखा जहाँ मेरी बहनें तथा उनकी सहेलियाँ पुष्पों की पंखु-रियों से भरी बाल्टियों समेत उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। काकाजी को चिढ़ाने के लिए उन्हें चारों ओर से लड़कियों ने घेर लिया तथा ओम् भैया ने और मैंने उन्हें

इस कठिनाई से बचाने में सहायता की। उस समय तक पाम बहन को अधिकार था कि यदि चाहती तो काकाजी से शादी करने से इन्कार कर सकती थी। क्योंकि उन्हीं को काकाजी को अपनी स्वीकृति के रूप में हार पहनाना था। यह जयमाला उन्होंने शर्माते हुए पहना दी।

जब बाजा फिर बजने लगा तो मैं तथा ओम् भाई काकाजी को एक खाली कमरे में ले गए। यहाँ हमें कुछ देर के लिए उनके साथ बातचीत करने का अवसर मिला। इस बार वह अधिक स्वच्छन्दता तथा स्वतन्त्रता के साथ बातें कर रहे थे, बनिस्बत उस दिन के जब वह प्रथम बार चाय की मेज पर हमारे साथ बैठे थे। इस बार हमने जो वृहत् प्रबन्ध किया था, उसको लेकर कुछ हँसी तथा मजाक भी हुआ। उसी समय निम्मी तथा उम्मी बहन आ गई तथा उन्होंने काकाजी के सायंकालीन भोजन का प्रबन्ध करना शुरू कर दिया। मैं बाहर चला गया तथा विभिन्न प्रकार की मधुर ध्वनियाँ सुनता रहा जिनसे उत्सुकता तथा कौतूहल अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता था। नौकर लोग इधर-उधर दौड़-दौड़ कर बीस आदमियों वाले बैंड का सत्कार कर रहे थे। मेरे चाचा बरात को सामूहिक रूप से सायंकालीन भोजन के लिए ऊपर ले जा रहे थे।

हमारे पीछे के पोर्च में हलवाइयों की एक पंक्ति बड़े-बड़े कड़ाहों में खाद्य-पदार्थ भट्टियों पर बदल-बदल कर बना रही थी। कड़ाहों में उनकी पौनियों के चलने की तथा आटे में थपकी देकर पूरियों का आकार देने के कारण लगातार आवाज आ रही थी। वह निश्चय ही एक पूरी प्रति सैकिन्ड की गति से बना रहे थे। मैं अब विचारों में खोया हुआ था तथा बंगाल के अकाल के सम्बन्ध में सोच रहा था। मैं हलवाइयों की पंक्तियों में, मेहमानों में तथा आर्केस्ट्रा बजाने वाले लोगों में अपनी अचकन पहने कभी ऊपर कभी नीचे इस प्रकार घूम रहा था जैसे मैं भी विवाह से सम्बन्धित कोई चलता-फिरता खिलौना हूँ। मेरे पिता के मित्र मुझ-से प्रसन्नतापूर्वक मिल रहे थे। नौकर लोग मुझसे अन्दर जाकर आराम करने की प्रार्थना कर रहे थे। ढोल बजाने वाला मुझे अपने कोट की पेटी जिसमें कि एक सुन्दर बकसुआ लगा था दिखलाता था। हमारे सभी दो सौ मेहमान एक स्थान पर एकत्र थे। वे एक दूसरे से मिल रहे थे तथा खाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके खाने में अभी बहुत देर थी क्योंकि बरातियों को, जो हमारे मान्य अतिथि थे, पहले खिलाया जाना था। तथा हमारे सम्बन्धीगण उनके पश्चात् ही खा सकते थे। मुझे

तो सबसे आखिर तक प्रतीक्षा करनी थी ।

'मैं तुम्हें ढूँढ़ रहा हूँ', ओम् भैया आवाजों के बीच अपनी पूरी शक्ति लगाकर चिल्लाए, 'हमें ऊपर जाना है तथा बरात से मिलना है ।'

दावत इत्यादि आधी रात गए समाप्त हो गई, तथा बाजे वालों के काम को समाप्त कर दिया गया । हमारे कुछ सम्बन्धी पेट भरकर सोने के लिए चले गए। दूसरे सम्बन्धी, कुछ गहरे मित्र तथा बरात वेदी के चारों ओर फर्श पर असली अथवा वास्तविक विवाह की तैयारी में बैठ गए । वेदी आँगन के बीच में बनाई गई थी । केले के पेड़ के चार स्तम्भ एक आठ फुट का वर्ग बनाने के लिए जमीन में गाड़े गए थे । उनके हरे पत्तों वाली टहनियों से महराबें बनी थीं, जिनमें चारों ओर फल, पुष्प, गुब्बारे तथा रंगीन बल्बों की मालाएँ लटकाई गई थीं । बीच में एक पीतल का बना हवन कुण्ड पवित्र अग्नि के लिए रखा गया था, जो वैदिक श्लोकों के अनुसार शोधक तथा पवित्र करने वाला समझा जाता है ।

पंडित जी ने, जिन्हें विवाह कराना था, कई बार खांस कर गला साफ किया तथा तुरन्त निस्तब्धता छा गई । निम्मी बहन ने मुझे बतलाया कि पाम तथा काकाजी छोटे-छोटे गद्देदार स्टूलों पर, माँ तथा पिताजी के बाद बैठे हुए हैं । अब पंडित जी मण्डप में आए और हवन प्रारम्भ कर दिया, उन्होंने ही पवित्र अग्नि को जलाया । पंडित जी ने जैसे ही घृत, चन्दन की समिधाएँ तथा धूप की आहुति दी अग्नि प्रज्वलित हो उठी । एक सुगन्धित नमकीन पदार्थ की बहुत बड़ी प्लेट को चारों ओर घुमाया गया। तथा मैंने भी उसमें से एक मुट्ठी भर लिया ।

'थोड़ा-सा ही काफी होगा', निम्मी बहन बोली । मैंने अपनी मुट्ठी को अग्नि की लौ पर फेंका तथा प्रार्थना की कि पंडित जी के सिर पर न लगे । तुरन्त अग्नि प्रज्वलित हुई तथा सारा आँगन तेज मधुर सुगन्ध से भर गया । पंडित जी ने संस्कृत में वैदिक श्लोक अपनी धीमी तथा उदास आवाज में पढ़ने प्रारम्भ किए । वह बीच-बीच में काकाजी तथा पाम के द्वारा संस्कृत में शपथ को दोहरवाने के लिए रुक जाते थे । पंडित जी के मुकाबले में उनकी आवाजें कुछ झिझकती-सी तथा अस्पष्ट थीं । लेकिन जब दोनों की आवाजें साथ-साथ निकलीं तो बड़ी मधुर मालूम पड़ीं ।

जब शपथ लेने का कार्य पूरा हो गया तो उन्होंने वर तथा वधू को समझाने के लिए उनका हिन्दी में अनुवाद किया । दोनों ने हिन्दू नियमों के अनुसार रहने की प्रतिज्ञा की । एक दूसरे के प्रति निष्ठा तथा सत्यता के साथ रहने की दोनों ने शपथ

ली। एक दूसरे की कठिनाइयों को बाँटने की शपथ ली। अपनी जाति का प्रचार करने की तथा पुत्र रत्न की उत्पत्ति करने की और चट्टान के समान दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की।

'वे एक पत्थर के टुकड़े पर साथ-साथ पैर रख रहे हैं', निम्मी बहन ने मुझे समझाया, 'और अब उन्होंने वेदी की परिक्रमा प्रारम्भ कर दी है।'

मैं जानता था कि उन्हें सात बार परिक्रमा करनी पड़ेगी जो सात नक्षत्रों की स्तुति का प्रतीक होगा। अग्नि की परिक्रमा करने के पश्चात् वर ने एक श्लोक में मेरी बहन को सम्बोधित करते हुए कहा, 'तू मेरी जीवनसंगिनी बन, क्योंकि तूने मेरे साथ सात पद रखे हैं। तेरे बिना मैं अकेला जीवित नहीं रह सकता तथा मेरे बिना तुम अकेली नहीं रह सकतीं। हम सभी शक्तियों तथा अच्छाइयों का सम्मिलित रूप से भोग करेंगे तथा मेरे घर की तुम पूर्ण स्वामिनी होगी।'

विवाह के उत्सव का प्रथम दिवस उस दिन पूर्ण हुआ जब काकाजी पाम बहन को कुछ मिनट के लिए मेहता गली में ले गए। जिससे उसका बरात के उन सदस्यों से परिचय हो जाए जो कि फेरों के समय नहीं आए थे। यह उनकी इस इच्छा का प्रतीक था कि वह उनकी वधू थी। लेकिन मेरी बहन की औपचारिक विदा बरात को और दो दिन तक दावत खिलाने के बाद होनी थी। हर भोजन करने के लिए बरात एक बाजे के साथ आती थी। लेकिन यह बैंड छोटा होता था जिसमें कि कुल पाँच व्यक्ति होते थे।

इस उत्सव की समाप्ति तीसरे दिन सायंकाल हो गई। एक फूलों से सजी कार में बैठकर वर तथा वधू चल पड़े तथा समस्त बरात ने एक काफिले के रूप में उनका अनुगमन किया। केवल पिताजी, माताजी, निम्मी, उम्मी, ओम, ऊषा, अशोक तथा मैं अन्तिम कार में सवार होकर पीछे-पीछे चले। विवाह के तीन दिनों में यह प्रथम अवसर था जब कि हम सब एक स्थान पर और केवल परिवार के लोग एकत्र हुए थे। समस्त काफिला ऊँट के समान लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ा। मुझे याद है कि उस समय मैं कितनी गर्मी तथा कष्ट का अनुभव कर रहा था जैसे कार में ही आग जल रही हो। मुझे दुख था कि काकाजी तथा पाम बहन अपने देहरादून में होने वाले स्वागत से पहले मिलकर अकेले बात भी नहीं कर सकेंगे। इस बार स्वागत बरात के द्वारा किया जाएगा।

यद्यपि हमारे अपने सम्बन्धीगण पीछे रह गए थे फिर भी मैंने उनकी पाम

बहन को विदा करने की आवाजें सुनीं जो भावनाओं अथवा भावुकता के कारण भर्राई हुई थीं। वह सम्भवतः अपने ही विवाह के दिनों का ध्यान कर रहे हैं, मैंने सोचा ।

'सब स्त्रियाँ दहेज का मूल्य सोने के रूप में अनुमान कर रही होंगी।' निम्मी बहन ने शान्ति भंग करते हुए कहा, 'डैडी जी, अपनी पहली लड़की की इतनी सुन्दर शादी करके अब आपको हमारे विवाहों में कोई कठिनाई नहीं होगी।' काकाजी तथा पाम बहन को एक अलग कम्पार्टमेंट में यात्रा करनी थी जिसमें कुली बरफ की बाल्टियाँ रख रहा था। काकाजी को एकान्त में ले जाकर मैंने पिता जी को उन्हें अच्छी प्रकार तथा आराम से यात्रा करने का परामर्श देते हुए सुना। गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ी और हम अकेले घर वापस आ गए।

सभी सम्बन्धी विदा हो गए थे तथा बिना पाम बहन के घर बिल्कुल सूना-सा लग रहा था। एक संगठित परिवार प्रथम बार विघटित हुआ था। मैं सोच रहा था कि यह घर उस समय कैसा लगेगा जबकि उम्मी तथा निम्मी बहन का विवाह भी हो जायगा। तथा इस विचार ने आकर मेरे कुछ खोने के दुख अथवा वेदना को और भी बढ़ा दिया।

उम्मी बहन बोली, 'मैं अपना विवाह एक गिरजे में बिल्कुल शान्त वातावरण में करूँगी, ठीक उसी प्रकार जैसे पश्चिम के लोग करते हैं जिसमे सम्बन्धियों की कोई भीड़-भाड़ नहीं होगी।' मेरी माताजी ने उसकी ओर शान्त भाव से देखा। वह वास्तव में इतनी अधिक थक गई थीं कि उसकी बात पर टिप्पणी करने में अथवा उसे काटने में असमर्थ थीं। यद्यपि ओम् भैया तथा मैं अवश्य सन्तुष्ट थे। दावत से इतनी अधिक मिठाइयाँ बच गई थीं कि हम उनका कई हफ्तों तक प्रयोग कर सकते थे।

दूसरा भाग

पाकिस्तान तथा परिवर्तन

फूट डालो और··· | ११

फरवरी, १९४७ में मेरे पिताजी ने मेरे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सभाओं में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जो अब तक सैनिक संस्था बन गई थी। उन्होंने मुझे बतलाया कि सरकारी अधिकारियों के समान उनके बच्चे भी राजनीतिक संस्थाओं में सम्मिलित नहीं हो सकते थे।

पहले शादी की योजनाओं के कारण हमारे घर में प्रसन्नता का वातावरण रहता था, लेकिन अब चारों ओर अनिश्चितता से भरा तनाव व्याप्त था। गलियों में जलूसों के द्वारा नारे सुने जा सकते थे, 'लेके रहेंगे पाकिस्तान! जैसे लिया था हिन्दुस्तान' अर्थात् हम पाकिस्तान उसी प्रकार लेंगे जैसे कि एक बार हिन्दुस्तान लिया था, 'यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री मुर्दाबाद'—यूनियनिस्ट मिनिस्ट्री का नाश हो!

शुरू में तो हम छज्जे पर खड़े हो जाते थे तथा चुपचाप इन घृणा का प्रचार करने वाली आवाजों को सुनते थे। हम सब साथ खड़े हो जाते थे तथा रेलिंग पर हाथ रखकर आगे झुककर प्रत्येक शब्द को सुनने का प्रयास करते थे। उनकी आवाजें धमकी से भरी हुई तथा इतनी अवास्तविक होती थीं कि उन पर विश्वास करना कठिन ही नहीं हो जाता था किन्तु असम्भव भी। पहले मेरी बहनें आँखों देखा हाल मुझे बतलाया करती थीं, अब बिल्कुल शान्त रह जाती थीं। अब यह जलूस अक्सर निकलने लगे थे, अतः उनमें उत्सुकता अब नहीं रह गई थी। अब हमने छज्जे पर भी जाना छोड़ दिया था। पहले जब कि हम अति उत्साह के साथ राज-नीति पर शीघ्रता से आने वाले स्वतंत्रता दिवस के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया करते थे, अब हम ऐसा कुछ न करने की ही कोशिश किया करते। हम एक दूसरे के साथ रहने में भी कठिनाई अनुभव करते तथा कभी-कभी हमें अपनी बातचीत अचानक ही रोक देनी पड़ती। अक्सर हम तेजी से बातचीत करते थे। हमारी आवाजें एक दूसरे की नाड़ियों को झंकृत कर देती थीं, जिससे बाहर खून की भूखी आवाजें कुछ दब जाएँ।

झण्डा जोकि अपनी भर्राई आवाज में प्रतिदिन आकर कहता था, 'फल बीबी जी ?' उसकी आवाज़ फिर कभी नहीं सुनी गई। पिछले बीस वर्षों से वह मेहता परिवार के लिए फल लाया करता था तथा अक्सर गली में बच्चों को मुफ्त नाशपाती या आम बाँट दिया करता था। अब यह सब अतीत की बातें मात्र हो गई थीं। वह मुसलमान था, और हो सकता है कि उससे कहा गया हो कि अगर वह हिन्दुओं को फल बेचेगा तो उसका अंतिम संस्कार भी विधिवत् नहीं किया जायेगा।

स्कूल में श्री बाकिर ने मुसलमान विद्यार्थियों को दण्ड देना बन्द कर दिया था। उनकी सजाएँ अब केवल हिन्दू विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित हो गई थीं।

आखिर इस जीवन-क्रम को बिगाड़ने वाली कौन-सी बात थी ? क्या कारण था कि वर्षों की मृत धार्मिक कटुता पुनः जीवित हो उठी ? इस प्रश्न पर समय-समय पर विभिन्न समाचारपत्रों द्वारा विचार किया गया था जिनमें, यद्यपि इसके परिणामों पर मतभेद था, इसके कारणों पर लगभग सभी कुछ अंशों में एकमत थे।

यह एक साधारण ज्ञान की बात थी कि हजारों वर्षों तक हिन्दू तथा मुसलमान साथ-साथ रहे थे। उन्होंने साथ-साथ खेतों में काम किया था। एक दूसरे के धार्मिक त्यौहारों में भोज तथा खुशी में परस्पर भाग लिया था। और १८५७ में तो अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित रूप से लड़े भी थे। बीसवीं शताब्दी में महात्मा गान्धी तथा कॉंग्रेस के नेतृत्व में स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए वे समान उत्साह तथा उमंग के साथ संघर्ष में लगे रहे। वे नमक सत्याग्रह के समय महात्मा गान्धी के साथ रहे। तथा उनकी सत्याग्रह और अहिंसा की नीति से अंग्रेजों के समक्ष अपना विरोध प्रदर्शित करते रहे।

गान्धी जी तथा कॉंग्रेस पार्टी एक ऐसे भारत का प्रतिनिधित्व करते थे जहाँ की विभिन्न संस्कृतियाँ साथ-साथ उस समय तक पनपती रहीं, जब तक उनकी विभिन्नताओं ने इस उपमहाद्वीप में एकरूपता ग्रहण नहीं कर ली तथा प्रत्येक धर्म उस समय तक एक दूसरे से कुछ न कुछ लेता रहा जब तक उनका सम्बन्ध अटूट न हो गया।

इस संगठन को तोड़ने का ब्रिटिश शासन उस समय तक नियमानुसार अपनी 'विभाजन तथा शासन करने की नीति' के द्वारा निरन्तर प्रयास करता रहा, जब तक यह संगठन रूपी भवन धराशायी ही न हो गया। यहाँ तक कि १८५९ में बम्बई के तत्कालीन अंग्रेज राज्यपाल माउन्ट स्टुअर्ट एलफ़िन्स्टन ने अपने एक

सरकारी प्रेषण में ब्रिटिश नीति पर टिप्पणी करते हुए कहा था, 'डिवाइड एट इम्पेरा' एक रोमन मोटो है तथा इसी को हमें अपनाना चाहिए।' इस नीति को मूर्त रूप देने का प्रमाण यह तथ्य है कि मुसलमानों ने पाश्चात्य रीति-रिवाजों को इतनी आसानी से नहीं माना जितना कि हिन्दुओं ने। १८५७ के विद्रोह का कारण मुलसमानों के सर मढ़ा गया, अतः सरकार ने उच्च सरकारी पद हिन्दुओं को देने की पक्षपात पूर्ण नीति अपनाई। उस समय भी मुसलमानों की तुलना में हिन्दू ही अधिक सम्पत्तिशाली थे, तथा उनमें अधिकतर मध्यवर्ग के अथवा व्यावसायिक ही थे।

अतः मौका आने पर ब्रिटिश सरकार के लिए मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने मुसलमानों के कम उद्योगी स्वभाव को हिन्दुओं की ओर परिवर्तित कर दिया तथा इस प्रकार दोनों वर्गों में परस्पर आर्थिक कटुता उत्पन्न कर दी। अंगरेजों ने मुसलमानों के अधिकारों का एकमात्र सरंक्षक होने का भाव प्रदर्शित किया तथा कुछ मुसलमान नेताओं ने भी अंगरेजों का पक्ष लेने में अधिक समय नहीं खोया। सर सैयद अहमद खाँ ने, जो एक प्रतिष्ठित तथा मान्य शिक्षाविद् थे, मुसलमानों को परामर्श दिया कि उनकी एकमात्र आशा अंगरेजों के साथ रहने में ही है और उन्हें अंगरेजी सरकार के प्रति निष्ठावान् रहना चाहिए।

अलीगढ़ कालेज, जिसकी स्थापना अंगरेजों की सहायता से हुई थी, अंगरेजों की इस विभाजन तथा शासन की नीति को मूर्त रूप देने का तथा इसके प्रचार का मुख्य कार्यालय बन गया। यह कालेज केवल मुसलमानों के लिए ही था तथा १९०६ में इस कालेज के प्रिन्सिपल श्री आर्चिबाल्ड ने कुछ प्रतिष्ठित मुसलमानों को पृथक् मतदान प्रणाली की माँग के लिए उकसाने में प्रमुख भाग लिया। अपनी योजनानुसार अंगरेजों ने इस शिष्टमण्डल की माँग को समस्त भारत के मुसलमानों की इच्छा के रूप में लिया और हिन्दुओं तथा मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन प्रणाली मान ली गई। इस प्रकार प्रथम बार दोनों वर्गों में एक स्पष्ट भेदकारक स्थिति उत्पन्न की गई।

यह नीति समय की स्थिति को देखते हुए अंगरेजों के लिए खूब लाभकारी रही, क्योंकि इसके द्वारा मुसलमान कांग्रेस के साथ मतदान करने से पृथक् कर दिए गए। अलीगढ़ एक ऐसा स्थल बन गया, जहाँ हिन्दू तथा मुसलमानों में भेद

उत्पन्न करने के लिए नेता तैयार होते थे। अंगरेजों को अपनी इच्छाओं को साकार करने के लिए इनसे अच्छे एजेन्ट अथवा दलाल और कहाँ मिल सकते थे। इन्हें एक विशेष ढंग से सुशिक्षित किया जाता था, अतः एक इस्लाम राज्य की स्थापना के लिए किसी और व्यक्ति की तुलना में मुस्लिम जनता पर इनका अधिक प्रभाव पड़ता था।

इस प्रकार धीरे-धीरे किन्तु होशियारी के साथ जनता की भावनाओं को एक विशेष ढाँचे में ढाला गया और यह क्रम उस समय तक चलता रहा जब तक राष्ट्रीय भावनाओं का परिणाम मुस्लिम लीग की स्थापना में नहीं हो गया। इतिहासकारों का विश्वास है कि यदि धर्म की आड़ इन दोनों जातियों को अलग करने के लिए न ली जाती तो निश्चित रूप से ब्रिटिश अथवा कुछ स्वार्थलोलुप अलीगढ़ के मुस्लिम नेताओं का इस सम्बन्ध में किया गया कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता था।

इसके उपरान्त भी बहुत-से प्रतिष्ठित मुसलमानों ने कांग्रेस को नहीं छोड़ा तथा बिना विभाजन के स्वतन्त्रता प्राप्ति के अपने लक्ष्य के प्रति निष्ठावान रहे। इन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वर्षों में, जब ये नेता मुस्लिम जनता को मुस्लिम लीग के साथ मिलने से रोक सकते थे, इन्हें महायुद्ध के काल में जेलों में रखा गया और इस प्रकार मुस्लिम लीग को बिना किसी रोक तथा प्रतिबन्ध के जोरशोर के साथ कार्य करने का अच्छा अवसर मिल गया। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जब कांग्रेसी नेता जेलों के बाहर आए तो एक अलग देश की मांग को सुनकर स्तब्ध रह गए तथा उस समय मुस्लिम लीग के नेता भी अत्यधिक जिद्दी और हठी हो गए थे। इस बात पर भी उन्हें आश्चर्य हुआ कि लीग के पास इस राज्य को आधारित करने के लिए निश्चित सिद्धान्त भी नहीं थे।

मुसलमान समस्त भारत में फैले हुए थे और कुछ स्थानों पर मुसलमानों का बहुमत जरूर था लेकिन सभी मुसलमानों के लिए अलग राज्य सम्भव नहीं था, क्योंकि जहाँ कहीं भी मुस्लिम बहुमत था वहाँ हिन्दू भी काफी संख्या में थे। जब यह कठिनाई श्री मुहम्मद अली जिन्ना के सम्मुख रखी गई तो वह बातों ही बातों में इस प्रश्न को गोल कर गए। उन्होंने एक समझौते का रुख नहीं अपनाया तथा महात्मा गांधी और श्री जवाहरलाल नेहरू की एक मिली-जुली सरकार बनाने की

प्रार्थना को ठुकरा दिया [1]।

कुछ समय तक तो जो कुछ हो रहा था इस सम्बन्ध में मेरे पिताजी को तनिक भी भ्रान्ति नहीं थी। किन्तु वास्तव में सत्य यह था कि वह आने वाले महीनों में झगड़ों की तथा उनकी पाशविकता की पूर्व कल्पना नहीं कर सके। लेकिन इसके उपरान्त निरन्तर भावनाओं तथा अन्ध विश्वास की आंधी चलती रही। तथा १९४७ में मार्च के प्रथम सप्ताह में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। इस अचानक तेजी से चलने वाली आंधी ने हमारे चाचाजी को आश्चर्य में डाल दिया। वे हमारे बड़े थे तथा मेहता और मेहरा परिवारों में किसी से भी अधिक काल से लाहौर में रह रहे थे। चाचाजी को इस बात का दृढ़ विश्वास था कि वे नेता पागल तथा उन्मादी थे जिनका जनता के बहुमत पर कोई प्रभाव नहीं था। उनके भूतकाल के अच्छे अनुभव ने उन्हें वर्तमान की स्थिति को समझने नहीं दिया। बिल्कुल ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे एक दूसरी ही दुनियाँ में रह रहे हों।

एक दिन शाम को जब हम उदास डाइनिंग रूम में बैठे थे तो पिता जी ने माता जी से कहा, 'मैं तुम्हें बतलाए देता हूँ कि खून खराबी से बचने के लिए हमारे पास बहुत थोड़ा समय रह गया है। मैं चाचाजी की बहुत सुन चुका हूँ तथा उनका आदर करता हूँ, लेकिन मैं उनकी तैयारी न करने की बात को मानने के लिए तैयार नहीं हूँ। यदि वह स्वयं अपनी देखभाल नहीं कर सकते तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम उनकी देखभाल करें।'

सभी जानते थे कि तमाम पुलिस मुसलमान थी जो मुस्लिम भीड़ की विनाशकारी प्रवृत्तियों के समय या तो चुपचाप खड़ी रहती और या स्वयं उनके साथ उसमें भाग लेती। यदि हिन्दू अपने भाइयों को बचाने के लिए उत्तर देते तो यह निश्चय था कि उन्हें पाशविकता के साथ गोलियों से भून दिया जाएगा। उदाहरणार्थ हम जानते थे कि जब कोई मुसलमानों का जलूस होता था तथा पुलिस से उसे तितर-बितर करने को कहा जाता था तो वह कभी भी अश्रुगैस का प्रयोग नहीं करती थी, कभी भी उन पर लाठी चार्ज नहीं करती थी। अधिक से अधिक उनके

---

१. इस पर्यवेक्षण में मैंने श्री गोपालदास खोसला द्वारा लिखित तथा भवनानी एण्ड सन्ज़, नई दिल्ली, भारत द्वारा १९५० में प्रकाशित पुस्तक 'स्टर्न रैकिनग' से उद्धरण लिये हैं।

नेताओं को पकड़कर कुछ मील के फासले पर छोड़ आती थी जहाँ मुस्लिम लीग की कारें उन्हें वापस लाने के लिए तैयार खड़ी रहती थीं, जिससे वे अपना काम फिर शुरू कर सकें। हम इन सभी बातों को तथा इनसे भी अधिक बातों को जानते थे किन्तु जब पिताजी इन्हें आने वाले दु:ख और संकट के काले बादलों की सूचना के रूप में लेते थे तो चाचाजी इन्हें उतना अधिक महत्त्व नहीं देते थे, जितनी परिस्थितियों की माँग थी।

'आओ चलो, चाचाजी के घर चलें', पिताजी बोले और हम सब चाचाजी के घर की ओर चल पड़े। हमेशा की तरह वह बरामदे में बैठे हुए थे। उनके चारों ओर किताबें और समाचारपत्र फैले हुए थे तथा बहमियों के समान वह उनके नोट्स ले रहे थे। हमारे आगमन पर उनके त्योरी चढ़ाने को मैं देख तो नहीं सकता था, किन्तु मैंने उसकी कल्पना कर ली थी। वह हमें देखकर काफी खुश हुए, लेकिन वह जानते थे हमारे आने पर सारी कथा फिर से प्रारम्भ होगी और वह उसी अवस्था, जिसमें कि परिवार की छोटी आयु के एक सदस्य ने उन्हें पाया था, पर विश्वास करते थे। वह पक्ष अथवा विपक्ष में वाद-प्रतिवाद पसन्द नहीं करते थे।

'क्या हमें फिर उसी बात पर विचार करना पड़ेगा, अमोलक राम ?' उन्होंने मेरे पिताजी से कहा।

'चाचाजी, आपको हमारी बात सुननी पड़ेगी, आपके घर में दस स्त्रियाँ हैं जिनमें से एक गर्भवती भी है। ऐसी स्थिति में भाग्य के भरोसे बैठने में कोई तुक नहीं है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि या तो इन स्त्रियों को हमारे यहाँ भेज दीजिये जहाँ हम कुछ सुरक्षित स्थान बनाने का प्रयास करेंगे और या फिर मुझे अपनी लड़कियों को यहाँ ले आने दीजिये। लेकिन मेरा विचार है कि हमारा घर ही अधिक सुरक्षित है।'

'क्या तुम यह नहीं समझते कि परिवार की स्त्रियों के सम्बन्ध में यदि तुमसे अधिक नहीं तो कम से कम तुम्हारे समान ही मैं भी अपना उत्तरदायित्व अनुभव करता हूँ ?' चाचाजी बीच में ही बोले।

'इसे मैं अस्वीकार नहीं करता,' पिताजी ने अपनी बात रखते हुए कहा।

'तो फिर इसे मेरे ऊपर छोड़ दो और मुझे इसका समाधान अपने ढंग से करने दो।'

दो घण्टे के विचार विमर्श का सारांश यह रहा कि हम चाचाजी को उसी

स्थिति में छोड़कर चले आए, जिस स्थिति में उन्हें वहाँ पहुँचने पर पाया था तथा समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। जैसे ही हम घर में घुसे पिताजी बोले, 'यदि वे मेरी बात नहीं मानेंगे, शान्ति, तो फिर मुझे स्वयं अपने उत्तरदायित्व पर काम करना पड़ेगा। मैंने इस सम्बन्ध में बिशनदास से बात कर ली है। (बिशनदास हमारे बराबर के पड़ौसी थे तथा उनका और हमारा हाल सम्मिलित था) और वह कहते हैं कि पास-पड़ौस के समस्त हिन्दू परिवार बिना गली में जाए उनके घर में इकट्ठे हो सकते हैं तथा हम पुरुष छज्जों पर खड़े होकर बन्दूक लेकर उनकी रक्षा करें। यही एकमात्र उपाय है।'

'जैसा आप कहें, जी।'

पिताजी ने यह कहते हुए अपनी बात को समाप्त किया, 'इसका अर्थ यह हो सकता है कि हमें अपना घर खाली करना पड़े। लेकिन समय बदल गया है और अब माल को इतना खतरा न होकर जान को अधिक है।'

अगले दिन सुबह ही अपने उठने से पहले मैंने दरवाजे पर धीरे से थपकी की आवाज सुनी।

'कौन है ?' मैंने पूछा।

'सोहन।' आर० एस० एस० का मेरा साथी बोला। वह मुझसे तीन वर्ष बड़ा यानी अट्ठारह वर्ष की आयु का था।

मेरा कमरा मकान के एक सिरे पर था तथा सोहन इस प्रकार आने में सफल हो गया था कि किसी को पता न चले। मेरे पिताजी ने किसी भी आर०एस०एस० के स्वयंसेवक को न आने देने के लिए कड़ी आज्ञा दी थी क्योंकि ऐसी अफवाह थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्यों के परिवारों का नाम मुस्लिम लीगी नेताओं की—जो भीड़ को भड़काते थे—लिस्ट पर सबसे ऊपर था।

मैंने दरवाजा खोल दिया, 'तुम से मिलकर बड़ी खुशी हुई सोहन, बताओ तो सही कि क्या हाल है ? मैंने सुना कि तीन दिन हुए संघ पर प्रतिबन्ध लग गया है। क्या हो रहा है आजकल ?'

'एक मिनट ठहरो भई। जरा दिमाग को ठण्डा रखो,' वह बोला, 'तुम तो ऐसे अधीर कभी नहीं थे। हाँ, स्थिति तो वास्तव में बहुत गम्भीर है। ऐसा प्रतीत होता है कि समय आ रहा है जब मुस्लिम लीग अपनी योजना को क्रियान्वित करेगी। लोग कहते हैं कि मेयर मियाँ अमीरुद्दीन ने भी अपने घर में गोला-बारूद

इकट्ठा कर लिया है तथा उन्हें मुस्लिमों में मुफ्त बाँटा जा रहा है । वह रोज और अधिक मँगा लेता है ।'

'यह बात मैंने सुनी है,' मैंने उससे कहा, 'मेरी बहनें इस सम्बन्ध में कल ही बतला रही थीं ।'

'हाँ, वह इस बात को गुप्त भी नहीं रख रहा है ।'

'हमें क्या करना चाहिए, सोहन ? '

'हम और कर ही क्या सकते हैं ? सभा में मैंने यह विषय उठाया था और गांधी जी के नेतृत्व के सम्बन्ध में भी हमने बातें की थीं तो सबने गम्भीरता के साथ इस पर ध्यान दिया, लेकिन उन्होंने किया कुछ भी नहीं । मैं तुम्हें यह बतलाए देता हूँ कि गांधी जैसे नेता अब पुराने पड़ चुके हैं। इनका जमाना अब नहीं रहा । वे भारत के लिए अपना कार्य कर चुके हैं। वे इतने अधिक आदर्शवादी हैं कि इन गुण्डों पर नियंत्रण नहीं कर सकते ।'

'जानते हो सोहन, तुम क्या कह रहे हो ?'

'हाँ, मैं जानता हूँ और मेरा विचार है कि यह सब पाखण्ड है ।'

मैं उसके उत्साह और तत्परता में सन्देह नहीं कर सका । हमारे दिमागों में भी कई महीने से यही विचार घूम रहा था, फिर भी इसे अब तक इतने स्पष्ट रूप में किसी ने नहीं कहा था जैसा सोहन ने । वह सदा शान्त रहने वाला तथा सुनने वाला लड़का था तथा उसके शब्द बड़े नपे-तुले होते थे । वे बड़े स्पष्ट तथा तेज होते थे जिनका प्रयोग वह बहुत विश्वास के साथ करता था । कितनी बार मैंने शाखा की सभाओं में उसे इतनी स्पष्टता और सुचारुता के साथ बोलते हुए सुना था तथा बड़े पक्के काँग्रेसी भी उसके तर्कों के सामने नहीं ठहर सकते थे ।

'मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ,' मैंने कहा, 'तुम लगभग हमेशा ठीक तथा उचित बात ही कहते हो, सोहन ।'

'भाई, इसका मुझे ज्ञान नहीं है लेकिन इस बार मैं अपने को ठीक ही समझता हूँ । देखो अब हमें योजना बनानी चाहिए । मैं तुम्हारी बहनों और परिवार को अपने ही परिवार के समान समझता हूँ ।' (उसका परिवार खतरे वाले इलाके से बाहर था) अब तुम्हें बहुत अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए ।

'यही तो पिताजी ने कल हमें बतलाया था । उनकी एक योजना है सोहन और मैं समझता हूँ वह अभी गुप्त है ।'

'मैं तुम्हारे पिताजी का आदर करता हूँ। उनकी ओर से मुझे कोई डर नहीं है। और तुम्हारे चाचाजी क्या कहते हैं ?'

'वह अब भी हमेशा के समान अपरिवर्तित हैं।'

'यही मेरा विचार था। काश कि मैं उस व्यक्ति से बातें करने के लिए कुछ बड़ा होता।'

'मुझे विश्वास नहीं होता, कि तुम भी उन्हें समझा सकते। मैंने कल उन्हें बात करते सुना था। उनके तर्क निस्सन्देह बड़े सुन्दर हैं।'

'क्या हैं वे ?'

'तुम्हें मालूम है क्या ? उन्होंने इतिहास के सम्बन्ध में बतलाया कि हिन्दू और मुसलमान किस प्रकार मिलकर रहे हैं।'

'हाँ, वह भी उसी प्रकार गप्पी हैं, जैसे अन्य काँग्रेसी हैं। वे बदलते हुए समय को क्यों नहीं समझते ? इतिहास की बात करते हैं लेकिन मैं तुमसे पूछता हूँ ब्रिटिश इतिहास की बाबत क्या है ? तुम जानते हो कि यह समय कोई एक रात में नहीं बदल जाता। इस काम में शताब्दियाँ लगती हैं या वह इन सौ वर्षों का अन्तर ऐसे ही छोड़ देगें ?'

'सोहन उनके प्रति इतने कठोर मत बनो। वह एक दूसरे ढंग से सोचते हैं। वह नहीं समझते किस प्रकार एक विदेशी शक्ति शताब्दियों के दृढ़ संबंधों को तोड़ सकती है। उनका विचार-क्षेत्र विशाल है और वह एक महान् उद्देश्य को सामने रखकर इस समस्या पर विचार करते हैं।'

'मुझे कभी-कभी आश्चर्य होता है वेद ! काश ! यदि वह अंग्रेजों की शक्ति का अनुमान लगा सकते ? वह कोई मूर्ख नहीं हैं। वह भली भाँति जानते हैं कि उनका बाँया हाथ क्या कर रहा है। लेकिन हाँ, वह योजना कौनसी है जिसके सम्बन्ध में तुम कह रहे थे ?'

'मेरे पिताजी तैयार होगए हैं कि हम सब को बिशनदास के घर में ठहरना चाहिए।'

'तुम्हें ऐसा करने के लिए समय ही कहाँ मिलेगा, गली की पहले ही नाका बन्दी हो जाएगी।'

'वह कहते हैं कि हमें गलियों में जाने की आवश्यकता नहीं रहेगी'

'मुझे आश्चर्य है कि यह कैसे सम्भव है। तुम लोग निश्चित रूप से एक छज्जे से दूसरे छज्जे पर जाकर यह फ़ासला तय नहीं कर सकते। यह असम्भव है, कम से कम अत्यधिक खतरनाक भी है। हाँ, तुम मिली हुई दीवार को अवश्य तोड़ सकते हो और उसमें से जा सकते हो।'

'सम्भव है, यही योजना हो।'

'लेकिन भीड़ तो तुम्हारे घर में एकदम घुस आएगी। वह तुम्हें न पाकर दीवार के टूटे हुए भाग को ढूँढ लेंगे और इस प्रकार उन्हें तुम्हारे छिपने का स्थान पता चल जाएगा।'

'लेकिन पिताजी कह रहे थे कि सब पुरुष बन्दूकों के साथ छज्जे पर चले जाएँगे और वास्तव में हमारे यहाँ एक बन्दूक तो कल ही आई है।

'जरा समझदारी से बात करो ! कहीं बन्दूकें मनुष्यों की भीड़ को रोक सकती हैं। तुम कुछ को उनमें से मार सकते हो लेकिन उन्हें स्त्रियों का हरण करने से तथा पुरुषों को कत्ल करने से नहीं रोक सकते। तुम्हारे पिताजी को यह समझ लेना चाहिए। सम्भव है उनके पास कोई और अच्छी योजना होगी जो कि इस समय मेरे दिमाग में नहीं आ रही है।'

'तुम इस बीच क्या करोगे, सोहन ? तुम कहाँ रहोगे ?'

'मैं अपना प्रबन्ध कर लूँगा। फिलहाल मैं यहीं हूँ और यदि उन्होंने मुझे मार भी दिया तो भी दो-चार को तो ले ही मरूँगा।'

'ईश्वर के लिए ऐसी बातें मत बोलो।'

'तुम इस खून-खराबी को सुनने के आदी हो जाओगे और अपने मित्रों के सम्बन्ध में भी जो इसमें मरेंगे ! खैर जाने दो। अब मुझे जाना चाहिए।'

'क्या मैं तुमसे फिर मिल सकूँगा, सोहन ?'

'मैं कल प्रातःकाल इसी समय आऊँगा। तुम डरे तो नहीं। क्यों, डर गए क्या ?'

'अपने पिताजी और तुम्हारे सम्बन्ध में ?'

'हाँ, तुम जानते हो मेरा मतलब क्या है। मैं नहीं चाहता वह सोचें कि मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर रहा हूँ।'

'मुझे यह जानने के लिए कि बाहर क्या हो रहा है तुमसे मिलना ही चाहिए, सोहन।'

'अच्छा ! मैं कल यहाँ आऊँगा।'

मेरे पिता जी के उठने का समय हो रहा था, अतः वह इसके बाद चला गया और मैं विचारता रहा, 'कैसा आश्चर्यजनक और दृढ़ निश्चय वाला लड़का है यह! सोहन का साहस दूसरों को साहस प्रदान कर सकता था और मैं उत्सुकता के साथ उसके अगली बार आने की प्रतीक्षा करने लगा।

आदर्श और भाग्य १२

उसी दिन सोहन के आगमन से भी अधिक परेशान करने वाली एक घटना घटी।

शेख साहिब, जिनका घर हमारे घर के सामने ही था, हमारे यहाँ आए। उन्होंने घण्टी बजाई और मैंने दरवाजा खोला।

'क्या तुम्हारे पिताजी घर पर हैं ?' उन्होंने पूछा।

'शायद ! आप बैठिये न !' मै पिताजी को बुलाने चला गया।

उनके पीछे-पीछे आकर तथा पर्दे के पीछे छिपकर मैं सुनने लगा कि शेख साहब क्या कहते हैं ?

'ओह : डाक्टर जी, मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।'

'जी हाँ, आप से मिलकर मुझे भी प्रसन्नता हुई' पिताजी ने उनका अभिवादन किया।

एक हिन्दू तथा मुसलमान को इस प्रकार खुलकर बातें करते हुए बहुत दिनों से नहीं सुना था। मेरी बहनों की पक्की सहेलियों ने भी अब घर आना बन्द कर दिया था और जब कभी भी हम उनसे गलियों में मिल जाते थे तो वे राह बचा जाती थीं।

'भाई डाक्टर जी, मैं साफ बात कहना चाहता हूँ' शेख साहब ने कहा, मुसीबत आने वाली है और आप यहाँ बहुत सुरिक्षत नहीं हैं। आपके बाईं ओर वे पड़ौसी सिक्ख हैं और इसका मतलब आप समझ सकते है। मै हस्तक्षेप तो नहीं करना चाहता लेकिन मैं और मेरी पत्नी आपको बतला देना चाहते हैं कि हमें आपके बच्चों को अपने घर में स्थान देने में प्रसन्नता होगी।'

मुझे सन्देह हुआ। केवल तीन महीने पहले ही शेख साहब ने हमारे घर को एक लाख रुपयों पर खरीदना चाहा था पर पिताजी ने इन्कार कर दिया था। मैं सोचता था कि पिताजी बेच ही देते तो अच्छा रहता, क्योंकि हिन्दुओं की सम्पत्ति की कीमतें

घटती ही चली जा रही थीं। अब शेख साहब हम सबको घर से बाहर निकालने का सुझाव दे रहे थे। शायद वे हम सबको मरवा डालेंगे और फिर मकान पर अपना दखल जमा लेंगे। कितनी चालाकी और ढिठाई थी।' मैंने सोचा।

लेकिन पिताजी के शब्दों को सुनकर मैं खुशी से फूल उठा। क्योंकि वे भी शेख साहब की ही तरह साफ बात करने के अभ्यस्त थे।

'नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी, शेख साहिब !'

'डाक्टर जी, जरा समझ से काम लीजिए। आपकी लड़कियाँ मुझे उतनी ही प्यारी हैं जितनी कि अपनी। मैं उनके साथ अत्याचार होने की कल्पना तक से घृणा करता हूँ। आजकल स्थिति खतरनाक है।'

'शेख साहब, मैं आपकी मेहरबानी के लिए आपका आभारी हूँ।'

'मैंने अपनी पत्नी से कहा था कि सम्भव है कि आप यही कहेंगे। लेकिन वह चाहती थी कि मैं आपको स्थिति से अवगत करा दूं। और मुझे यह बताकर खुशी महसूस हुई है। आपके व्यवहार के लिए मैं आपको कसूरवार नहीं ठहराता।'

'मुझे प्रसन्नता है, आप मेरी बात समझ रहे हैं।'

'डाक्टर जी, पिछले सैंतीस साल से हम एक दूसरे को जानते हैं। मैंने आपके बच्चों को अपने बच्चों के साथ ही बड़ा होते देखा है। मेरी लड़कियाँ आपकी लड़कियों को अपनी बहनों के समान समझती हैं। लेकिन फिर भी हो सकता है······'

'मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी लड़कियाँ भी उन्हें वैसा ही समझती हैं।'

'मैं चाहता हूँ यह सब न हो, लेकिन सिर्फ़ चाहने से ही तकलीफ नहीं रुक जाती। मुझे बहुत दुख होता है। दरअसल बहुत दुख है।'

इस व्यक्ति की निष्ठा से मैं बहुत प्रभावित हुआ। यहाँ तक कि सोहन भी इस पर सन्देह नहीं कर सकता था, ऐसा मेरा विचार था, लेकिन शायद ऐसा न होता। क्या उसने मुझे यह नहीं बतलाया था कि ये मुसलमान कितने चालाक होते हैं। और किस प्रकार मुहम्मद के नाम पर वे पाकिस्तान बनाने की कोशिश नहीं कर रहे थे ?

'बड़ी मेहरबानी, शेख साहब', पिता जी बोले, 'मैं आपका हमेशा विश्वास करता हूँ। लेकिन············'

'मैं आपका मतलब समझता हूँ डाक्टर जी ! आपको इसे तफसील से सम-

झाने की जरूरत नहीं है। हमें इस बारे में अब और ज्यादा बातें नहीं करनी चाहिए।'

पिताजी, जिनकी सूझ-बूझ वास्तव में प्रशंसनीय थी, वह सोच रहे थे कि क्या कहें। मेरा विचार है कि उनके सामने भी वही कठिनाई थी, आया कि शेख साहब का विश्वास करें या न करें। कुछ देर शान्त रहने के पश्चात् शेख साहब ने फिर कहना शुरू किया।

'देखिये डाक्टर जी, अगर आप मुझे ज्यादा नहीं करने देते तो मेरा ख्याल है कम से कम एक काम तो करने की जरूर इजाजत देंगे जिसमें मुझे बहुत तसल्ली होगी। आपको मालूम होगा कि मेरे यहाँ घर का कुआँ है और मैं चाहता हूँ कि आप भी अपना पानी वहीं से इस्तेमाल करें।'

कितना रद्दी विचार है, मैं सोच रहा था। मुसलमान पानी की टंकी को दूषित कर देते! लेकिन वह तो हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के लिए समान रूप से विषाक्त होता।

'पानी की मुझे क्यों आवश्यकता पड़ेगी?' पिताजी ने पूछा।

'मुमकिन है कि आपके घर में आग लगा दी जाए और अगर आपके पास पानी काफी मिकदार में होगा तभी आप अपने घर का कुछ हिस्सा बचा सकेंगे। आप जानते हैं कि आपके बुलाने पर फायर ब्रिगेड तो आएगी नहीं।'

'मेरा विचार है कि नहीं आयेगी। और कम से कम एक हिन्दू के घर को बचाने के लिए तो कदापि नहीं।'

'खैर, तो फिर मेरा ख्याल है', शेख साहब बोलते रहे, 'मैं गली के नीचे अपने हौज से आपकी पाईप लाईन मिला दूँगा। मुझे मालूम है आप कहा करते हैं कि आपके यहाँ पानी का दबाव बहुत कम है। लेकिन यह इन्तजाम अचानक आने वाले खतरे का सामना करने के लिए मुकम्मिल नहीं होगा। अगर आपके घर में आग लग गई तो मैं कोई मोटा नल आपकी मदद के लिए अपने घर से नहीं मिला सकूँगा, क्योंकि उस वक्त मैं गद्दार समझा जाऊँगा और ऐसे वाकयात में मेरी हालत आपसे बेहतर नहीं रहेगी।'

मैं अब और हतप्रभ हो गया तथा घबरा गया। क्योंकि इसका तात्पर्य हमारे जीवन के साथ खिलवाड़ करना था। यदि पानी की टंकी को विषाक्त न भी किया गया तो शेख साहब तो अपने हौज में विष मिला ही सकते थे। यह भी ठीक उतना

ही हानिप्रद था, जितना कि उनके घर में जाना।

'इसके लिए आपकी बड़ी कृपा, शेख साहब। मैं इस सम्बन्ध में अपनी पत्नी से परामर्श करूँगा।'

'अच्छा, डाक्टर जी, मैं अब चलता हूँ।'

इसके पश्चात् मैंने सुना कि पिताजी उन्हें दर्वाजे तक पहुँचाने के लिए गए। यह सोहन की तुलना में एक ऐसी विपरीत भेंट थी कि वास्तव में मैं इसका अर्थ ढूँढने में बिलकुल खो गया। मैं भूल गया कि मैं पर्दे के पीछे छिपा हुआ हूँ और जल्दी ही मेरे पिताजी ने मुझे ढूँढ लिया।

'तुमने सब कुछ सुना ?'

'हाँ, डैडी जी !'

'और तुम्हारा इस सम्बन्ध में क्या विचार है ?'

यही हमेशा उनका तरीका था। वह हमेशा सबके विचारों का आदर करते थे। हम दोनों सोफे पर बैठ गए।

'मैं नहीं समझता कि हमें वहाँ जाना चाहिए,' मैंने उन्हें बतलाया 'मैं यहाँ जल जाना अधिक पसन्द करूँगा और अच्छा तो यह रहेगा कि हम उनका पानी भी न लें। यदि घर को जलना ही है तो जल जाए लेकिन उनका पानी पीकर हमें अपने जीवन को संकट में नहीं डालना चाहिए।'

'मैं भी बेटा, यही सोचता हूँ, लेकिन काश, कहीं तुम उनका मुख देख सकते। वह सच्चा और निष्कपट प्रतीत होता था।' यह मैं उसकी आवाज को सुनकर समझ गया था लेकिन फिर भी·········'फिर भी ?' उन्होंने कहा, 'यही तो सवाल है। है न ?'

हम बिना एक दूसरे से कुछ भी कहे चुपचाप काफी देर तक बैठे रहे। अन्त में पिताजी बोले, 'मैं चलूँ और तुम्हारी माँ से इस सम्बन्ध में बातचीत करूँ। मुझे सम्पत्ति की इतनी अधिक चिन्ता नहीं है जितनी कि शेख साहब के विचारों को आघात पहुँचाने की है। तुम केवल उन्हें एक अच्छे पड़ौसी के रूप में ही जानते हो। लेकिन मेरे लिए वे गुरू हैं। मैंने अपनी कॉलेज की शिक्षा उन्हीं के साथ प्रारम्भ की थी। पिछले सैंतीस वर्षों से मैं उन्हें जानता हूं और पिता के समान मानता हूँ। तुम नहीं समझ सकते कि उनके लिए मेरे मन में कितना आदर है। आज भी वह उन गिने-चुने मुसलमानों में हैं जो अखण्ड भारत में विश्वास करते हैं और

वास्तव में वह आजकल भी शान्ति के लिए तथा एक राष्ट्र के लिए पत्र छापते रहते हैं।'

वह मुझे उसी प्रकार वहाँ बैठा हुआ छोड़कर चले गए, जिस प्रकार सुबह सोहन चला गया था। कितनी अजीब स्थिति थी—'विश्वास करना चाहिए या नहीं!' मुझे प्रसन्नता है कि निर्णय मेरे पक्ष में न होकर पिताजी के पक्ष में ही रहा। मैं इस सम्बन्ध में गलती पर था। उन्होंने हमें सोने के कमरे में बुलाया और मेरी बहनों को घटनाओं के सम्बन्ध में बतलाकर पूछने लगे, 'क्या करना चाहिए ?' इस सम्बन्ध में वह हमारा मत जानना चाहते थे।

मेरी सबसे छोटी बहन ऊषा को कुछ भी कहना नहीं था। ओम् भाई, शेख साहब का विश्वास करने के निश्चित रूप से विरोधी थे। वह घर की सुरक्षा के लिए एक व्यक्ति के गलत विचारों को कार्यरूप देने की बजाय उन्हें नाराज करना श्रेयस्कर समझते थे। निम्मी बहन ने उस व्यक्ति के बातचीत करने के ढंग पर टिप्पणी की और उनके निष्ठा रूपी ढोंग की खिल्ली उड़ाई। हाँ! निम्मी बहन का विचार अवश्य इसके विपरीत रहा।

'डैडी जी, हमें किसी का तो विश्वास करना ही पड़ेगा। यदि हममें विश्वास न रहा तो फिर हमारा क्या बनेगा ? बुद्धिमान् व्यक्ति समय की गति से न प्रभावित होकर अपने मस्तिष्क और धैर्य से काम लेते हैं। यह हमारी परीक्षा का समय है। मैं मरने से नहीं डरती और मेरी मृत्यु तो विषाक्त जल पीकर भी उसी प्रकार होगी जैसे आत्महत्या करने से।'

मैंने सोचा उसका कथन बहुत प्रभावपूर्ण तथा उचित है। यह हमारी परीक्षा थी जिसमें हमें पूर्णता के साथ उत्तीर्ण होना था। इसी बीच पिताजी बोले, 'तुम्हारी माँ का भी यही विचार है जो निम्मी का है। मैं अभी तटस्थ रहना चाहता हूँ और यह प्रश्न एक बार तुम सब के सामने रखता हूँ जिससे मुझे पता चल जाए कि तुममें से हरएक ने इस पर अपने विचार व्यक्त कर दिए हैं। मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में प्रभावित नहीं करना चाहता तथा अंतिम रूप से कार्य करने का उत्तरदायित्व मेरा रहेगा। फिर भी मैं तुम सबके विचारों को जानना चाहता हूँ'। 'हाँ या ना ?' उन्होंने पहले मुझ से पूछा।

'मेरा विचार है निम्मी बहन का कथन ही ठीक है।'

ओम भैया विचारों में खो गए 'मेरा तो अब भी यही विचार है कि हमें

ऐसा नहीं करना चाहिए। लेकिन मैं समझता हूँ निम्मी का कथन भी काफी प्रबल है। मैं कुछ ठीक नहीं कह सकता।'

उम्मी बहन अब विचार मग्न हो गई थीं और उसके उत्तर के लिए हमें कुछ प्रतीक्षा करनी पड़ी। अन्त में वह एक ही सांस में कह गई, मैं शेख साहब के विचार को मानने के लिए तैयार हूँ।'

इसके बाद पिताजी ने ओम् से पूछा, 'क्या अब भी तुम समझते हो कि तुम्हारे विचार ठीक हैं।' 'नहीं, मैं नहीं समझता। यह तो साफ ही है कि आप लोग इस बात को पूरा करेंगे', ओम् भाई की आवाज में कुछ शिथिलता आ गई थी तथा ऐसा प्रतीत होता था कि अपने ऊंचे विचारों को छोड़ने के लिए उन्होंने काफी साहस संगृहीत किया था।

'मेरे विचार से यही उचित निर्णय है', माँ बोली, 'यह जुआ तो अवश्य है लेकिन दूसरी अवस्था में तो सभी कुछ समाप्त होने की आशंका है।'

'तो फिर सब तैयार हैं', पिताजी बोले, 'मैं शेख साहब के पास जाऊंगा और उन्हें बतला दूँगा।'

'ओम् भाई को भी अपने साथ लेते जाइए', मैं बिना विचारे ही बोल पड़ा। मैंने अपनी स्वीकृति इसलिए दे दी थी कि इसमें एक परीक्षा होनी थी और इसका सम्बन्ध परिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियों से था। 'इसकी चिन्ता मत करो', पिताजी ने मुझसे कहा, 'जो कुछ होना है वह तो होकर ही रहेगा और जब हम उनका पानी तक पीने जा रहे हैं ....'और वह चले गए।

वह इतना समय बीतने पर लौटे कि लगता था खत्म ही नहीं होगा। 'हमें कल रात को पाइप लाइन फिट करा लेनी है जो हिन्दू मजदूरों के द्वारा लगाई जाएगी और इस सम्बन्ध में अपने हिन्दू तथा सिक्ख पड़ोसियों को कुछ भी बतलाना उचित नहीं समझता। हम जानते हैं कि इस सम्बन्ध में वे क्या सोचेंगे ? अब मैं इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक दूसरे विषय पर बात करना चाहता हूँ। मैंने तुम्हें कल रात बतलाया था कि मेरे पास एक योजना है। देखता हूँ तुम्हारी उसके बारे में क्या राय है ?

'हम सब बिशनदास के घर चले जाएँगे क्योंकि वह सबसे अधिक बीच में स्थित है तथा वहाँ पास-पड़ौस के सभी हिन्दू-सिक्ख परिवार आसानी से पहुँच सकते हैं। अपने परिवार के लिए हमें एक भारी फौलाद का दर्वाजा बनवाना पड़ेगा

तथा उस पर दीवार के रंग जैसा ही रोगन कराकर दीवार में फिट करा देना होगा और अगर रात को इस पर अच्छी मेहनत कर ली गई तो भीड़ के समूह को सम्भव है यह न दिखलाई दे। जैसे ही हम बिशनदास के घर पहुँच जाएँगे हम उसे अन्दर से बन्द करके ताला लगा लेंगे और फिर यदि आक्रमणकारियों ने उसे ढूँढ भी लिया तो इसे तोड़ना उनके लिए असम्भव होगा।

सबने इसे सुनकर सन्तोष की साँस ली और वह सर्वसम्मति से एक अच्छी योजना समझी गई।

'अब कठिनाई यह है' पिताजी बोले, फौलाद का दरवाजा कहाँ मिलेगा। बिशनदास ने मुझे बतलाया था कि वह एक विश्वसनीय फर्म को जानते हैं जिसे यह काम करने के लिए सौंपा जा सकता है। अभी तक हमें कोई ऐसा तरीका नहीं मिला जिससे चुपचाप दरवाजा फिट हो जाए।' तब इस पर विस्तार से विचार हुआ कि दरवाजा कैसे लगवाया जाय।

'इस योजना को हमें बिल्कुल गुप्त रखना चाहिए। नहीं तो इस से कोई लाभ नहीं होगा' माताजी ने कहा।

जब रात को मैं सोने के लिए बिस्तर पर लेटा तो दिन में इतना कुछ हो गया था कि मैं काफी रात तक कभी शेख साहब के, कभी बिशनदास, चाचाजी, सोहन तथा कभी निम्मी के बारे में ही सोचता रहा। मै सोहन के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था क्योंकि मेरे लिए वह कोई बाहरी आदमी नहीं था।

अगले दिन प्रातःकाल मै जल्दी ही उठ गया और सोहन ने भी मुझे निराश नहीं किया। मैंने दरवाजे पर उसकी धीरे से दी गई थपकी सुनी और तुरन्त दरवाजा खोल दिया। 'अन्दर आओ, सोहन ! तुमसे मिलकर मुझे वास्तव में बड़ी प्रसन्नता हुई। इस बार बजाय मेरे जल्दी दिखलाने के वह ही दिन की घटनाओं को सुनने के लिए अधिक व्यग्र था। मैंने उसे सब कुछ बतला दिया।

काफी देर तक वह सोचता रहा और अन्त में बोला, 'यह सभी कुछ वेद, कितनी अधिक भाग्य के भरोसे की बात है, कितना अधिक अनुपयुक्त यह सब कुछ है। एक ओर तो तुम मुसलमानों के विरुद्ध अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करने में संलग्न हो और दूसरी ओर अपने जीवन को पूर्ण रूपेण एक मुसलमान के हाथ में सौंपकर उसकी दया पर आश्रित हो जाना चाहते हो। तुम मुझे विश्वास के सम्बन्ध में बतलाते हो लेकिन यह नहीं देखते, यह धर्म का बिगुल है, जो कि मुस्लिम लीग के नेताओं

द्वारा बजाया गया है ।'

'रुक जाओ, सोहन । ऐसा मत कहो । मैं अपना भ्रम नहीं दूर करना चाहता । तुम इसे भाग्यवाद कहते हो । हमारे घर में तुम भाग्यवादिता के प्रसार की बात करते हो । लेकिन इतिहास क्या कहता है ।'

'वेद संक्षेप में यही कि जीवन के समान ही इतिहास भी भाग्य के क्रूर हाथों में खेलने वाली दुखद घटनाओं का संग्रह मात्र है । उदाहरण के लिए अंगरेजों के इतिहास को ही ले लो । तुम और मैं दोनों ही उनकी प्रशंसा करते हैं । उनकी जाति को पृथ्वी पर एक महान् जाति समझते हैं तथा कभी-कभी तो अपनी ही जाति के बन्धुओं से भी ऊपर उन्हें स्थान देते हैं । इन्हीं चालबाज अंगरेजों को द्वितीय महा-युद्ध की समाप्ति तक जब कि अनुदार दल की पराजय हुई यह पूर्ण निश्चय था कि इन्होंने अपने ताश की चाल पूर्ण योग्यता के साथ चली है । और अन्त में इनकी 'फूट डालो और शासन करो' अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई । वह विश्व को यह दिखलाना चाहते थे कि हम लोग प्रशासन करने में कितने अयोग्य है । उस समय भी उन्होंने भ्रान्त धारणा बनाई । क्या इस तथ्य के बारे में तुम नहीं सोचते ? क्या वह भाग्य का खेल नहीं था ?'

'यह तो मैं भी भली प्रकार जानता हूँ ।'

'हाँ, वे गांधीजी तथा काँग्रेस के महत्त्व को देखना भूल गए । वास्तव में वहाँ मेरे और तुम्हारे सोचने से भी अधिक मूर्ख प्रमाणित हुए । मैं गांधीजी के सम्बन्ध में सोचता रहा और सम्भवतः उनके सम्बन्ध में कल की तुलना में मेरे विचार आज अधिक स्पष्ट है । 'देखो' वह कहता रहा, 'गांधीजी सम्भवतः इतिहासकार अधिक हैं । वह भाग्य और विरोधी तत्त्वों की कल्पना नहीं करते ।'

'लेकिन इतिहास के सम्बन्ध में तुम्हारे सारे साहसिक प्रवचन को सुनने के उपरान्त भी मैं नहीं समझता कि हमें आदर्शों का अनुसरण क्यों नहीं करना चाहिए ?'

'शायद यही सब कुछ हमारे पास है और ऐसा कहकर मैं तुम्हारी बहन निम्मी के कथन से कुछ भी कम नहीं कर रहा हूँ । मैं उसकी बहुत प्रशंसा करता हूँ और मेरा विचार है कि तुम्हारे पिताजी ने उचित ही किया ।'

उसी समय मैंने निश्चित रूप से थपकी की आवाज सुनी जो, मुझे विश्वास था, पिताजी की थी । मैं एक क्षण के लिए डर गया, लेकिन अब सोहन मुझ से एक

कदम के फासले पर था।

'वह समझ जायेंगे, वेद !'

'मैंने द्वार खोल दिया, 'गुड मॉनिंग, डेडीजी' और वह अन्दर आ गए।

'मैं तुम से मिलना चाहता था।' तुम कल भी यहाँ थे। क्यों ठीक है न ?

'जी हाँ, मैं यहीं था।'

'पिताजी की इस जिज्ञासायुक्त शान्त आवाज को सुनकर मुझे तो पसीना आ गया। सोहन को अपने पास बुलाकर मैंने सारे परिवार के भविष्य को झंझट तथा कठिनाई में डाल दिया था। यदि पिताजी का यह कहना ठीक था कि संघ की बहुत-सी गतिविधियों के व्यौरे पुलिस द्वारा प्राप्त करके मुस्लिम-लीग के नेताओं को दे दिए गए हैं, जैसा सोहन ने भी स्वीकार किया था; तब तो संघ के एक सदस्य को घर बुलाना मूर्खतापूर्ण ही था। मैं नहीं जानता था मेरा नाम भी उन रजिस्टरों में आ गया था या नहीं।

'मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि वेद को तुमसे बात करने का अवसर मिला' वे बोले, 'मैं चाहता हूँ मेरे सभी बच्चों को इसका ज्ञान रहे कि क्या हो रहा है। तभी तो वे किसी भी अचानक आने वाले संकट का साहस के साथ सामना करेंगे।'

मेरे पिताजी काफी देर तक बातें करते रहे और सोहन ने भी स्पष्ट-रूप से अपनी आशंकाओं तथा इतिहास के दर्शन के सम्बन्ध में कहा। मेरे पिताजी तथा उसके विचारों में काफी कुछ समानता थी जिसको देखकर मैं प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। मुझे यह देखकर सन्तोष हुआ कि इन दिनों में भी कुछ के विचारों में समानता है। 'वह एक अच्छा लड़का है,' पिताजी मुझसे बोले, 'बहुत योग्य, उसके रूप में तुम्हें एक अच्छा मित्र मिला है।'

बिगुल बजा | १३

१ मार्च की रात को कुछ विश्वसनीय हिन्दू मज़दूरों को, जिन्होंने हमारे घर को बनवाने में सहायता दी थी, बुलाया गया तथा शेख साहब के घर तक पाईप लाइन डाल दी गई। इस कार्य को रात के अन्धेरे में करवाकर छिपाने का काफी प्रयत्न किया गया, लेकिन काम ही कुछ इस ढंग का था तथा रात भी काफ़ी अन्धेरी न थी जिस कारण पड़ोसियों की निद्रा में विघ्न उत्पन्न अवश्य हुआ और वह समझ गए कि कुछ न कुछ हो रहा है। सम्भवतः वह समझ गए कि कुछ न कुछ खराबी हमारे पीने के नल में हो गई है। जो काम किया जा रहा था वह ऐसा गुप्त था कि इस सम्बन्ध में किसी का ध्यान भी नहीं जा सकता था और कोई भी इस पर शक नहीं कर सकता था। उस रात के बाद हमने शेख साहब का पानी पीना शुरू कर दिया और अपनी घबराहट तथा उद्वेग का भी आनन्द लेने लगे।

वही मजदूर दो मार्च की रात को फौलाद का दरवाजा लगाने के लिए रोक लिये गए जो एक बन्द मोटर गाड़ी में चोरी से लाया गया था, लेकिन उस दिन मजदूर आए ही नहीं, क्योंकि उसी दिन कांग्रेस तथा यूनियनिस्ट पार्टी के सम्मिलित खिजर मन्त्रिमण्डल ने अकस्मात् ही त्यागपत्र दे दिया था।

खिजर जो पंजाब के प्रधान मन्त्री थे, हिन्दू तथा मुसलमानों दोनों में समा रूप से बदनाम हो चुके थे। मुसलमान उन्हें द्रोही समझते थे क्योंकि वह मुस्लिम लीग की सभी माँगें पूरी नहीं करते थे तथा अमुस्लिम उनके द्वारा कोई निर्णायक कदम न लिये जाने के कारण अप्रसन्न थे। वह ऐसे व्यक्ति थे जो दोनों विरोधी दलों को प्रसन्न रखना चाहते थे जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने दोनों ही को अप्रसन्न कर दिया।

अगले दिन तीन मार्च को सभी गैर मुस्लिम पार्टियों—कांग्रेस, हिन्दू तथा सिक्खों—ने लाहौर के असेम्बली हाल में एक सभा की। वे जानते थे जिस तरह वे बि मुस्लिम लीग की सहायता के मन्त्रिमण्डल नहीं बना सकते उसी प्रकार मुस्लिम लीग

भी उनकी सहायता के बिना मन्त्रिमण्डल नहीं बना सकती थी। यद्यपि मुस्लिम लीग के मन्त्रिमण्डल की सम्भावना से हारकर उन्होंने अपना समर्थन देने का निश्चय कर लिया था।

जब वे यह निर्णय कर रहे थे, उसी समय बाहर मुस्लिम लीग द्वारा प्रेरित मुसलमानों की एक भीड़ चिल्ला रही थी तथा नारे लगा रही थी कि यदि आवश्यकता पड़ी तो हम शक्ति का प्रयोग करके भी पाकिस्तान ले लेंगे। उनका मतलब स्पष्ट था। यदि काँग्रेस पार्टी मुस्लिम लीग का समर्थन नहीं करेगी तो भीड़ सारा इन्तजाम अपने हाथ में ले लेगी। किन्तु काँग्रेस पार्टी के लिए यदि तत्कालीन स्थिति भयप्रद थी तो मुस्लिम लीग की सरकार भी कुछ कम आशंकारहित नहीं थी। अतः गैर-मुस्लिम पार्टियों ने संगठित रहने का निश्चय किया तथा एक दृढ़ नीति अपनाने की इच्छा व्यक्त की।

अकाली सिक्ख नेता तारासिंह असेम्बली हाल के बाहर आये तथा अपनी कृपाण निकालकर (जो सिक्खों के संघटन और शक्ति का प्रतीक है) भीड़ को बदले में ललकारते हुए बोले, 'काट के देंगे अपनी जान, मगर नहीं देंगे पाकिस्तान' अर्थात् चाहे हमारी जान चली जाए लेकिन हम पाकिस्तान की स्वीकृति कभी नहीं देंगे।

यद्यपि तारासिंह का क्रोध उचित था किन्तु उनके शब्दों का चयन ठीक नहीं था और यदि उस समय पुलिस हस्तक्षेप नहीं करती तो भीड़ के जोश के कारण कोई घृणित घटना घट जाती। लेकिन मौके पर पुलिस ने मदद की तथा भीड़ को तितर-बितर कर दिया।

उसी दिन शाम को गैर मुसलमानों की एक सभा कपूरथला हाउस में हुई और मैंने पिताजी से उसमें जाने की अनुमति माँगी। लेकिन उन्होंने कोई सीधा उत्तर नहीं दिया। 'जलूसों पर पाबन्दी है,' वह बोले, 'सभाओं पर प्रतिबन्ध है, तथा नेताओं का जनता में वक्तव्य देना गैर कानूनी है। यह सभा गैर कानूनी है तथा कुछ भी हो सकता है।' वह कहते रहे 'सम्भव है मुस्लिम पुलिस की लाठियाँ हिन्दुओं की सभा पर ही टूट पड़ें। गोली भी चल सकती है और उस समय कैसे बचाव होगा ?' लेकिन इस सबके उपरान्त भी उन्होंने 'नहीं' नहीं कहा, 'अपने बारे में तनिक सोचो', उन्होंने विशेष ढंग से कहा।

लेकिन मैं मास्टर तारासिंह जैसे नेताओं को सुनने के लिए इतना अधिक बेचैन

हो गया था कि वहाँ जाने की उत्सुकता को नहीं रोक सका। शाम को सोहन मेरे पास आ गया और हम दोनों साथ-साथ चल पड़े। माँ ने दरवाजे पर हमें रोका। दबी-सी आवाज में उन्होंने हमें 'नमस्ते' कहा और फिर हम चल पड़े। हमारा कपूरथला हाउस को पैदल जाना ही आशंकापूर्ण था। लेकिन सायंकालीन ठण्डी हवा ने कुछ प्रफुल्लता प्रदान की। मुझे तारासिंह का भाषण सुनने की याद आने मात्र से रोमांच हो आया। वे पंजाब में अत्यधिक निडर गैरमुस्लिम नेता के रूप में प्रख्यात थे।

कपूरथला हाउस का हाल बिल्कुल भर चुका था, फिर भी श्रोता आए चले जा रहे थे। यह क्रम उस समय तक चलता रहा जब तक कि कंधे से कंधा न भिड़ने लगा। इसके पश्चात् नेता लोग आए। मास्टर तारासिंह जैसे नेता के साथ, जो खून खराबी को रोकने के लिए हिंसात्मक उपायों के प्रयोग को भी उचित समझते थे, एक ही मंच पर काँग्रेस के प्रतिनिधियों का आना ही इस बात का प्रमाण था कि सख्त कदम उठाने वाले लोगों की विजय हो गई थी। और यह इस बात का सूचक था कि अगर मुसलमानों ने शुरूआत की तो हिन्दू तथा सिख भी जवाबी कार्यवाही करेंगे। लेकिन सामयिक प्रश्न यह था कि वे प्रत्युत्तर कैसे देंगे। निस्सन्देह हर एक सिख की पीठ पर एक कृपाण लटकी रहती थी। लेकिन वे उन बमों तथा बन्दूकों की तुलना में, जो मुसलमानों को मुफ्त बाँटी गई थीं, नगण्य थीं।

ज्ञानी करतारसिंह जैसे व्यक्ति भी जोश के साथ बोले तथा उपस्थित जन-समुदाय ने भी समर्थन में नारे लगाए। ठीक समयानुकूल स्वर मिलाते हुए वह भी गर्जे, उत्साह-वर्धन किया तथा नारे आदि लगाए। उनकी आवाजें चारों ओर की दीवारों से टकरा कर गूँज गईं तथा उनकी वे आवाजें और भी अधिक तेजी से प्रतिध्वनित होकर उन्हीं के पास आईं।

लेकिन तारासिंह के आगे आने पर भीड़ इस प्रकार शान्त हो गई जैसे रोशनी पर किसी ने काला कम्बल डाल दिया हो तथा वातावरण शान्त तथा गम्भीर हो गया जिसमें लोगों के तेजी से साँस लेने की ध्वनि आ रही थी। तारासिंह ने अपने जोश से भरे वक्तव्य के साथ प्रस्ताव उपस्थित किया :

'अरे, हिन्दुओ और सिक्खो ! जापानियों तथा नाजियों के समान ही मरने के लिए तैयार हो जाओ। हमारी जन्मभूमि आज खून माँग रही है और हम खून से ही इसकी प्यास बुझाएँगे। मुगलिस्तान के टुकड़े करने के बाद हम पाकिस्तान को

भी चूर-चूर कर देंगे। मैं बहुत दिन से समझ रहा हूँ कि प्रान्त में मुसीबत के बादल मँडरा रहे हैं तथा शैतानियत का वातावरण फैला हुआ है। इसी कारण मैंने अकाली दल का पुनर्गठन प्रारम्भ किया है। यदि हम अंगरेजों के हाथों से सरकार छीन सकते हैं तो मुसलमानों के हाथों से भी सरकार छीनने से हमें कोई नहीं रोक सकता। मुस्लिम लीग का कफ़न और अस्थिपंजर हमारे पास है और हम उसे टुकड़े-टकड़े कर देंगे। यहाँ से यह पवित्र प्रतिज्ञा करके जाओ कि हम लीग को जिन्दा नहीं रहने देंगे। विश्व सदा, अल्पसंख्यकों द्वारा प्रशासित हुआ है। मुसलमानों ने हिन्दुओं से साम्राज्य छीना और मुसलमानों से छीनकर सिक्खों ने उस पर कब्जा जमाया और सिख अब भी उन पर शासन करेंगे। हम अब भी उन पर शासन करेंगे और लड़कर के सरकार पर कब्जा जमाएँगे। मैंने बिगुल बजा दिया है। मुस्लिम लीग को खत्म कर डालो।'

तारासिंह के द्वारा फैलाई गई यह घृणा एक संक्रामक रोग के समान फैली और इसने शुरू से आखिर तक सब को प्रभावित कर दिया। लोगों ने जोर से भींच-भींच कर मुक्के दिखलाए। लोग साथ-साथ सड़क पर निकले और अपने संघटन के द्वारा सब प्रतिबन्धों को इन्होंने तोड़ दिया। मैंने सोचा, क्या यही लोग थे जिन्हें मुस्लिम लीग दब्बू तथा कायर कहती थी। जो बिगुल मुस्लिम लीग ने भी कुछ महीने पहले बजाया था, ठीक वैसा ही बिगुल अब मास्टर तारासिंह ने भी बजा दिया। लेकिन सिक्खों तथा हिन्दुओं के दुर्भाग्य से यह केवल खाली शोर मात्र था जिसके पीछे किसी भी प्रकार की तैयारी अथवा शक्ति नहीं थी। यह दुर्भाग्य था कि लोगों की भावनाओं को इतना अधिक भड़काया गया क्योंकि जोशीली भीड़ कुछ नहीं कर सकती थी और केवल काट-पीट ही दी जाती और चाहे जितना शक्ति और साहस उसमें होता लेकिन सशस्त्र भीड़ के सामने नगण्य ही था।

घूमने पर कुछ शान्ति अनुभव कर और उस क्षुब्ध वातावरण से अलग होकर कुछ शान्त चित्त होने पर इन भाषणों से होने वाले परिणाम हमें बहुत दूर नहीं दिखलाई दिए। हम जानते थे कि तारासिंह ने गलती की है, यद्यपि यह खून-खराबी तो उनके न बोलने पर भी होती ही।

मार्च का तीसरा दिन भी बीत गया, लेकिन लौह द्वार अभी तक नहीं लगा था और हम अपने घर में रहते हुए अत्यधिक घबरा रहे थे। हम अन्य हिन्दू परिवारों में मिलने के लिए उत्सुक थे। चार तारीख की शाम को हम चाचा जी के घर गए

लेकिन उनका वहाँ कहीं भी पता नहीं था।

उस समय हम वापस घर आने के लिए बिलकुल निरुत्साहित हो गए थे। फिर अँधेरा हो गया और हम वापस घर जाने का खतरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं थे। प्रतीक्षा करते हुए हमारा दिल धक्-धक् कर रहा था। नानाजी की घड़ी टिक-टिक कर रही थी। चिमनियाँ, जो पहले मनोहर और सुन्दर लगती थीं, अब जर्जरित-सी अवस्था में प्रतीत होती थीं। सवा दस हो गए, साढ़े दस बज गए और फिर अचानक ही यह क्या हुआ ? खून का प्यासा तथा लूट के लिए उत्सुक जलूस हमारे निकट होता चला आ रहा था। उनकी आवाजें गूँजती थीं और गलियों में उनकी प्रतिध्वनि होती थी।

आग के सम्बन्ध में मुझे कैसे बतलाया गया था ? एक पीले रंग की लौ उठ रही थी ? धुँआँ मेरी नाक में भर गया था और मुझे दादर की याद आ गई थी। मेरे पिताजी और भाई अब तक छज्जे पर पहुँच गए थे लेकिन जल्दी ही वह नीचे उतर आए।

'मेरे विचार से अच्छा होता यदि हम इस घर को छोड़ दें। आग यहाँ से बहुत दूर नहीं है।'

हम सब चाचाजी के बाग में नौकरों के घरों की ओर चले गए जहाँ हम क्वार्टर्स की पिछली ओर दीवार के बीच में छिप गए। आने वाले दिनों की कल्पना करके मैंने सुनना बन्द कर दिया। कोई भी भिन्न बात सुनने के लिए नहीं थी, कोई भी नई चीज सूँघने के लिए नहीं थी और मुझे कुछ भी नवीनता अनुभव नहीं होती थी। मेरी सांस तेजी से चलने लगी थी और प्रतीत होता था जैसे दिल धड़कना बन्द हो गया है। क्या जड़ता थी ? अथवा इतनी घटनाएँ घट चुकी थीं कि उन्हें अलग-अलग करना कठिन था।

मुसलमान कौन थे ? उनके लिए धर्म का अर्थ था अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह छोड़ देना, गाँवों में मैंने उन्हें कई बार साथ-साथ खाते हुए देखा था तथा एक ही बर्तन से साथ-साथ पीते हुए देखा था। यह उनके मातृत्व की भावना की चरम सीमा थी। उनकी आँखें दिन में पाँच बार मक्का की ओर उठती थीं और घुटनों के बल बैठकर मुहम्मद साहब की प्रार्थना करते थे। वे सब कुरान की शपथ लेते थे।

लेकिन हिन्दुओं का कोई एक अवतार, कोई एक विश्वास तथा कोई एक

धार्मिक पवित्र पुस्तक, एक स्थान पर संघटित करने के लिए नहीं थी। हमारे विश्वास भी देश की जलवायु, भौगोलिक स्थिति तथा सभ्यता के समान ही भिन्नता लिये हुए थे। व्यक्तिगत रूप से हम मुहम्मद अथवा ईसा मसीह की भी अवतार के रूप में पूजा कर सकते हैं और फिर भी हम हिन्दू ही रहेंगे। यही हिन्दू धर्म की शक्ति और गर्व है। क्योंकि इसने सभी धर्मों को सहन किया है तथा सभी विश्वासों का आलिंगन किया है। लेकिन मुसलमानों ने कभी भिन्नता को जाना ही नहीं। वे एक ईश्वर, एक पुस्तक तथा एक ही अवतार के द्वारा बँधे हुए हैं। धर्म परिवर्तन और धर्म के नाम पर मर मिटना ही उनकी कहानी तथा उनका विश्वास है।

क्या मैं वास्तव में हिन्दू था ? मैंने अपने से पूछा, 'बचपन में ईसाइयत के प्रेम से इतना प्रभावित रहा जितना अधिक से अधिक कोई बच्चा हो सकता था। तब से पिंडी में तथा संघ में मैंने भजनों तथा श्लोकों का पाठ किया था। आदर्शों के महत्त्व पर विचार-विमर्श किया था तथा उन पर पक्का रहने का प्रयास किया था। लेकिन यह आदर्श और महल उस समाज के थे जहाँ हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ रहते थे। कन्धे से कन्धा मिलाकर जिन्होंने देश की भूमि को जोतकर उर्वरा बनाने में योग दिया था ? फिर क्या कारण था जिसने हमें मुसलमानों से अलग कर दिया ? हमारा पुराना नौकर ज्ञानचन्द कहता था कि मुस्लिम धर्म बर्बरता और अत्याचार सिखाता है।'

'मुसलमान बच्चों को, वेद साहब, हिन्दुओं की मूर्तियाँ जलाने की बात सिखाई जाती है।' और सोहन कहता था कि पंजाब में अधिकतर मुसलमान जुलाहे, मोची, गड़रिये, कुम्हार अथवा लुहार थे और उनके विचार बड़े निम्न थे। शहरों में अधिकतर ये लोग मजदूर थे और उनमें बुराइयाँ तथा गरीबी फैली हुई थी जो और अधिक बुराइयों तथा निर्धनता को जन्म देती थीं। हमारा एक दूसरा नौकर सुखदेव, जो अभी हाल में ही गाँव से आया था, कहता था कि हिन्दुओं के घर मुसलमानों के घरों से बहुत अधिक सुन्दर और स्वच्छ रहते हैं। हिन्दू जबकि घरों में जूते नहीं लाते थे, मुसलमान उन्हें सब जगह पहने फिरते थे। उनके खाने के ढंग को वह घृणित और त्याज्य समझता था। वह चाहता था हर एक की अलग थाली होनी चाहिये थी। एक बड़े डेग में एक ही बड़े चमचे से निकालकर खाना उसे पसन्द नहीं था।

इस सबके उपरान्त भी हिन्दू और मुसलमान शताब्दियों से साथ-साथ रहते

आए थे । क्या ज्ञानचन्द उन्हें हमेशा क्रूर तथा अत्याचारी कहता था तथा सुखदेव उन्हें घृणित और गन्दा बतलाता था ? मेरी विचार-धारा बहती रही ।

लगभग चार या पाँच बजे ऊषा के आगमन पर जब बराबर के एक तबेले में एक गाय रम्भाई तो हम वापस चाचाजी के घर आ गए । उन्होंने एक क्लान्त तथा जर्जरित मनुष्य के समान हमारा स्वागत किया और तुरन्त ही हमें आभास हो गया कि पिछले कुछ दिन की घटनाओं से उन्हें कितना अधिक आघात पहुँचा था ।

'मुझे बहुत दुख है मेरे बच्चो !' जैसे ही हमने उन्हें चारों ओर से घेरा, उन्होंने कहा, 'मुझे क्षमा करो ।'

हमारा दिल उनके लिए श्रद्धा से भर गया लेकिन हम जानते थे कि वह अकेले रहकर अपने दुख को कम कर सकते थे, अतः हम चुपचाप अपने घर चले आये ।

उस सारे दिन हम अफवाहें सुनते रहे । हिन्दू कालेज के छात्रों पर पुलिस ने निर्दयता और अन्यायपूर्वक गोली चलाई । एक अंग्रेज राज्यपाल को, जिसे हिन्दू मुसलमानों का समर्थक समझते थे, लाहौर का प्रबन्ध सौंप दिया गया । मार्शल ला घोषित कर दिया गया, कर्फ्यू लगा दिया गया, और सभी स्थानों पर झगड़े होने प्रारम्भ हो गए । सैकड़ों स्थानों पर गगनचुम्बी आग की लपटें उठनी शुरू हो गईं । स्त्री-पुरुष अपने मकानों को लुटेरों की भीड़ पर छोड़कर बाहर चले आए। पटरियों पर चलने वालों को छुरे भोंक दिए गए तथा दुकानों को लूट लिया गया ।

तभी रात आ गई और सभी चीजों पर अंधकार का गहन आवरण छा गया ।

आतंक | १४

अगले दिन प्रातःकाल ही टेलीफोन बज उठा। पाम बहन रेलवे स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रही थीं तथा उन्होंने सारी रात वहीं बैठे-बैठे ही काट दी थी।

भारत में यह रिवाज है कि लड़की पहला बच्चा अपने माता-पिता के घर जनती है। पिताजी ने काकाजी को पाम बहन के घर आने के सम्बन्ध में खतरे की चेतावनी दी थी लेकिन फिर भी वह चली आई थी। काकाजी तथा अन्य ऐसे लोगों ने, जो खतरे के स्थानों पर नहीं रहते थे, हमारे खतरे तथा हमारी कठिनाइयों को अनुभव नहीं किया। २३, अगस्त १९४६ को इलाहाबाद में तथा ७, ८, ९ नवम्बर को गढ़मुक्तेश्वर (जिला मेरठ) में होने वाले झगड़ों को उन्हें खतरे की घण्टी समझ लेना चाहिए था।

मतलब यह की स्थिति की गम्भीरता को ध्यान में न रखते हुए काकाजी ने पाम बहन को गाड़ी पर चढ़ने की स्वीकृति दे दी थी। जिस समय हमने सारी रात संरक्षण में बिताई थी उन्होंने सारी रात प्लेटफार्म पर बैठकर बिना किसी संरक्षण के काट दी थी जब की पास ही छुरेबाजी इत्यादि मारने की वारदातें हो रही थीं। पिताजी तुरन्त उसे घर लाने के लिए स्टेशन की ओर भागे। वह अत्यधिक उत्तेजित और थकी हुई मालूम पड़ रही थी किन्तु सुरक्षित थी। पिताजी पर पहले से ही छः बच्चों की व्यवस्था करने का कठिन उत्तरदायित्व था, अब पाम तथा उनके गर्भस्थ बच्चे के कारण और अधिक बढ़ गया।

अगले दिन साम्प्रदायिक झगड़े सारे पश्चिमी पंजाब में शुरू हो गए। लाहौर में दुकानों को लूटकर आग लगा दी गई। हिन्दू तथा सिखों को गुमटी, किनारी बाजार, कसेरा बाजार तथा रंग महल में मौत के घाट उतारा गया। जो लोग अब तक यह शक करते थे कि मुस्लिम लीग की कोई योजना नहीं थी, अब उन्हें भी विश्वास हो गया था, क्योंकि सारे पंजाब में जिस ढंग से झगड़े फैले वह एक समान ही था।

४ मार्च से एक दो दिन पहले तक हम लगभग बिना कुछ किए ही बैठे रहे,

लेकिन अब हमने भाग-दौड़ शुरू की। हमें लौहद्वार लगवाना पड़ा, सब कमरों की दरियाँ और कालीन समेटने पड़े; पर्दे, चित्र तथा प्रत्येक ऐसी वस्तु जिससे विलासिता का आभास होता था, सब एक कमरे में इकट्ठी कर दी गई, और मजबूत ताला लगा दिया गया। नंगे फर्श पर चलने से खटखट की तेज आवाजें होती थीं और उनके कारण हम भ्रम में पड़ जाया करते थे। सभी लोग लकड़ियों के दरवाजों आदि पर आग से बचाने वाला पेंट लगा रहे थे। इस पेंट से बड़ी तेज दुर्गन्ध निकल रही थी।

एक लौहद्वार को पीछे की दीवार में लगाती बार मिस्त्रियों के हथौड़ों के द्वार से टकराने के कारण होने वाली आवाज प्रतिध्वनित हो उठती थी। उन्होंने कड़ी मेहनत की थी। जल्दी ही अंधेरा होने लगा और भीड़ के नारों की आवाजें निकट आती हुई प्रतीत होने लगीं। आखिरकार द्वार लगा ही दिया गया और अग्नि से सुरक्षित रोगन की मोटी तह की बदबू में नए लौहद्वार पर हुए ताजा रंग की गंध भी सम्मिलित हो गई। अब मकान की पुनर्सज्जा की केवल स्मृति ही रह गई थी।

हम एक के बाद एक सब छज्जे की तरफ चले लेकिन वहाँ भी स्वच्छ ताजी हवा उपलब्ध नहीं थी। किसी चीज को तोड़-फोड़ कर जलाने की दुर्गन्ध अभी भी हवा में फैली हुई थी। घृणा के शोर तथा कभी-कभी चीखने-चिल्लाने की आवाज को दबाते हुए पिताजी ने ऊँचे स्वर में कहा, 'अब से हम सबको कपड़े पहनकर सोना चाहिए।'

'हाँ, प्यारे बच्चो', माँ बोली, 'और कपड़े बिलकुल साधारण पहनो। अपने अच्छे से अच्छे तथा जेवरात भी पहनने का कोई प्रयत्न मत करो। शायद यह घर हमें हमेशा के लिए छोड़ना पड़े और अत्यधिक मूल्यवान चीजों को साथ-साथ लिये फिरने से संकट की आशंका और बढ़ ही जाएगी।

उस रात कोई भी नहीं सोया और समय बीतने पर रात के अन्धकार में पिताजी तथा भैया बैटरी की रोशनी से इशारे करके दूसरे परिवारों के साथ बातें करते रहे। कभी वह रुक-रुक कर रोशनी फेंकते थे। कभी वे अपने विचार से आगे बढ़ने वाली भीड़ की वास्तविक स्थिति की सूचना देते। कभी खतरे की सूचना देते, लेकिन मुझे यह सब कुछ नहीं दिखलाई देता था। केवल कानों से नारों को सुनकर यह अनुमान लग जाता था कि जलूस कितनी दूर है। अन्तिम बार जब टार्च की रोशनी

आई तो हमें अपने घर को छोड़ देने की सूचना मिली।

बिना कुछ भी विलम्ब किए हम लोग नीचे उतर आए और सबके नीचे उतरने की प्रतीक्षा करते रहे और फिर हमने पूर्व योजनानुसार एक-दूसरे के हाथ पकड़ लिये। अपने बाएँ हाथ से मैंने उम्मी बहन का ठण्डा तथा शिथिल हाथ पकड़ा और दाहिनी ओर मेरी छोटी बहन ऊषा दोनों हाथों से मुझे पकड़ कर लटक गई। हम, ओम् भाई तथा पिताजी की प्रतीक्षा करने लगे, जिनके साथ अशोक था, जो अब तीन वर्ष का हो चुका था।

द्वार का रोगन अभी भी गीला ही था। हम सब उसमें से साथ-साथ निकल गए तथा उसे दूसरी ओर से बन्द करके ताला लगा दिया। इसके बाद निम्मी बहन ने पिताजी से अशोक को ले लिया तथा वह और ओम् भाई बिशनदास के छज्जे की ओर खिसक गए, जिससे चारों ओर की गति विधि पर नजर रख सकें तथा बाकी हम सभी उस कमरे की ओर चल पड़े जिसमें स्त्रियों तथा बच्चों को शरण लेनी थी। मुझे अपनी निष्क्रियता पर दुःख था और मैं सोचने लगा यदि कहीं मेरी भी आँखें होतीं तो मैं भी छिपने की बजाय छज्जे पर जाकर पिताजी के साथ ही देख-भाल करता।

चाचाजी के अहाते में नौकरों के क्वार्टरों के पीछे हम लोग बिलकुल शान्त थे जबकि वहाँ हमारे ऊपर छत तक नहीं थी। लेकिन यहाँ जहाँ एक कमरे में पचास व्यक्ति इकट्ठे थे, स्थिति बिल्कुल विपरीत थी। स्त्रियाँ चिल्ला-चिल्ला कर अपने-अपने दुर्भाग्य पर रो रही थीं। ऐसी स्थिति थी उन स्त्रियों की, जो सम्भवतः अपने पतियों या बेटों से फिर कभी न मिल पातीं। सम्भव है उनका अपहरण हो जाता। पंजाब के अन्य भागों के समान ही अन्य स्त्रियों के समान ही बेइज्जती और बलात्कार होता। हम बच्चों ने बिल्कुल शोर नहीं मचाया, लेकिन हम सबको एक कोने में छिपा दिया गया जिससे हम पर किसी की नजर न पड़े।

मेरी इच्छा थी, कोई घटना घटित हो जिससे निरन्तर रहने वाली उत्सुकता का अन्त हो। लेकिन उस रात कुछ नहीं हुआ और अगले दिन हम फिर उसी अनिश्चित स्थिति में घर वापस लौट आए।

दिन के समय भी कोई सुरक्षा नहीं थी। नारे बाजी और चीख-पुकार निरन्तर होती रही। सारे शहर में तथा पश्चिमी पंजाब में कातिलाना हमलों की अफवाहें आती रहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनमें मुसलमानों का ही पलड़ा भारी रहा

ग्रौर मुस्लिम लीग के नेता ग्रपनी योजना के पूरी होने पर ग्रपनी जीत की खुशी मना सकते थे। कुछ सिक्खों ने भी ग्रपनी विजय-कीर्ति स्थापित करने के लिए कुछ मुसलमानों को कृपाणें घोंप दी थीं, किन्तु हिन्दू हताहतों की संख्या को देखते हुए इनकी संख्या नगण्य ही थी।

ग्रब हम इस ग्रातंक से पूर्ण जीवन-क्रम के ग्रभ्यस्त हो गए थे। रेडियो पर हम खबरें सुना करते थे क्योंकि यही एकमात्र माध्यम हमारे पास रह गया था, जिसके द्वारा बाहर की दुनियाँ से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे। ठीक दोपहर के समय भी घर की सुरक्षा को छोड़ना खतरे से खाली नहीं समझा जाता था। प्रतिदिन दोपहर बाद ज्ञानचन्द मेहता ग्रन्य मेहरा परिवारों का निरीक्षण करता ग्रौर ग्राकर हमें सूचना देता कि बिना नुकसान पहुँचे एक रात ग्रौर गुजर गई। परिवार में से कोई भी स्कूल ग्रथवा दुकान इत्यादि पर नहीं जाता था। केवल पिताजी ही ग्रकेले दफ्तर जाने का साहस करते थे। वह एक डाक्टर थे ग्रौर सरकारी नौकर थे। उनके काम में कोई झगड़ों ग्रादि का विघ्न नहीं हो सकता था। जब वह चले जाते तो बार-बार एक ही प्रश्न हमारे सम्मुख ग्राता था, 'क्या वह वापस लौट भी ग्रायेंगे ?'

हमारे घर की यह हालत थी ग्रौर हमें पहले खुशी, तथा शान-शौकत का ग्रनुभव था। मैं सोचता था कि ग्रास-पास के गाँवों की क्या हालत होगी जहाँ कोई लौहद्वार नहीं थे जो उन्हें मृत्यु से बचा सकें ? हमें खबर मिली कि रावलपिंडी के ग्रास-पास के इलाके की—जो मुख्यतः मुसलमानों की बस्ती थी—हिन्दू ग्रौर सिक्ख स्त्रियों ने ग्रपने बिस्तरों, कपड़ों का तथा ईंधन का ढेर एक स्थान पर इकट्ठा किया, उसमें ग्राग लगाई तथा उसी में ग्राप भी कूद पड़ीं, क्योंकि वह इज्जत ग्रौर पवित्रता के साथ मरना चाहती थीं। उन्होंने ग्रग्नि की दुःखदायी मृत्यु को लुटेरों की भीड़ के डर की तुलना में ग्रधिक पसन्द किया ग्रौर यह विश्वास कि ग्रात्महत्या करने वाले हिन्दू को कौवे ग्रथवा गाय के रूप में पुर्नजन्म लेना पड़ता है, उन्हें ग्रपने प्राणों का त्याग करने से नहीं रोक सका।

सारा पंजाब हिल गया, प्रत्येक झटके के साथ हजारों व्यक्तियों की जानें गईं तथा लाखों व्यक्तियों के साथ विश्वासघात हुग्रा। इस धर्म-युद्ध के बिगुल की ग्रावाज के ठण्डा पड़ जाने के बहुत दिन बाद तक भी युद्ध चालू रहेंगे, क्या हिन्दू ग्रौर मुसलमान फिर कभी सौहार्द्य के साथ रह सकेंगे ? कोई ग्राशा नहीं !

इस झगड़े रूपी नर्क के समय काँग्रेसी नेताओं तथा गांधीजी की अहिंसा की बातें तथा लोगों को इस्लाम ग्रहण करने के स्थान पर मृत्यु को स्वीकार करने की सलाह बड़ी थोथी और हास्यास्पद-सी प्रतीत होती थी। अहिंसा का सिद्धान्त स्वयं गौतम बुद्ध के समान ही प्राचीन प्रतीत होता था, जो इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। लेकिन हमें तो यह वैसा ही विनाशकारी मालूम होता था जिसने औरंगजेब के काल में बलात् धर्मपरिवर्तन को बढ़ावा दिया और जिस समय बाकी सब दब्बू और कायर बने रहे।

अब ऐसा प्रतीत होता था कि जिस शक्ति ने अंग्रेजों को भारत के बाहर निकाला, वह अहिंसा नहीं थी। लेकिन जैसा सोहन बतलाता था, 'उनकी अच्छाई थी जो गांधीजी जैसे व्यक्ति को भूख से नहीं मरने देती थी। एक सभ्यता थी जो नेताओं के विशेषाधिकारों का आदर करती थी।' मैं सोचता था यदि यह उनकी मानवता न होती तो सम्भवतः वह एक अनिश्चित काल तक अहिंसक भारत पर शासन कर सकते थे। कांग्रेस में अब विश्वास हिल गया था, वह विश्वास जिसके बल पर स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी थी अब नहीं रहा था और नेताओं के लिए श्रद्धा जाती रही थी। चाचाजी का, जो पाँच मार्च को भ्रम-निवारण हुआ, उसने सम्भवतः शुरू से आखिर तक सभी को प्रभावित किया था, जिन्हें मानव की अपूर्णता की वास्तविकता का ज्ञान था।

१४ मार्च को पंडित नेहरू का लाहौर आगमन हुआ तथा आशावादी घबराए हुए व्यक्तियों के द्वारा उनका स्वागत किया गया, जो अब भी यह समझते थे कि वे स्थिति पर नियंत्रण कर लेंगे। मेरा विचार था कि सोहन अब पंडित जी की महत्त्वपूर्ण यात्रा पर विचार-विमर्श करने के लिए आएगा, किन्तु वह नहीं आया। २१ मार्च को मेरा तेरहवाँ जन्म दिवस आया और चुपचाप चला गया और अब भी सोहन नहीं आया।

जब पंडित नेहरू वापस दिल्ली पहुँचे तो काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के नेता एक सम्मिलित कान्फ्रेन्स में एकत्र हुए जबकि पंजाब में वृहत् रूप में नाश का प्रसार हुआ। रेलगाड़ियों को लूट लिया गया, घरों पर हमले किये गए, ग्राम निवासियों को फसलों तथा पशुओं समेत बरबाद कर दिया गया। छुरेबाजी की वारदातें शहरों में बढ़ गईं तथा मुस्लिम-बहुल इलाकों में अपहरण तथा बलात्कार के कार्य होते रहे।

कोई ग्राश्चर्य नहीं था यदि पश्चिमी पंजाब के हिन्दू ग्रौर सिक्ख देहली कान्फ्रेन्स के निर्णय के सम्बन्ध में व्यर्थ की देरी के कारण ग्रसंतुष्ट हो रहे थे ग्रौर बाकी भारत के ग्रपने हिन्दू ग्रौर सिक्ख भाइयों से बातें करने के बजाय तुरन्त मदद करने की प्रार्थना कर रहे थे।

लेकिन कांग्रेस पार्टी कर क्या सकती थी ? वह संयुक्त भारत की स्वतन्त्रता के लिए इतने ग्रधिक समय से लड़ती रही थी कि ग्रब तुरन्त ही उसे नहीं छोड़ सकती थी। इतिहास तथा तर्क दोनों ही उनके पक्ष में थे। क्योंकि ग्रार्थिक तथा सामाजिक बन्धनों के कारण भारत एक राष्ट्र था।

व्यर्थ परेशान करने वाले पत्रों के ग्रादान-प्रदान से थककर, मुस्लिम लीग के नेताग्रों से गालियाँ खाकर ग्रपने वर्षों के परिश्रम को व्यर्थ जाता देख दुखी होकर, पश्चिमी पंजाब के हिन्दू तथा सिक्खों की कुछ करने की निरंतर माँग के कारण, तथा यह जानकर कि तमाम पंजाब के मुसलमान धर्म के नाम पर जिन्ना के साथ हो गए हैं, काँग्रेस के नेताग्रों ने मई १९४७ में पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली। लेकिन यदि उन्हें इस प्रकार की कोई ग्राशा रही हो कि पंजाब में फैली हुई ग्राग शान्त हो जायेगी तो वे नितान्त भ्रम में रहे, क्योंकि ग्रपनी जीत को वहाँ के मुसलमानों ने हिन्दुग्रों तथा कांग्रेस की ग्रकर्मण्यता तथा कायरता के रूप में लिया तथा यहाँ से उन्होंने ग्रपने नए साम्प्रदायिक उपद्रवों का सूत्रपात किया, जिससे वे समझते थे, कि समस्त पंजाव तथा पूरा बंगाल मुसलमानों के लिए सुरक्षित कर लेंगे। लेकिन काँग्रेस भी बहुत कुछ ठीक सोचती थी। उसका विचार था, पाकिस्तान बनने के बाद झगड़े शान्त हो जायेंगे। उन्हें इसकी धुंधली-सी सम्भावना थी कि पश्चिमी पंजाब से हिन्दू तथा सिक्खों को निष्कासित करना पड़ेगा ग्रौर यदि पूरा पंजाब हाथ से निकल जाए तो यह काम कभी भी नहीं हो सकेगा।

पहली बार एक ग्रंग्रेज लार्ड माउन्टबेटन ने मुसलमानों से विरोधी रुख ग्रपनाया ग्रौर उनकी पूर्ण बंगाल तथा पूर्ण पंजाब की माँग को बहुत गलत तथा ग्रन्याययुक्त बतलाया। ग्रतः काँग्रेस के नेता लार्ड माउन्टबेटन को ग्रपनी पुश्त पर देखकर मजबूती के साथ ग्रपनी माँग पर ग्रड़ गए। उनकी माँग थी कि पंजाब तथा बंगाल प्रान्त पूरे पाकिस्तान में न मिलकर उनका बँटवारा होना चाहिए। परिणामस्वरूप निश्चित सीमाएँ नियत करने के लिए सीमा ग्रायोग की नियुक्ति हुई।

इन सब प्रयत्नों से पश्चिमी पंजाब में मुसलमानों का जुल्म और अन्याय नहीं रुका और यद्यपि मार्च के प्रारम्भिक दिनों के बाद लाहौर में एक विराम-सा आ गया था लेकिन फिर भी यहाँ हम कभी भी सामान्य जीवन व्यतीत नहीं कर सके। हमेशा वहाँ लौह द्वार रहा, बैटरियाँ जलती रहीं और अब कहाँ उमड़ती भीड़ का अभियान होगा तथा यदा-कदा छुरेबाजी की भी वारदातों की खबरें हमें मिलती रहती थीं।

यह सारा संघर्ष विनाशकारी ही नहीं था। १६ अप्रैल को पाम के एक बच्चे का जन्म हुआ। बड़ा सुन्दर तथा स्वस्थ लड़का था। समय की बात थी, न कोई उत्सव हो सका और न ही कोई स्वागत, यद्यपि वह परिवार का प्रथम नाती हुआ था। पाम बहन के लिए हमारी चिन्ता बढ़ गई। वह अत्यधिक कमजोर हो गई थी और बच्चा इतना छोटा था कि हमें अपना सुरक्षित बचाव करने की योजना को स्थगित करना पड़ा।

मई के मध्य में लाहौर में साम्प्रदायिक दंगे मार्च महीने की जैसी तेजी से, फिर भड़क उठे। लगातार चार रातों तक हम घर से बाहर रहे तथा हर बार यही समझते कि यही रात अन्तिम होगी। आज पाँचवीं रात थी और हमेशा की तरह हम छज्जे पर खड़े थे तथा दूसरे घरों के साथ वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए सम्पर्क स्थापित कर रहे थे। पाम बहन खड़े-खड़े थककर अपने बच्चे के साथ सीढ़ी पर बैठी थी जो अब तक महीने का था। अशोक भी चुपके से कभी पाम बहन के पास खिसक रहा था और कभी अपने बाकी भाई-बहनों की ओर आ रहा था और जल्दी ही हम सब एक छोटे से बिस्तर पर पड़-कर सो गए, जो पाम बहन के प्रयोग के लिए बिछाया गया था।

मेरी बहनें अब देख-भाल कर रही थीं तथा आग लगने के बिल्कुल निश्चित स्थानों का पता लगा रही थीं। उनमें से कुछ स्थान तो हमारे घर से आधे मील के फासले पर भी नहीं थे। रात्रि की नीरवता को भयंकर नारों की आवाजें भंग कर रही थीं, जिनका हमें अब तक अभ्यस्त हो जाना चाहिए था यद्यपि हम हो नहीं पाए थे। मई के महीने में हमेशा की तरह इस बार भी हवा के चलने की गति नहीं अनुभव हो रही थी। दिन में बहुत गर्मी रहती थी तथा तापमान ११५ अंश तक पहुँच जाता था। एक बार फिर हम हाथ पकड़ कर सीढ़ियों पर चढ़े। पिता-जी तथा ओम् भाई इस बार हमारे पीछे चले।

चार दीवारी में जहाँ पहले स्त्रियों की सुबकियाँ तथा रोना सुना जाता था अब बिल्कुल नीरवता का वातावरण छाया रहता था। अब हमारे चारों ओर ऐसी स्त्रियाँ थीं जो इतना अधिक त्रस्त हो चुकी थीं कि रो भी नहीं सकती थीं। हमारी पहली रात का अनुभव हमें दोबारा फिर कभी नहीं हुआ। बार-बार की इस परेड ने उन्हें इस सब का अभ्यस्त बना दिया था।

तुरन्त मरने के लिए उनमें से हर एक अपने साथ जहर, बन्दूक अथवा रेजर ब्लेड लिये हुए थीं। यदि उनके पास अब कोई आशा तथा उमंग रह गई थी तो वह था प्रतिष्ठा और पवित्रता और साहस के सिद्धान्तों का महत्त्व, आत्मत्याग, दुख सहन करने की भावना, तथा बलिदान का सिद्धान्त जो शताब्दियों से हिंदुओं द्वारा अपनाया जाता रहा है।

मैं अशोक को पकड़े हुए था और मोच रहा था उस समय के बारे में जब उसका जन्म हुआ था। इसके बाद मैनिनजाइटिस के कारण जो उसकी हानि हुई। किस प्रकार वह मेरी माँ की साड़ी पर झूलता था और किस प्रकार कालीनों पर लुढ़का करता था। कितनी ही बार मैंने उसे अपने कमरे में आकर बिजली के सामान के साथ खेल करने पर डाँटा था। हमेशा मुझे डर रहता था कहीं प्लग हटाना भूलने पर अशोक को हानि न पहुँच जाए। जो अपने भाई की नकल करने की इच्छा को दबा नहीं पाता था।

सबसे छोटा होने के कारण सभी उसे प्यार करते थे और लगभग किसी भी चीज के देने से उसे इन्कार नहीं किया जाता था। पहले वह शोर मचाया करता था और खूब खुश रहता था। मार्च के बाद वह सबकी नजरों से अपने को छिपाने का प्रयत्न करने लगा या कम से कम प्रतीत ऐसा ही होता था। अब वह चुपचाप पड़ा रहता था और उसको अंगूठा चूसने की आदत फिर से पड़ गई थी।

बाहर बम फट रहे थे तथा शोर से ऐसा प्रतीत होता था कि उपद्रवियों की भीड़ बिशनदास के घर के द्वार के पास आ गई है। किसी भी समय हम गोलियों के चलने की आशा कर रहे थे जिससे कुछ समय के लिए उनकी प्रगति रुक जाती। लेकिन भाग्य से उस दिन हमें मौत के मुख में नहीं जाना था और एक बार फिर सुबह हम लौहद्वार से गुजरे।

अगले दिन शेख साहब आए और बड़ी सत्यता के साथ बोले, 'उपद्रवी भीड़ से हमारा घर बाल-बाल ही बचा है।' यदि हमारी इच्छा अपनी बहनों को उनके

घर भेजने की नहीं हो तो कम से कम उन्हें लाहौर के बाहर कहीं भेजने का उन्होंने परामर्श दिया। उन्होंने यह बात ऐसी गूढ़ता का भाव प्रदर्शित करते हुए कही जैसे वास्तविक स्थिति का उन्हें हम से अधिक ज्ञान था और वे यह जानते थे कि उपद्रवियों का अगला कार्यक्रम क्या होगा।

शेख साहब की सलाह और लाहौर में होने वाले उपद्रवों के कारण पिताजी ने हमें बाहर भेजने का निश्चय कर लिया और पहली बार उन्होंने हमारी तथा बहनों की राय नहीं माँगी तथा हमारी बहनों के विरोध को मानने से इन्कार कर दिया। उसी दिन उन्होंने दौलतराम चाचाजी के यहाँ जाकर उन्हें भी अपनी लड़कियों को बाहर भेजने का परामर्श देने का निश्चय कर लिया। मेरी बहनों ने उनके जाने पर माताजी से कहा कि बाहर जाकर उन्हें माताजी और पिताजी के सम्बन्ध में कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं होगी। लेकिन ऐसा मालूम होता था कि पिताजी तथा माताजी ने अपने मत पर दृढ़ रहने का निश्चय कर लिया था और माँ भी पिताजी के समान ही इस मत पर स्थिर थीं।

अब तक मुझे यह नहीं मालूम था कि उनका निर्णय मुझे भी प्रभावित करेगा अथवा नहीं। लेकिन जब पिताजी वापस आए तो बोले कि दौलतराम चाचाजी ने भी अपने पुत्र को बाहर भेजने की इच्छा व्यक्त की है और उनका यह निश्चय है कि मुझे और रवि को भी चला जाना चाहिए। पिताजी की शायद यह इच्छा थी कि उन्हें छोड़कर बाकी सब चले जाएँ लेकिन मेरी माँ इस बारे में अड़ गईं और उन्होंने उनकी एक न सुनी। अब अगर अम्मा को रुकना था तो अशोक भी उनके साथ ही रुकता। उसी रात पाम बहन को देहरादून चले जाना था और शेष हम सबको अगले दिन बम्बई जाने वाली गाड़ी में बैठना था। यद्यपि गाड़ियों को कभी-कभी उपद्रवी भीड़ द्वारा रोक लिया जाता था तथा यात्रियों को लूट लिया या मार दिया जाता था।

हमारे ट्रेन से जाने की बात जानने वाले लोगों की भविष्यवाणियों के बावजूद हमारी गाड़ियों को मुसलमानों की भीड़ ने रोका नहीं और सिवाय हमारी मानसिक व्यथा के यात्रा निर्विघ्न तथा शान्तिपूर्वक समाप्त हो गई। हमारे पास ही बैठी एक बूढ़ी स्त्री लगातार गालियाँ बके चली जा रही थी और डरे हुए और अकेले लोगों की उसको चुप रखने की बातें सुनकर ही हम अपनी हानि का अनुमान कर रहे थे।

गाड़ी गर्म मैदानी इलाके को पार करती हुई बम्बई की ओर चली जा रही थी और इस यात्रा के बीच मुझे रह-रहकर सोहन की याद आ रही थी। उसने मुझे हमेशा अपने भाई के समान समझा था। भावों और इच्छाओं में वह मेरे समान ही था। जिस रात गाड़ी से हमने प्रस्थान किया था, उसी रात 'संघ' का एक लड़का खबर लेकर आया था कि सोहन मारा गया है। मैं भगवान् से प्रार्थना कर रहा था कि यह सूचना गलत हो। लेकिन ट्रेन में, मेरे लिए वास्तविकता अधिक महत्त्वपूर्ण थी।

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान १५

बाहर ढोल बजा और बैंड से स्वतन्त्रता दिवस का स्वागत करने के लिए संगीत के स्वर ध्वनित हो उठे। लेकिन हमारे कानों को यह उत्साहवर्द्धक संगीत खोखला-सा लगा। हमारे लिए पन्द्रह अगस्त के स्वतन्त्रता दिवस का अर्थ था कि हम लाहौर कभी भी वापस नहीं जा सकेंगे।

हमने दो महीने बम्बई में पिताजी के भतीजे आनन्द भाई के यहाँ बिताए। वहाँ हमारे पास घर पर रहने के सिवा और कोई काम न था। हमें यह भी पता नहीं था हम वहाँ कितने समय तक रहेंगे, अतः हम भविष्य के लिए कोई योजना भी नहीं बना सकते थे। बम्बई के शान्त वातावरण में सारा काम-धाम हमेशा की तरह सामान्य ढंग से चल रहा था। लेकिन पश्चिमी पंजाब में जब परिस्थितियाँ और भी खराब हो गई तो उस चार कमरों वाले घर में ठहरने हमारे और भी सम्बन्धी आ गए, यहाँ तक कि यह संख्या सत्रह तक पहुँच गई। इन क्वार्टरों के संकुचित तथा तंग होने पर भी, जहाँ हमें फर्श पर सोना पड़ता था, हम प्रसन्न थे, क्योंकि नियमित रूप से माताजी के पास से काफी चिट्ठियाँ आती थीं जिनसे वहाँ घर पर उनकी सुरक्षा का हमें विश्वास हो जाता था।

उन्होंने लिखा था कि मई में लाहौर से हमारे चले आने के बाद वहाँ की स्थिति में कुछ सुधार हो गया था। यद्यपि सारे पश्चिमी पंजाब में स्थिति निरंतर बिगड़ती चली जा रही थी। लेकिन यदा-कदा चिट्ठियों से यह आभासित होता था कि उनकी अवस्था अधिक जटिल और खराब होती चली जा रही है। उन्होंने अपने बाद के पत्र में लिखा था कि कुछ ही दिनों में जो कत्लेआम गाँवों में हो रहा था, लाहौर तक पहुँच जाएगा। उन्होंने जल्दी ही लाहौर छोड़ देने की आशा व्यक्त की थी।

उनकी तीन अगस्त की लिखी गई चिट्ठी ने हमें अत्यधिक चिन्ता में डाल दिया था। मेरे पिताजी को विभाग का अध्यक्ष होने के नाते भारत तथा पाकि-

स्तान की सम्पत्ति के बँटवारे का काम सौंपा गया था जिसके कारण पिताजी का वहाँ दस अगस्त के बाद तक रुकना आवश्यक हो गया था। यह अन्तिम तारीख थी, जब तक पाकिस्तान से हिन्दू पुलिस तथा हिन्दू अधिकारियों को सीमा पार-कर भारत चले आना था।

हम जानते थे, उनको वहाँ वर्तमान अनिश्चित स्थिति से भी अधिक ठहरना पड़ेगा। यद्यपि सीमा-आयोग ने अभी तक लाहौर के सम्बन्ध में अपना कोई निर्णय नहीं दिया था लेकिन फिर भी काफी लोगों का विचार था कि लाहौर भारत में मिल जाएगा। चाहे भारत में मिले अथवा पाकिस्तान में किन्तु लाहौर का भाग्य तो वही रहना था क्योंकि मुसलमान वहाँ एक और साम्प्रदायिक अभि-यान शुरू करते जो मानवता की सभी सीमाओं को लाँघ जाता। एक रात में ही धनवान बनने के लालच से हिन्दुओं को निकाल दिया जाता तथा मुसलमान फिर पाशविक नाश के रूप में अपना विरोध प्रदर्शित करते। पहले के समान यह तथ्य कि अधिकतर सम्पत्ति मध्यम वर्ग के सिखों तथा हिन्दुओं की ही थी और इसी का सहारा लेकर मुस्लिम लीग जनता की भावनाओं को भड़काती।

हमारी चिन्ता उस समय और भी अधिक बढ़ गई जब माताजी ने लिखा कि चाचाजी ने लाहौर छोड़ने से इन्कार कर दिया है और पिताजी को उन्हें मनाने के अपने सारे प्रयत्नों के बदले में फटकार मिली है। उनका विश्वास था कि एक बार पाकिस्तान राज्य बन जाने पर स्थिति सामान्य हो जाएगी और सभी हिन्दू वापस अपने घरों को आ सकेंगे। हमारे आने के बाद से दो महीनों में उन्हें फिर से पूर्ण विश्वास हो गया था और उन्हें इस बात का यकीन था कि आखिर हिन्दू तथा मुसलमान परस्पर सद्भाव के स्तर पर आ जाएंगे। चाचाजी ने हर प्रकार के विश्वास का हनन होते देखा था लेकिन फिर भी वह मानव की अच्छाई में विश्वास करते थे और उसे आवश्यकता से अधिक महत्व देते थे।

आज हम मैरीन ड्राईव पर स्थित प्लेट में बैठे हुए अरब सागर की तरंगों की ओर देख रहे थे। हमें पता चला कि लाहौर में आग लगा दी गई तथा शहर भर में लपटें उठ रही हैं। अब वह निर्णायक भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई थी। हमने अपने माता-पिता से बातें करने का प्रयास किया लेकिन टेलीफोन के तार काट दिए गए थे। वास्तव में पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब में संचार का कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया था। हमने भारत सीमा पर स्थित पहले शहर अमृतसर से उनके

सुरक्षित लौटने की जाँच कराने के लिए बातें करने का प्रयास किया, लेकिन पता चला, कई दिन पहले की काल बुक होने के कारण तारघरों पर कार्य का अत्यधिक भार था।

रात के बाद रात बीतती चली गई और हम यह प्रतीक्षा करते रहे कि कब तारघर का आदमी आकर द्वार खटखटाए। एक बार थोड़ी-सी देर के लिए अर्ध-निद्रित अवस्था में मैं स्वप्न में लाहौर पहुँच गया और वहाँ लौहद्वार के द्वारा दूसरी दीवार तक पहुँचकर बचने का प्रयास करने लगा। इस प्रकार दुःखद वातावरण में मौन बैठे हुए हमें मुसलमानों द्वारा दी जाने वाली किसी भी शारीरिक सम्भावित यंत्रणा से अधिक कष्ट हो रहा था।

जीत के बाजों का मधुर संगीत युद्ध की तरंग पर बज उठा, जिसने जनता की भावनाओं को उस समय तक उभारा जब तक मस्ती से उसका मन झूम न उठा। सेना ने, कन्धे पर रायफल रखे हुए तथा चमचमाते हुए जूते पहने हुए परेड की। एक घण्टे बाद भारत को स्वतन्त्र हो जाना था लेकिन यह सब उत्सव फीका-सा प्रतीत होता था। लाहौर में हम वास्तव में बहुत अधिक आजादी देख चुके थे और यह स्वतन्त्रता थी लूटने और मारने की स्वतन्त्रता।

इस सबसे जो एक आराम हमें मिला वह यह था कि हम अभी भी आशा कर रहे थे, लेकिन मैं तुरन्त ही विषादमय वातावरण का शिकार हो गया जब मेरा ध्यान उन लाखों व्यक्तियों की ओर गया जिन्हें अब कोई भी आसरा नहीं रह गया था और मेरे मस्तिष्क में पिताजी के ये शब्द गूंजने लगे, 'इन दोनों में जो महत्व की चीज होगी, वह सम्पत्ति न होकर लोगों का जीवन होगा।'

अपने मकान की साज-सज्जा अथवा अलग-अलग सोने के लिए पलंगों का विचार हमारे मस्तिष्क में नहीं आया यद्यपि मुझे सोहन तथा श्री खन्ना की मित्रता से वंचित होने का बहुत दुःख था।

इस प्रकार के दुःखद वातावरण में जब कभी गांधी जी के वक्तव्यों का ध्यान आता था तो बड़ा क्रोध आता था। उनका कथन था हिन्दू और सिख जहाँ हैं वहीं रहें और अपनी शक्ति का संचय करें और उनके लिए शक्ति का अर्थ था धर्म-परिवर्तन तक मृत्यु का विरोध। कितना निरर्थक-सा था उस समय अहिंसा की बातें करना जब कि हम अपनी लड़कियों का अपहरण तथा पत्नियों का कत्ल होते देख रहे हों। वह उन लोगों से धार्मिक शक्ति की आशा कर रहे थे जिन्हें सहनशीलता

की सीमा से कहीं अधिक सताया गया था।

मैं जानता था कि गांधीजी के सिद्धान्तों का विरोध करके मैं स्वयं अपने ही सिद्धान्तों का विरोध कर रहा था और यदि मैं व्यक्तिगत भावनाओं से बहुत प्रभावित न हो गया होता तो मैं निश्चय ही अपने अन्तर को टटोलता। अब मैं यह देखकर कुछ सान्त्वना अवश्य अनुभव करता था कि आखिर पश्चिमी पंजाब के हिन्दू तथा सिखों की मदद के लिए की गई प्रार्थना पर ध्यान दिया जा रहा था। हिन्दुओं और सिखों को अपनी अहिंसा की नीति के त्यागने में पाँच महीने लगे, जिनमें पश्चिमी पंजाब में हिन्दू तथा सिखों का निरन्तर बड़ी योजना के साथ कत्ले आम होता रहा। और अब उन्होंने बदले में लड़ना शुरू किया था। जुलाई के अन्त तक काफी शरणार्थी तेजी से आने लगे थे और उनसे पहले आने वाली खबरों की सार्थकता सिद्ध होने लगी थी। उनकी दर्दभरी कथाओं ने तथा स्वयं उनकी उपस्थिति ने यहाँ के हिन्दू और सिखों का दिल हिला दिया और वह बदला लेने के लिए व्यग्र हो उठे। मुझे यह समाचार सुनकर बड़ी प्रसन्नता होती थी जब प्रत्येक हिन्दू तथा सिख इस बात में मुसलमानों से होड़ लेता था कि उसने व्यक्तिगत रूप से कितनों का कत्ल किया। यदि मुझे भी चार मुसलमानों को मारने का सौभाग्य मिलता तो मैं भी उस पर गर्व करता। गांधीजी के सिद्धान्त पुराने पड़ चुके थे।

पन्द्रह अगस्त आया और चला गया और अब हमारा भारत एक दिन का हो गया था लेकिन अभी तक हमारे माता-पिता के पास से कोई समाचार नहीं आया था। उसी समय उस दुःखदायी नीरवता को टेलीफोन की घण्टी की तेज़ घनघनाहट ने भंग किया। यह हमारे माता-पिता की आवाज थी। उन्होंने ओम् भैया तथा अशोक के साथ सीमा पार कर ली थी। लेकिन चाचाजी को लाहौर छोड़ने के लिए समझाने में उन्हें सफलता नहीं मिली थी। वे बड़ी कठिनाई से बाल-बाल बचे थे। उन्होंने हमें बताया कि बारह तारीख के बाद बहुत कम लोग सीमा पार करने में सफल हो सके थे यद्यपि बहुतों ने उद्योग किया था और अपनी जानें गंवा दी थीं। उन्होंने अन्य बहुत-से अनाथ शरणार्थियों के समान ही अपनी अन्तिम तीन रातें अमृतसर में बिताई थीं। तथा हमें जल्दी से जल्दी दिल्ली मिलने के लिए बुलाया था।

जब से मैंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में भाग लेना प्रारम्भ किया था, तभी से मुझे सन्देह होने लगा था कि क्या कभी हिन्दू और मुसलमान भ्रातृ भावना से

रह सकेंगे जैसे वह अतीत में रहते रहे थे? इस प्रकार की सम्भावना हमेशा थी कि कोई और जिन्ना हिन्दुओं के साथ मिलकर एक उद्देश्य का निर्माण करेगा और फिर अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए उद्देश्यों को एकदम से छोड़कर धर्म का घृणित आडम्बर खड़ा करेगा और इस प्रकार वह फिर साम्प्रदायिक विवाद खड़ा कर देगा और यह रक्तरंजित कथा फिर दोहराई जायगी। ऐसी अवस्था में मैं अनुभव करता था कि इस दुःखद दुर्घटना से बचाव करने का भविष्य में एक ही तरीका था कि मुसलमानों को नेतृत्व ग्रहण करने का कभी भी अवसर ही न दिया जाए।

वीर और साहसी सोहन को मैं जानता था, मैं जानता था कि एक नये हिन्दू भारत के लिए वह अपने प्राणों के उत्सर्ग के लिए भी तैयार था। उससे मैं बहुत प्रभावित था तथा उसकी यह स्पष्ट उक्ति कि 'गांधीजी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं का कार्य पूरा हो चुका है', मेरे दिल में घर कर गई थी। टेलीफोन की प्रतीक्षा के चार बेचैन दिनों में मेरी भावना सोहन के तर्क को मानने के लिए अधिकतर दृढ़ होती चली गई थी। उस समय मैं भी यह नारा लगा सकता था 'भारत हिन्दुओं के लिए है !' 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान !'

अब अपने माता-पिता के सम्बन्ध में मेरी आशंकाएँ समाप्त हो चुकी थीं। अतः विचार कुछ अधिक संतुलित होने लगे थे। विचार परिवर्तन के लिए मैं स्वयं को बुरा-भला कहने लगा था। एक ओर तो मैं सोचता था, भारत में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों साथ-साथ रह सकते हैं किन्तु दूसरी ओर सोचता था कि भविष्य में ऐसी किसी भी दुर्घटना को रोकने का एकमात्र तरीका था ऐसा भारत जहाँ हिन्दुओं का बहुमत के रूप में शासन हो।

इन परस्पर विरोधी विचारों से व्यथित होकर आखिर मैं निम्मी बहन के पास गया, जो गांधीजी की बड़ी प्रबल समर्थक थीं। सोहन के शब्द मुझे फिर याद आ गए कि यह गांधीजी की अहिंसा न होकर अंग्रेजों की उदारता थी जिसने उनकी प्रणाली का आदर किया तथा जिसने स्वतन्त्रता की मंजिल तक हमें पहुँचाया। मैं जानना चाहता था कि क्या निम्मी बहन भी इसका समर्थन करती थीं ?

उनका उत्तर तुरन्त मिला, 'अंग्रेज उदार ? बेकार की बात ! क्या यह उनकी उदारता थी कि उन्होंने हमारे सब नेताओं को जेल में डाल दिया, केवल इस कसूर पर कि वे अपने देश की स्वतन्त्रता का अधिकार माँगते थे ? क्या यह उनकी उदारता थी कि उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काकर दोनों में वैम-

नस्य उत्पन्न करा दिया ? यदि कहीं अनशन के दौरान में गांधीजी की मृत्यु हो जाती तो अंग्रेज अपनी पूरी शक्ति लगाने पर भी भारत में नहीं रह सकते थे। उन्होंने उन्हें उस समय तक अनशन करने दिया जब तक उन पर कोई कठिनाई नहीं आई। उन्होंने उसके परिणामों तथा प्रस्ताव को नहीं समझा। वे हमेशा गांधीजी पर नजर रखते थे जिससे उन्हें कुछ भी होने से पहले वे उनकी रक्षा कर सकें।'

'क्या यह मान लेने के उपरान्त भी यह नहीं कहा जा सकता कि गांधीजी अपना कार्य कर चुके हैं ? वह इतने अधिक आदर्शवादी हैं कि मुसलमानों की धमकी का मुकाबला नहीं कर सके। तुमने और मैंने उन मुसलमानों को धर्म के नाम पर आमोद-प्रमोद करते देखा है।'

लेकिन तुम सब मुसलमानों को उनके नेताओं के काम के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते। तुम क्या करना पसन्द करोगे ? सब मुसलमानों को समाप्त कर दिया जाय ? लेकिन इसका तो तात्पर्य यह होगा कि हम हिन्दू भी उतने ही अन्धविश्वासी हैं जितने मुसलमान हैं।'

'नहीं, लेकिन उन्हें भारतीय शासन में कोई भी भाग देने से वंचित किया जा सकता है। हिन्दुओं की पाकिस्तान सरकार में कोई आवाज नहीं है। अतः मुसलमानों का भारतीय शासन में हिस्सा फिर कैसा ? इस तरह जिन्ना के समान किसी दूसरे नेता की सम्भावना भी बिल्कुल समाप्त हो जायेगी।'

'ठीक इससे विपरीत अवस्था उत्पन्न हो सकती है,' निम्मी बहन ने उत्तर दिया, 'तुम किसी एक जाति को हमेशा दबा कर नहीं रख सकते। क्योंकि अन्त में फिर वह विद्रोह कर उठेगी और शायद किसी ऐसे नेता के नेतृत्व में जो जिन्ना से भी कहीं अधिक आततायी हो। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को दबाकर तुम अपने ही एक वर्ग को दबाओगे। नहीं ! गांधी का कार्य लक्ष्य से कोसों दूर है। तुम जैसे अभी बहुत-से लोग हैं जिनके कदम डगमगाने लगे हैं और जो आवश्यकता से अधिक भावुकता से प्रभावित हो गए हैं। यदि हम सतर्क नहीं रहेंगे तो अंग्रेजों को यह कहने का बहाना मिल जाएगा कि भारत कभी स्वशासन के योग्य नहीं है।'

'क्या तुम्हारा मतलब है, जो कुछ पाकिस्तान में हुआ है, हम उसका कुछ बदला भी न लें ? तुम इन लाखों शरणार्थियों का क्या करोगी जो सीमा के उस पार से आये हैं ? यदि मुसलमान यहाँ से नहीं जायेंगे तो निश्चित रूप से इनके रहने का

कोई ठिकाना नहीं रहेगा।'

'यदि तुमने इस प्रकार बदला लेना प्रारम्भ कर दिया तो फिर इसका अन्त कहाँ होगा ? तुम्हारे समझाने से पहले ही ये धार्मिक दीवाने सारे भारत में लड़ाई प्रारम्भ कर देंगे। इसका परिणाम वही होगा क्योंकि हिन्दू राष्ट्रवादी, जो भारत को हिन्दुओं के लिए माँगते हैं, काँग्रेस के सहनशील नेताओं को हटाकर प्रभाव में आ जायेंगे। यदि वास्तव में कभी अहिंसा की आवश्यकता रही है तो अभी है।'

'गौतम बुद्ध ने भी यही अहिंसा सिखलाई थी और तुम जानती हो उसका भारत पर क्या प्रभाव पड़ा था ? मुसलमानों ने उन्हें परास्त किया और अंग्रेजों के आने तक उन पर शासन किया। ऐसा फिर हो सकता है।'

'यही तर्क है तो बताओ कि हिंसा का प्रयोग होने से ही क्या हुआ है। युद्ध बहुत-से राष्ट्रों के पतन का मुख्य कारण रहा है। अहिंसा का कभी प्रयोग नहीं किया गया। केवल अहिंसा ही वास्तव में इस जर्जरित विश्व की रक्षा कर सकती है।'

'मुसलमान अब हमारे जीवन का एक अंग बन गए हैं। उनकी परिपाटियाँ अब हमारी हो गई हैं तथा मैं तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकती हूँ कि भारतीय मुसलमान तथा दूसरे देशों के मुसलमानों में बहुत कम समानता है। उसका भारतीय चरित्र है जिसके रूप में उस पर हमारे भ्रातृत्व की छाप है और जिसके कारण वह हमारे समाज का एक अंग है।'

'निम्मी बहन, तुम्हीं ईमानदारी से बतलाओ, क्या तुमने हमेशा ऐसे ही सोचा है ? क्या कभी तुम्हारा विश्वास संयुक्त भारत में डगमगाया नहीं है ?'

वह चुप रहीं और तुरन्त उत्तर नहीं दे सकीं, 'जो कुछ हमारे पास था उस सबको खोकर मुझे कभी तो बड़ा दुःख होता है और इससे भी अधिक उन हजारों निरपराध व्यक्तियों के मारे जाने का दुःख होता है। अहिंसा में मेरा विश्वास…'

अब कुछ और कहने की जरूरत नहीं थी। अगर निम्मी बहन, जिसने शेख साहब पर विश्वास करने के लिए तर्कों से समझा दिया था, जैसी आदर्शवादी तथा सिद्धान्तवादी भी डगमगाने लगी थीं तो फिर हमारा कहना ही क्या ?

उन्होंने कहा, 'हमें शक्ति का संचय करना चाहिए, गांधी जी से। वह सबसे अधिक यातना उठाते हैं।'

शरणार्थी | १६

अपने माता-पिता के बुलाने के एक-दो हफ्ते बाद हम बम्बई से दिल्ली चले गए। वही वातावरण जो मार्च और मई में लाहौर में व्याप्त था, दिल्ली पर भी छाया प्रतीत होता था। दो हफ्ते दिल्ली में रहने के दौरान हमने अनुभव किया कि शहर में वारदातें और क्षोभ का वातावरण व्याप्त था। पश्चिमी पंजाब के दो सफल तरीकों के आधार पर ही दिल्ली में भी घटनाएँ होती थीं और हम एक बार फिर मानसिक असन्तुलन तथा चिन्ता के शिकार हुए।

दिल्ली आकर हमें पता चला कि लाहौर के सब मेहता और मेहरा परिवार बिना किसी को जान गंवाए सुरक्षित बचकर सीमा पार कर गए थे। चाचाजी लाहौर छोड़ने वालों में अंतिम थे और वह भी आश्चर्यजनक ढंग से दिल्ली पहुँच गये थे। हमें यह भी पता चला कि शेखपुरा में रहने वाले हमारे दूर के सम्बन्धियों को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ तथा वह मुसलमानों के हाथों मार डाले गये।

लाहौर से आने वाले लगभग सभी खाली हाथ आए थे। इस प्रकार जो कभी बड़े-बड़े आलीशान मकानों में रहते थे अब सब केवल एक कमरे में रह रहे थे। हम दिल्ली में अपने एक चाचा के यहाँ ठहरे हुए थे, जहाँ कुल चार कमरों में तीस व्यक्ति भरे थे।

इसी बीच मेरे पिताजी को तुरन्त शिमला जाने का आदेश मिला था, जो अब पूर्वी पंजाब की राजधानी थी। अतः हमारे माता-पिता हमें दिल्ली में नहीं मिल सके और अन्त में जब कुछ सुरक्षित समझा गया, हम अपने चाचा के घर को छोड़ कर शिमला चले गये।

हमारे माता-पिता लाहौर से अपने साथ कुछ भी नहीं ला सके थे और एक छोटा-सा अधिकारी वर्ग का घर, जो हमें दिया गया था, लगभग तीन महीने तक सज्जा विहीन ही रहा। इस पहाड़ी प्रदेश की ठण्डी रातों ने हमें घर में ही रहने के लिए बाध्य कर दिया था। हम सब गद्दे तथा पलंग की चादरें लपेट कर ही पड़े

रहते थे, क्योंकि उस समय हमें पर्याप्त ईंधन उपलब्ध नहीं था। दिन में भी हम कभी-कभी ही बाहर निकलते थे क्योंकि हमारे पास केवल गर्मियों के कपड़े थे।

मेरे पिताजी अब संचालक (डायरेक्टर) हो गये थे और पूर्वी पंजाब का सारा जन-स्वास्थ विभाग उनके नियंत्रण में आ गया था। वह कुछ समय शिमला में व्यतीत करते थे। तथा अनगिनत समस्याओं का, जो शरणार्थियों के मीलों लम्बी मोटर गाड़ियों में आने से उत्पन्न हुई थीं, प्रबन्ध और समाधान करने में व्यस्त रहते थे। इसमें हर एक शरणार्थी अपने मुख पर इस दारुण कथा की व्यथा लिये हुए था, जिसके पास न जेब में खाने के लिए एक आना था और न रहने के लिए मकान। दिसम्बर १९४७ तक अर्थात् स्वतन्त्रता-प्राप्ति के तीन महीने बाद तक चालीस लाख व्यक्तियों से अधिक शरणार्थी आ चुके थे।

अतः पिताजी को अपना काफी कार्य मैदानों मे करना पड़ता था, जहाँ कई वर्गमील में शरणार्थी शिविर लगे हुए थे। हिन्दुओं तथा सिखों की बदले की भावना अब भी अत्यंत भयंकर रूप में चल रही थी। अतः मेरी बहनों के लिए शिमला छोड़ना सुरक्षित नहीं समझा गया, यद्यपि मुझे कुछ बार पिताजी के साथ जाने की अनुमति मिल गई थी। हम पुलिस की सुरक्षा दल की टुकड़ी के साथ यात्रा करते थे तथा विभिन्न शरणार्थी-शिविरों पर रुकते थे। जहाँ पिताजी सफाई तथा महामारी से बचने के उपायों के प्रबन्ध का विस्तृत अध्ययन करते थे। रात-दिन दुग्ध-चूर्ण, सीलबन्द खाद्य पदार्थ तथा इन्जेक्शन इन शरणार्थी शिविरों में पहुँचाए जाते थे। राज्य के सभी विभाग इस प्रबल शरणार्थी समस्या का समाधान करने में एक दूसरे की सहायता तथा परस्पर सहयोग की भावना से काम कर रहे थे, जिससे शरणार्थियों का पुनर्वास हो सके।

मुझे शरणार्थी शिविर के अपने प्रथम अनुभव याद हैं। यह अम्बाला के निकट एक बहुत बड़ा शिविर था। दोपहर के कुछ देर बाद ही हम वहाँ पहुंच गये थे। पिताजी के दो सहायक भी वहीं मिल गये थे और हमने निरीक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। पिताजी जब इन्स्पेक्टरों तथा अन्य स्वास्थ्य-अधिकारियों के साथ वार्ता करने में व्यस्त थे तो मैं शिविर के विभिन्न स्थान देख रहा था। यदि कोई करुणाजनक तथा दयनीय स्थिति हो सकती थी तो वह यही थी।

मनुष्यों के मल-मूत्र की दुर्गन्ध तथा बीमारों और मरते हुए व्यक्तियों के कारण दूषित वातावरण ने सभी अन्य बातों पर विजय प्राप्त कर ली थी। मक्खियाँ चारों

ग्रोर भिनभिना रही थीं। बच्चे खाद्य पदार्थों के लिए भीख माँग रहे थे। डाक्टरी सहायक कीटाणु नाशक ग्रौषधियाँ लिए हुए उनके पीछे दौड़ रहे थे तथा बच्चों के हाथों में इन्जेक्शन लगा रहे थे, जो इतने कमजोर हो चुके थे कि चिल्लाने तक में ग्रसमर्थ थे। वे स्त्री तथा पुरुषों को भी इन्जेक्शन लगा रहे थे। वे ग्रादमी जो कभी ग्रपने हाथों से मेहनत करते थे, ग्रपने हाथों से हल चलाते थे तथा बीज बोते थे, ग्रपने श्रम से ग्रपना तथा ग्रपने बच्चों का सर्दी से बचाव करते थे—ग्रब इतने दयनीय ग्रौर निरुत्साहित हो गए थे कि हम उनके पास से निकल गए, किन्तु उन्होंने कोई व्यग्रता प्रदर्शित नहीं की।

जहाँ कहीं भी हम जाते थे, वहीं ग्रविश्वास योग्य ग्रत्याचार तथा निर्दयता की कहानियाँ मिलती थीं। उनकी ग्रतिशयोक्ति को उसमें से निकालने के उपरान्त भी उन पर हुई क्रूरता की ग्रपरिमितता में कोई संदेह नहीं था। कुछ लोग दूसरों की ग्रपेक्षा जल्दी मे बातें बतला देते थे किन्तु ग्रधिकतर ग्रपनी व्यथा को बतलाने से शर्माते थे। एक बार एक निरीक्षक इन्जेक्शन लगा रहा था तो हम उस ग्रादमी के पास पहुँच गए ग्रौर पिताजी ने मेरा हाथ दबाकर कहा कि उस व्यक्ति की भुजाएं नहीं थीं।

जब इन्सपेक्टर तेजी से दूसरे शरणार्थी के पास चला गया तो मैं उस ग्रादमी के पास खड़ा रहा ग्रौर उससे बोलने का प्रयास किया। उसके पहले कुछ कोमल शब्दों से मैंने ग्रनुमान लगा लिया कि वह एक सिख था तथा सिख होने के कारण उसके लम्बे-लम्बे बाल तथा दाढ़ी थी जिनके कारण मुसलमानों की लूट तथा ग्रपहरण का उसका शिकार बनना निश्चित था। उसने मेरी ग्राँखों को देखकर कहा, 'यह सब तुम्हें कहाँ हुग्रा।' मेरे ग्रंधेपन को शरणार्थी लोग ग्रक्सर मुसलमानों के ग्रत्याचार का परिणाम समझ लेते थे। 'हम लाहौर में रहते थे,' मैंने उत्तर दिया, 'लेकिन यह मुसलमानों के द्वारा नहीं हुग्रा।' कुछ देर के लिए शान्ति रही, 'ग्रौर तुम्हारे हाथ; यह कैसे हुग्रा ?'

'एक गुरुद्वारे में, हम जानते थे वे नहीं ग्रायेंगे, ग्रतः हम चार रातों से वहाँ सो रहे थे। पाँचवीं रात वे लोग वहाँ ग्राए। उन्होंने हमसे बाहर ग्राने के लिए कहा तथा फिर कहा, 'मुसलमान हो जाग्रो ग्रौर ग्रपने घरों को वापस चले जाग्रो। लेकिन हमने धर्म परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया।'

मैंने सुना था, कुछ हिन्दू गाँवों में लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था।

उनकी लड़कियों की शादियाँ भी बलपूर्वक मुसलमान गुण्डों के साथ कर दी गई थीं। लेकिन अधिकतर लोगों ने धर्म परिवर्तन नहीं किया, यद्यपि इसके परिणाम स्वरूप उनकी सम्पत्ति नष्ट हो गई तथा उनके परिवार के लोगों को या तो यातनाएं दी गईं या कत्ल कर दिया गया।

'वे दो रात और एक दिन गुरुद्वारे का घेरा डाले रहे। हमारी सामग्री तथा अस्त्र पहली ही रात को समाप्त हो गये थे। हमारी रसद बन्द हो गई थी।'

यहाँ से उनकी कथा उन सैकड़ों गाँवों से अलग नहीं है, जहाँ मन्दिरों पर उपद्रवियों ने कब्जा जमा लिया था। आदमियों ने अपनी ही स्त्रियों का अपहरण और अत्याचार से बचाने के लिए मारना शुरू कर दिया था।

इस सिख ने अपनी लड़की को तो मार दिया था लेकिन अपनी पत्नी को मारने के पहले कुछ क्षणों के लिए झिझक गया था। इसी बीच मुसलमानों की भीड़ ने उस पर काबू कर लिया, अपने हाथ कटने से पहले उसने एक मुसलमान को भी मार दिया था। इसके बाद उन्होंने उसके कान काट दिये और वे उसे तड़पा-तड़पा कर जान से मार डालते लेकिन तुरन्त उसे किसी अंतुलित दैवी बल का अनुभव हुआ और वह बलपूर्वक अपने को उनसे छुड़ाकर उन लोगों की ओर दौड़ा जो उसकी पत्नी को ले जा रहे थे। यद्यपि भीड़ में वह गुम हो गए लेकिन वह बच गया। एक हफ्ते तक वह बिना खाना खाए छिपा रहा। तब एक सिख पुलिस की लारी आई और सिपाहियों ने उसे ले जाकर गाड़ी में बिठला दिया।

लेकिन सभी शरणार्थी इस सिख के समान ही अपंग नहीं हो गए थे। उनके दुःखों ने अपने प्रियजनों की कमी का बदला लेने के लिए बाध्य कर दिया था। जब भी कभी उनसे गांधीजी और अहिंसा की बात की जाती थी तो वे तुरन्त ही उत्तर देते थे।

'गांधीजी ने अपनी लड़कियों का अपहरण होते हुए नहीं देखा है।'

'गांधीजी से कभी उनकी पत्नी को नहीं छीना गया।'

कुछ लोग इससे भी अधिक उन्हें कायर तक बतलाते थे तथा कहते थे वह पंजाब जाने से डरते हैं। लेकिन उनकी एक ही प्रार्थना-सभा ने यह विश्वास दिला दिया था कि उन्हें उनसे भी अधिक यातना पहुँची है जिन्हें इस खून खराबी का प्रत्यक्ष अनुभव है। और उनकी दुनियाँ स्वयं को कायर समझने की भावना से कहीं ऊपर थी।

शिमले की कड़ाके की लम्बी सर्दियों की बर्फ अभी गिरनी शुरू नहीं हुई थी, जिससे गलियाँ भर जाती थीं और हर एक परिवार को कमरों के भीतर आग जलाकर बैठना पड़ता था। अब तक दिसम्बर के प्रारम्भ में हमें आग जलाने के लिए ईंधन मिलने लगा था। क्योंकि अंगीठी ही हमारा उस ठण्ड तथा हवा से, जो पहाड़ी प्रदेश को शीत प्रदान करती है, बचने का एक मात्र साधन थी। अत: हम इसके चारों ओर आराम कुर्सियों पर बैठ जाते थे जो हमें अब तक सरकार से मिल गई थीं। माँ बुनती रहती थीं, बहनें पढ़ती रहती थीं और अशोक भी पेंसिल के बने सुन्दर चित्र में रंग भरता रहता था। केवल मैं ही कुछ नहीं किया करता था।

इस बेकार बैठे रहने का प्रभाव कभी भी मेरे मस्तिष्क पर इतना अधिक नहीं पड़ा जितना मै इस समय अनुभव कर रहा था। इससे पहले पिंडी में काफी बड़ा मैदान था, रामसरन की मित्रता थी, मुर्गी के बच्चे थे और मछलियाँ थीं जो मेरे अकेले तथा बेकार रहने की बात को भुलाने के लिए काफी थीं। इसके अतिरिक्त पिंडी में स्कूल जाने का विचार तथा एक दिन अमेरिका जाकर पढ़ने की आशा के अतिरिक्त लारी का माडल निरन्तर इस बात की प्रेरणा देता था कि एक दिन हम लोग सपरिवार पर्यटन के लिए जाएंगे। लेकिन अब यह आशा भी अतीत में विलीन हो गई थी।

तीन वर्ष से कम में ही सरकारी नियम के अनुसार पचपन वर्ष की अवस्था में पिताजी को आवश्यक रूप से अवकाश ग्रहण कर लेना था, जिससे हमारे सरकारी निवास, तथा अन्य बहुत-सी सुविधाओं का, जो सरकारी कर्मचारी होने के नाते मिलती थीं, अन्त हो जाना था और चूँकि हम चल और अचल अपनी सारी सम्पत्ति लाहौर में खो चुके थे, उनके वेतन की एक-एक पाई बचाने का प्रयास अब किया जाता था, जिससे वह उनके अवकाश ग्रहण करने पर काम आ सके। अब हमारे अमेरिका जाने का कभी कोई जिकर भी नहीं होता था।

जिस समय हम लाहौर तथा पिंडी में थे, कम से कम एक संगीत शिक्षक के कारण समय कट जाता था, लेकिन यहाँ शिमला में वह भी सम्भव नहीं था। मेरे सारे संगीत-वाद्य तबला, तानपूरा, सितार तथा हारमोनियम लाहौर में ही रह गये थे। अत: यहाँ कोई भी शिक्षक मुझे कुछ सिखा नहीं सकता था। मेरी कुछ ब्रेल की पुस्तकें भी, जिनका संग्रह मैंने फिर स्कूल जाने पर लाहौर में किया था,

पाकिस्तान में ही रह गई थीं। यहाँ तक कि मेरे विद्युत ट्रांसफार्मर तथा बढ़ईगीरी के यन्त्र भी वहीं छूट गये थे।

मुझे बेकार बैठे धीरे-धीरे दो महीने बीत गए। और प्रत्येक दिन पिछले दिन से अधिक मन खिन्न रहने लगा। मेरी कुछ न कुछ करने की प्रबल इच्छा थी, लेकिन इस प्रदेश में कोई आकर्षण ही नहीं था। मैं अब अपना चौदहवाँ जन्म दिन मनाने के समीप पहुँच रहा था। ओम् भैया ने तो चौदह वर्ष की अवस्था में कालेज में जाना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन मैंने कुल तीन वर्ष की ही स्कूल की पढ़ाई की थी, जिनमें से ढाई वर्ष से कुछ अधिक बम्बई में बीते थे, जब मैं बहुत छोटा था।

एक दिन मैंने निम्मी बहन से किताब पढ़ने के लिए प्रार्थना की, जैसा श्री खन्ना ने सुझाव दिया था। लेकिन वह अपनी पढ़ाई अंग्रेजी में ही करती थीं और कान्वेन्ट स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के कारण उसने हिन्दी पढ़ना भी नहीं सीखा था। अतः इस कारण किसी को पढ़ते सुनने की आनन्द मिलने की सम्भावना भी खत्म हो गई। कारण मेरा अंग्रेजी का शब्द-ज्ञान भारतीय स्कूल में पढ़ने वाले एक नौ वर्ष के बच्चे के बराबर था।

अभी तक कोई अच्छे स्तर की हिन्दी 'ब्रेल' की पुस्तक नहीं थी। तथा अंधों के प्रयोग की लगभग सभी चीजें अंग्रेजी में ही लिखी हुई थीं। मैंने इंगलैंड की नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ ब्लाइंड को, मुझे कुछ किताबें भेजने के लिए लिखा था। जिससे मैं घर पर अंग्रेजी का अध्ययन ही कर सकूँ। इसके अतिरिक्त मुझे अभी तक ग्रेड टू ब्रेल भी नहीं आती थी, जिसमें सभी अच्छी पुस्तकें लिखी गई थीं।

यद्यपि मैंने अपनी मानसिक अवस्था के सम्बन्ध में अपने माता-पिता को कुछ नहीं बतलाया था, किन्तु वे जान ही गए। वह मुझे हमेशा एक कुर्सी पर अर्धवृत्त के अन्त में निरन्तर बैठे हुए देखते थे। जहाँ अक्सर अशोक अपने मेकानो सेट के साथ आता रहता था। कभी मुझे उसकी हवा की चक्की की कोई पत्ती झुकानी पड़ती थी या कोई पेंच कसना पड़ता था। लेकिन वे आशाहीन बात को उठाने का प्रयास मेरे ही समान नहीं करते थे।

एक दिन शाम को जब हम हमेशा के समान ड्राइंग रूम में बैठे थे, पिताजी मैदानी इलाके से वापस आकर मेरे लिए अचानक ही एक खुशखबरी लाए। लेडी माउण्टबैटन के द्वारा (जिनके साथ वह कैम्प तथा शरणार्थियों का दौरा करते थे) इन्हें एक अन्धे अंग्रेज सर क्लूथा मैकैन्जी का पता चला था, जो देहरादून स्थित

युद्ध के अंधों के सेन्ट डन्सटन होस्टल के संचालक थे। वह पहले उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे, जिन्हें मिलने का मेरे पिताजी को अवसर प्राप्त हुआ था तथा उनके ज्ञान और योग्यता का उनके ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा था।

पिताजी ने उनसे मेरे सम्बन्ध में बातें की थीं तथा उनसे मेरे डन्सटन स्कूल में प्रवेश करने के लिए प्रार्थना की थी। क्योंकि अन्धों की शिक्षा के लिए वह भारत में सर्वश्रेष्ठ संस्था समझी जाती थी। सर क्लूथा मैकैन्जी इसको अत्यधिक कठिन कार्य समझते थे, क्योंकि कोई भी सामान्य नागरिक पहले कभी इसमें दाखिल नहीं हुआ था तथा यह केवल युद्ध में अन्धे होने वाले सैनिकों के लिए था।

मेरे पिताजी ने मुझे कम से कम उनसे मिलने पर बल दिया क्योंकि इसके अतिरिक्त और किसी भी तरीके से उनमें मेरे प्रति भावना नहीं जगाई जा सकती थी। अतः जब वह फिर मैदान में गए तो मेरा सर क्लूथा से परिचय कराया गया। यद्यपि जो कुछ उन्होंने अंग्रेजी में कहा, मैं नहीं समझ सका, लेकिन मैंने पिताजी के साथ तुरन्त बातें कीं। यद्यपि अपनी मानसिक परिस्थिति के सम्बन्ध में मैंने बहुत ही कम बतलाया था लेकिन मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्होंने मेरी अवस्था पर काफी सन्तोष अनुभव किया। उन्होंने मेरे मामले को सरकार के पास सिफारिश के लिए भेजने का वचन भी दिया।

एक सप्ताह में ही मुझे बतलाया गया कि मेरे लिए विशेष रियायत दी गई है और मुझे सेन्ट डन्सटन स्कूल की प्रातःकालीन ब्रेल तथा टाइप की कक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति मिल गई है। बम्बई से लौटने के पश्चात् मैं कभी भी अपने परिवार से बिलग नहीं हुआ था और मेरी माता ने कहा था कि मुझे उनसे अलग होते हुए बड़ी प्रसन्नता अनुभव हो रही है।

सेन्ट डन्सटन दादर तथा एमरसन स्कूलों से इतना भिन्न था कि प्रारम्भ में तो मैं बिलकुल ही खो गया। यह तो एक बड़ा सुन्दर स्थान था, जो कभी गवर्नर जनरल की अंग रक्षक सेना का निवास स्थान था। तथा अन्य बहुत-से सेना शिविरों के समान ही शहर से बाहर स्थित था क्योंकि देर से नेत्र-ज्योति खोने वालों को घूमने में अधिक कठिनाई होती थी, अतः हर बैरक की सीमा पर छितरा कर तार लगाए गये थे। इसके भवन में डारमीटरी तथा कक्षाओं के कमरे थे।

कक्षा के कमरे का भी वातावरण वैसा ही स्वास्थ्यकर था जैसा मैदान का था, जिसमें बीसियों लीची के पेड़ लगे थे। वहाँ कमरे के दरवाजे पर लड़के पंखे की

डोरी खींचने के लिए नहीं थे तथा न ही गीली बेंत हाथ में लेकर शिक्षक पढ़ाते थे। मैं केवल दो शिक्षकों के सम्पर्क में आया। श्री कैमरान, जो टाइप सिखाते थे तथा श्री अडवानी, जो 'ब्रेल' पढ़ाते थे। दोनों ही अन्धे थे।

मुझे अपनी टाइप की कक्षा में पहले दिन जाने की याद है। श्री कैमरान ने वहाँ मेरा स्वागत किया था। वे एंग्लो सैक्शन थे तथा उनके शब्दों का उच्चारण करने का ढंग स्काटलैंड जैसा था। उनका हाथ मुझसे हाथ मिलाती बार काँप रहा था किन्तु था वह खुले दिल से। उन्होंने मेरा परिचय उस समय कक्षा में मौजूद एक विद्यार्थी से कराया। मुझे याद है कि मैंने जब आगे हाथ बढ़ाया था तो वह एक इस्पात के हुक से मानों जा टकराया था। उस व्यक्ति की दोनों भुजाएँ कुँहनियों पर से जाती रही थीं। वह टाइप करने के लिए अपने इस्पात के बने हुकों का प्रयोग करता था और मेरा विचार है, उसकी रफ्तार बीस-पच्चीस शब्द प्रति मिनट की थी। बाद में जब मेरा उससे अच्छा परिचय हो गया तो मैं अक्सर उसके हुकों के पेंच खोलकर उनमें दूसरी चीजें, जैसे चाकू अथवा फॉर्क, लगा दिया करता था।

श्री कैमरान से पढ़ने का एक विशेष लाभ हुआ, जिसकी कल्पना मैंने पहले नहीं की थी। वह केवल अंग्रेजी ही बोल सकते थे और चूंकि एक घण्टा मुझे अकेले उन्हीं के साथ बिताना पड़ता था इसलिए उन्हें मुझे टाइप के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा पढ़ाने का भी काफी समय मिलता था। श्री अडवानी मुझे दूसरे ग्रेड की ब्रेल पढ़ाते थे। जिसमें शब्दों के संक्षिप्त रूप थे। मैंने इसमें काफी उन्नति की तथा इसका काफी अभ्यस्त हो गया। यहाँ तक कि मुझे लेडी माउण्टबैटन के सम्मुख उनके आगमन के अवसर पर पढ़ने के लिए चुना गया।

देहरादून में मेरा रहना केवल लाभदायक ही नहीं रहा किन्तु बहुत अच्छा भी रहा। मुझे उनके छोटे-से पुस्तकालय से ब्रेल भाषा की पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ निकलवा कर पढ़ने की अनुमति मिल गई थी। तथा जीवन में प्रथम बार मैं कुछ पढ़ने में सफल हो सका था। यद्यपि मैं परिवार से अलग कर दिया गया था लेकिन अपनी स्वतन्त्रता का मैंने उपयोग किया तथा अब पहली बार मेरे गम्भीर अध्ययन की प्रगति हुई।

मेरा वहाँ लगभग कोई मित्र नहीं था क्योंकि सभी विद्यार्थी मुझसे आयु में बड़े वयस्क थे। उनमें से अधिकतर दूसरे महायुद्ध में अन्धे हो गए थे। वे अपने अंधे-

पन के साथ अभी अच्छी प्रकार सधे नहीं थे। तथा यही उचित समझा जाता था कि मैं उनके सम्पर्क में कम से कम आऊँ। निःसन्देह यदि काकाजी और पाम बहन यहाँ न होते तथा यदि ब्रेल की पुस्तकें न होतीं, जिनमें मेरा समय कट जाता था, तो मुझे घर की याद बहुत आती।

मैं सेन्ट डन्सटन होस्टल में कुल आठ महीने रहा। इसके बाद इसका संचालन सर क्लूथा मैकेन्जी के हाथों से कैप्टेन मोर्टिमर के हाथों में आ गया। उन्होंने सितम्बर १९४८ में पिताजी को लिखा कि सेन्ट डन्सटन में जो कुछ भी पढ़ाई थी वह मैंने पूरी कर ली है और अब मुझे उच्च शिक्षा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने यह भी बतलाया कि कई बार मैंने ब्रेल शिक्षक के रूप में भी अच्छा कार्य किया है। लेकिन उनका अनुमान था कि अवकाश प्राप्त तथा उत्साहरहित सैनिकों का सम्पर्क एक महत्वाकांक्षी बच्चे के लिए उपयुक्त नहीं था। उनका विचार था कि मैं अन्धेपन को स्थायी नहीं समझता था, इसलिए उन्नति के पथ पर अगला चरण उठाने की स्थिति में था। और चूंकि भारत में इससे अधिक शिक्षा उपलब्ध नहीं थी अतः अगले चरण से उनका संकेत स्पष्टतः पश्चिम की ओर था। एक ऐसा कदम जिसके लिए श्री कैमरान तथा सर क्लूथा मैकेन्जी के उदाहरण प्रेरित करते थे।

अक्टूबर १९४९ के एक रविवार को प्रातःकाल पिताजी और मैं शिमला की अपनी काटेज छोड़कर क्लार्क होटल की ओर चल पड़े। हम जल्दी ही घर से निकल पड़े थे जिससे प्रातःकालीन भ्रमण का भी कुछ आनन्द ले सकें और मुझे अपनी उत्तेजना को शान्त करने का भी काफी समय मिल जाय।

भ्रमण के दौरान हम श्री बाल्डविन के साथ अपनी सम्भावित भेंट के बारे में बातें करते रहे। वे एक विशाल अमेरिकन निगम के प्रतिनिधि थे।

'अमेरिकन साधारणतया आराम पसन्द व्यक्ति होते हैं। वे दूसरों की कठिनाइयों को समझने का प्रयास करते हैं और यदि किसी से कभी कोई एक-आध गलती हो भी जाए तो वे उस पर विशेष ध्यान नहीं देते। अतः घबराना मत।'

लेकिन मैं फिर भी घबरा गया था। सारी रात मैं बिस्तर पर करवटें बदलता रहा तथा अगले दिन की सम्भावित भेंट पर उत्तेजना तथा डर के साथ विचार करता रहा था क्योंकि श्री बाल्डविन ने अपनी कम्पनी के द्वारा मुझे कुछ वित्तीय सहायता दिलवाने का वचन दिया था। तथा उनकी कम्पनी भारत में अपने बढ़ते हुए व्यापार को ध्यान में रखकर कुछ भारतीय विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने पर

विचार कर रही थी।

'यह समझ लो कि यदि श्री बाल्डविन प्रभावित नहीं हुए तो कोई चिन्ता की बात नहीं। यह मत भूलो कि मैं तुम्हारी सहायता के लिए अभी जिन्दा हूँ। हम किसी न किसी प्रकार इसका प्रबन्ध कर ही लेंगे।' पिताजी कहते रहे।

'मैं ऐसा नहीं चाहता', मैंने उत्तर दिया, 'आपके उत्तरदायित्व बहुत अधिक हैं।'

'लेकिन मेरे बच्चे, मेरे उत्तरदायित्व नहीं हैं तो और क्या हैं? जिस दिन से तुमने अपनी नजर खोई, उसी दिन से मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं तुम्हें अन्य बच्चों के समान ही बल्कि उससे भी अधिक अच्छी शिक्षा दूंगा। तुम्हारी शिक्षा में काफी देर हो चुकी है।'

'हाँ, यह तो ठीक है किन्तु आपको पाकिस्तान बनने और उससे होने वाले परिणामों का तो कोई ज्ञान नहीं था।'

'अपने बाबाजी की परिस्थितियों को याद करो। उनकी स्थिति का कोई भी व्यक्ति कभी अपने बच्चों को इंगलैंड भेजने की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था, लेकिन फिर भी उन्होंने अपने विचारों को सफल किया। तुम लोगों को शिक्षा देने के लिए मैंने जो त्याग किया है, वह उस त्याग के सामने कुछ भी नहीं है। बेटा, मैं तुम्हें यह बतलाना चाहता हूँ कि शिक्षा हमारे खून तक में घर कर गई है।'

मुझे उनकी डायरी में लिखा वह वाक्य याद आ गया 'मैं वेद को शिक्षा देने के लिए अपनी आत्मा तक को बेच डालूँगा।' तथा तुरन्त मेरी आखें छलक उठीं।

आखिर हम क्लार्क होटल पहुँचे तथा पिताजी ने श्री बाल्डविन के पास अपना कार्ड जीने से ऊपर जाने के लिए चढ़ने से पहले भिजवाया।

श्री बाल्डविन ने मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुए पिताजी से कहा, 'क्या यही, वह लड़का है जिसके सम्बन्ध में आपने कहा था?'

'हाँ श्रीमान्, यही वह लड़का है।'

'आओ बेटा, बैठो, और वह मुझे कुर्सी के पास तक ले गए। मुझे अधिक अमेरिकनों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, क्योंकि पिताजी के अधिक-तर मित्र स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेज ही रहे थे। तथा केवल उस विशेष ढंग से अंग्रेजी भाषा के उच्चारण मात्र को सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी।

श्री बाल्डविन जरा तेजी से तथा साथ ही कुछ नाक के बल बोलते थे। अतः पहले तो उनकी बात को समझ न सकने के कारण कुछ हतप्रभ-सा रह गया लेकिन

उनके मित्रतापूर्ण व्यवहार से कुछ बेतकल्लुफ भी हुआ। पिताजी के साथ कुछ देर तक गपशप करने के उपरान्त वह मेरे पास आए और मेरी कुर्सी के पीछे खड़े हो गए।

'मेरे विचार से तुम अमेरिका जाना चाहते हो ?'

'मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

'क्या तुम जानते हो कि वह देश तुम्हारे घर से बहुत दूर है ?'

उन्होंने मुझसे भारत में प्राप्त की गई शिक्षा का ब्यौरा बताने को कहा। मुझे यह बतलाते हुए कुछ शर्म-सी आ रही थी कि मेरी शिक्षा कुल चार वर्षों से भी कम समय तक रही है। मेरे उत्तर को सुनकर वह चुप रह गए तथा मैं उनके असन्तोष को भाँप गया।

अन्त में उन्होंने कहा, 'तुम्हारे पास देखो, 'रीडर्स डाइजेस्ट' रखा है। क्या तुम मुझे उसमें से एक लेख पढ़कर सुनाओगे ?' अब उनके नर्मी के व्यवहार में कुछ व्यवहारिकता आ गई थी। उन्होंने अपने डैस्क में से ढूंढकर एक उसी महीने की प्रति निकाली।

मैंने एक लेख का पूर्वाभ्यास यह सोचकर कर लिया था कि वह मुझे अपनी इच्छानुसार कोई-सा भी एक लेख पढ़ने को कहेंगे लेकिन दुर्भाग्य से वह बोले, 'इसमें अमेरिकन युवकों तथा हास्योत्पादक पुस्तकों के सम्बन्ध में एक अच्छा लेख है। मेरे विचार से वह तुम्हारे लिए अधिक रुचिकारक रहेगा। क्या तुम उसे ढूंढ सकते हो ?'

अपनी काँपती अंगुलियों से मैंने एक बार विषय-सूची को टटोलने का असफल प्रयास किया तथा एक बार फिर तनिक धीरे-धीरे यही प्रयास किया। मुझे अंगुलियों के नीचे आने वाले शब्दों का बड़ी कठिनाई से आभास हो रहा था। इस सभी कार्य के दौरान में वह मेरी कुर्सी के पीछे खड़े रहे जिससे मेरी घबराहट बढ़ती रही और मैं यह सोचता रहा कि वह मेरी काँपती अंगुलियों को देख रहे होंगे। जैसे ही मैं उस लेख पर पहुँचा मैंने चिन्हों पर अपनी अंगुलियों को दबा दिया। अक्षरों को पढ़ने के लिए मैंने अपना हाथ अपनी ओर खींच लिया। पहले ही वाक्य पर मैं घबराहट के कारण हकला गया। लेकिन न तो पिताजी ने तथा न ही उन्होंने मेरी कुछ सहायता की। जब मैं मैनिफेस्टिड, जुविनाइल, डिलिक्वैंसी आदि शब्दों तक पहुँचा तो मुझसे उनका ठीक उच्चारण भी कठिनाई से हो सका, अर्थ समझना

तो मेरे लिए असम्भव ही था। एक अच्छे प्रवाह के साथ पढ़ने की बजाय मैं शब्दों को वाक्यों से अलग करके पढ़ने लगा तथा उस समय विराम चिन्हों का भी ध्यान मुझे नहीं रहा। एक स्थान पर उन्होंने कहा कि क्या मुझे एक विशेष वाक्य का अर्थ आता है? उसका अर्थ मुझे नहीं आता था।

इसके उपरान्त एक टाइपराइटर मँगाया गया और उन्होंने उसी लेख से मुझे बोलना शुरू कर दिया। मैं अब विचार रहा था कि यदि कहीं अँगुलियों का कम्पन रुक जाए तो ठीक टाइप हो सके। मैंने टाइप का प्रारम्भ बीच की लाइन के स्थान पर तीसरी लाइन का 'होम रो' के रूप में प्रयोग करके किया। इसका मुझे ध्यान भी नहीं आया। मैंने पूरा टाइप कर दिया और बैक स्पेस करके फिर दोबारा टाइप किया। इस पैंतालीस मिनट की भेंट के उपरान्त मैं यह भली प्रकार समझ गया था कि मैं उस परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा हूँ।

पहली रात कम सोने के कारण मेरा सर पहले ही भारी हो रहा था और मैं पिताजी तथा श्री बाल्डविन के बीच होने वाली वार्ता को पूर्णरूप से नहीं समझ सका, लेकिन मैंने एक वाक्य अवश्य समझ लिया जिसने मेरी सारी आशाओं पर तुषारपात करके मुझे पूर्ण रूपेण हताश कर दिया।

'डाक्टर, मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि इस लड़के को अभी यहीं रहना चाहिए।'

इसके उपरान्त वह कहते रहे कि मेरी अत्यधिक अल्प शिक्षा उस समय मेरे मार्ग में बाधक हो जाएगी जब मुझे अन्य लड़कों के साथ जो छः वर्ष की आयु से ही शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, स्पर्धा करनी पड़ेगी।

'लेकिन मैं अपने देश में कम्पनी के अपने एक मित्र को लिखूँगा तथा उसे आपकी पूर्ण स्थिति से अवगत करा दूँगा। और देखें, वे आपके लिए क्या कर सकते हैं?'

यह वाक्य इसलिए नहीं कहा गया था कि वे भविष्य में सचमुच मेरे लिए कुछ करेंगे, बल्कि केवल शिष्टाचार के नाते कहा गया था। इसके बाद मैं और पिताजी लौट आये।

जैसे ही हम सीढ़ियों से नीचे उतरे तो मैंने अत्यधिक निराशा का अनुभव किया। उन विद्यार्थियों के साथ मुझे मुकाबला करना पड़ेगा जो छः वर्ष की अवस्था से अध्ययन कर रहे हैं। उनकी तुलना में मेरी शिक्षा क्या थी? गणित का मेरा ज्ञान लगभग शून्य ही था। यद्यपि सेन्ट डन्सटन में पढ़ने के पश्चात् मेरी अंगरेजी में काफी

सुधार हुआ था, लेकिन फिर भी वह बहुत कमजोर थी। 'ब्रेल' पढ़ने में भी मेरा अनुभव कम ही था। श्री खन्ना से अपनी शिक्षा की अनिश्चितता के सम्बन्ध में बातें करने के उपरान्त भी मुझे इतनी निराशा नहीं हुई थी जितनी इस भेंट करने पर हुई।

'सफलता', पिताजी कह रहे थे, 'दृढ़ निश्चय तथा धैर्य पर निर्भर करती है और असफलताओं से निराश नहीं होना चाहिए, बल्कि और अधिक उत्साह से आगे बढ़ना चाहिए। मैं तुम्हारे साथ हूँ तथा आर्थिक सहायता मिले या न मिले, तुम इंगलैंड अथवा अमेरिका अवश्य जाओगे। कहीं दाखिला न हुआ तो भी जाओगे। मेरे बच्चे, यह मत भूलो, मैं दाखिले के विश्वास के बिना इंगलैंड गया था। यदि तुम एक बार वहाँ पहुँच गए, तो तुम्हें वापस नहीं आना पड़ेगा।'

उनके शब्द प्रभावहीन नहीं थे। उनके स्वर से निराशा नहीं झलकती थी तथा वह उसी प्रकार पूर्ण विश्वास से बोल रहे थे जैसे हमेशा बोलते थे। जैसे मैं उनका, एक सरजन का, बड़ा हाथ पकड़े हुए चल रहा था और मुझे सान्त्वना तथा सन्तोष अनुभव हो रहा था। उनके विश्वास में प्रभावोत्पादकता तथा प्रसार की क्षमता थी। और विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने ज्ञान की अपूर्णता होने पर भी तथा उस निराशाजनक भेंट के उपरान्त भी मैंने आशा का परित्याग न करने की प्रतिज्ञा की। मैंने विदेशी अधिकारियों से पत्र-व्यवहार करने का तथा अपने प्रयासों को बढ़ाने तथा शिक्षा प्राप्त करने के लिए दुगना श्रम करने का निश्चय कर लिया।

अपनी इस निराशा में मैंने पंडित नेहरू को भी एक लम्बी चिट्ठी लिखी। मैंने उन्हें पाकिस्तान में हुए अपने नुकसान के सम्बन्ध में, अपने शिक्षा के प्रति अनुराग के सम्बन्ध में तथा अपनी बढ़ती हुई निराशा के सम्बन्ध में लिखा तथा उससे उनकी सहायता तथा निर्देशन के लिए याचना की। मैंने पत्र, स्पेलिंग ठीक करके, डाक में डालने के लिए पिताजी के एक क्लर्क को दे दिया।

'क्या अभिलाषा है यह आपकी साहब।' उसने पूछा, 'आप घर को छोड़कर ऐसे स्थानों पर क्यों जाना चाहते हैं जहाँ कोई भी आपकी देख-भाल नहीं कर सकेगा? जितनी भी शिक्षा की आपको आवश्यकता है वह आपको यहाँ भी मिल सकती है। आँखों वाले बच्चों के स्कूलों में शिक्षा आप प्राप्त कर सकते हैं।'

मैं उसे यह बताते समय बड़ा हताश हुआ कि मैं इसका भी प्रयास कर चुका

हूँ। मैंने सात स्कूलों में ऐसे दयालु शिक्षकों को पाया था जो अंधे लड़कों की कार्य-शक्ति और कर्मठता पर विश्वास करने के बजाय उन्हें दया की ही दृष्टि से देखते हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि अंधे बच्चों को शिक्षा देने में वे नितान्त अनुभवहीन थे और अपनी अनुभवहीनता को कम करने की कल्पना-शक्ति भी उनमें न थी। उन्हें इस बात का भय था कि हम उनके कक्षा के अनुशासन में विघ्न स्वरूप होंगे।

'कृपा कर इस चिट्ठी को डाक में डाल दीजिए', मैंने उठते हुए कहा, 'इसकी रजिस्ट्री कर दीजिए और रजिस्ट्री की रसीद मुझे दे दीजिये।'

मुझे वह रसीद मिल गई तथा दो सप्ताह पश्चात् शिक्षा मंत्रालय से लापरवाहीपूर्ण स्वीकृति-पत्र भी मिल गया। वह कुछ भी करने में असमर्थ थे।

हम सब एकमत हैं | १७

'इस बात पर हम दोनों सहमत हैं कि ग्रापके लड़के को अपने जीवन के सबसे अधिक निर्माणात्मक वर्षों में इंगलैंड नहीं ग्राना चाहिए। हमारे यहाँ उच्च माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने के लिए वारसेस्टर में दो भारतीय विद्यार्थी थे; भारत लौटने पर दोनों को ही भारतीय जीवन के रीति-रिवाजों को अपनाने में कठिनाई हुई तथा वह भारतीय जनता की रुचि से अलग हो गए हैं।

'...अब उनको वापस इंगलैंड बुलाना उन पर कोई अनुग्रह करना भी नहीं है।'

'...यह ग्रावश्यक है, उसे पाश्चात्य जीवन के सीधे प्रभाव में इतनी जल्दी न रखा जाय।'

ये पत्र थे जो अमेरिका तथा यूरोप के शिक्षा विशेषज्ञों ने वहाँ उच्च शिक्षा के लिए मेरे प्रार्थना-पत्रों के उत्तर में भेजे थे। उनसे एक ही निराशाजनक स्थिति उत्पन्न होती थी और ऐसा प्रतीत होता था, उन सब पत्रों को एक ही लेखक ने लिखा है।

इसके अतिरिक्त उन्होंने एक और प्रश्न किया था, जिसके लिए न तो मेरे पास कोई उत्तर था और न पिताजी के पास। 'वह शिक्षा प्राप्त करके क्या करना चाहता है ? क्या वह किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ बनना चाहता है ? इनका एक ही लगभग सन्तोषजनक उत्तर हम दे सकते थे और वह था पाश्चात्य संगीत सीखने की कामना। जब से मैंने दादर छोड़ा था, मुझे भारतीय संगीत सिखलाया गया था तथा इस दिशा में मैंने पर्याप्त प्रगति की थी। मेरी बहनों के संगीत शिक्षक मास्टर कोहली अंधे होते हुए भी पंजाब के अत्यन्त सफल संगीतज्ञों में गिने जाते थे। अतः यह सोचा जाता था कि मैं भी इससे अपनी रोजी भली प्रकार कमा सकूंगा।

इस सम्भावना का मेरे पिताजी पर उस समय और भी अधिक प्रभाव पड़ा जब उन्होंने देखा कि पाश्चात्य शैली का पुट लिए हुए फिल्मों के लिए बनाए गए

गाने भारतीय जनता द्वारा खूब पसन्द किए जाते हैं। उनका विचार था कि शायद मैं भारतीय संगीत के अग्रगण्य व्यक्तियों में हो जाऊँ, जो लगभग पूर्णतया लय तथा ताल के साथ गाया जाता है तथा इस प्रकार पूर्व के रसात्मक संगीत तथा पश्चिम की एकरूपता को एकाकार कर सकूँ।

इस धन्धे को अपनाने में मेरे सम्मुख कुछ कठिनाइयाँ भी थीं। मुझे पाश्चात्य संगीत का बिल्कुल ज्ञान न था। तथा सम्भव था कि पाश्चात्य स्तर के अनुसार मुझमें योग्यता ही न हो। अतः मैंने पश्चिम के शिक्षा विशेषज्ञों के सम्मुख स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया कि मुझे इसका बिल्कुल ज्ञान नहीं था कि किस प्रकार की शिक्षा मैं प्राप्त करना चाहता हूँ और मेरा शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य क्या था। यहाँ यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि इससे मेरे वहाँ दाखिले की सम्भावना बढ़ी नहीं। मेरी कामना अपने भाई तथा बहनों के समान ही पूर्ण स्कूली शिक्षा ग्रहण करने की थी। यदि मैं इसके उपयोग से अनभिज्ञ था तो इसका कारण मेरा बहुत कम आयु का होना था तथा बहुत कम अंधे भारत में इसे प्राप्त कर सके थे।

जब सर्वप्रथम मैंने पश्चिम के स्कूलों में दाखिला लेने का प्रयास किया तो मेरे मार्ग में सबसे पहली कठिनाई तो यह थी कि प्रारम्भ किस प्रकार किया जाए तथा किसके साथ सम्पर्क स्थापित किया जाए। केवल पर्किन्स ही एकमात्र ऐसी संस्था थी जिसके बारे में मैं पहले सुन चुका था, अतः मेरा सर्वप्रथम पत्र उन्हें ही लिखा गया। इसके बाद मैंने अपनी ब्रेल की पुस्तकों के मुख पृष्ठों पर उनके प्रकाशकों के पते देखने शुरू किए क्योंकि सेन्ट डन्सटन स्कूल में मुझे पता चला था कि वे संस्थाएँ केवल पुस्तकें ही प्रकाशित नहीं करतीं किन्तु अन्धों के शिक्षा-प्रसार में पर्याप्त तथा प्रत्यक्ष दिलचस्पी लेती हैं।

अतः मैंने लन्दन में अन्धों की राष्ट्रीय संस्था को तथा अमेरिका में लुईविले (कैन्टुकी) अमेरिकन प्रिंटिंग हाउस को लिखा। इन्हीं पत्रों के मुझे उपरोक्त उत्तर प्राप्त हुए। इसके पश्चात् इसके प्रतिकूल परामर्श को प्राप्त करने के सभी प्रयत्नों ने मेरे इस विश्वास की पुष्टि कर दी कि मुझे भारत नहीं छोड़ना चाहिए।

मैंने अत्यधिक मनोयोग के साथ अपनी ब्रेल की पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं (मैगजीन्स) में और संस्थाओं के पतों को ढूँढ़ने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप मुझे केवल दो ही और संस्थाओं का पता चला। एक एडिनबर्ग में तथा दूसरी

पेरिस में। एडिनबर्ग वाली संस्था वास्तव में एक मानसिक चिकित्सालय थी, जिसने फिर राष्ट्रीय संस्था की ओर से निर्देश दिया। पेरिस भेजे गये पत्र में मैंने कहा था कि फ्रांस में पढ़ने की मेरी हार्दिक इच्छा है यद्यपि मुझे फ्रेंच भाषा का एक शब्द भी नहीं आता, जिसकी ओर उन्होंने तुरन्त संकेत किया। अतः जब तक मुझे एक और विचार नहीं सूझा, मैंने इसे अन्त ही समझ लिया था।

मैंने अंधों के लिए निर्मित अमेरिकन प्रिन्टिंग हाउस को अपने लिए और अधिक पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की सूची भेजने के लिए लिखा, जिससे मैं अपने पढ़ने के लिए और अधिक पुस्तकें तथा पत्रिकाएँ छाँट सकूँ। मेरा विचार था कि इस सूची में अमेरिका के और ऐसे स्कूलों के पते होंगे जो अपने ब्रेल भाषा में निकाले जाने वाले पत्रों को प्रिन्टिंग हाउस में छपवाते थे। इसके आने पर मैंने तुरन्त ही सभी छपी हुई संस्थाओं को यह बतलाते हुए पत्र प्रेषित कर दिये, कि केवल उन्हीं के स्कूलों से मेरी आवश्यकताएं पूरी हो सकती है। दो महीने में ही मैंने तीस संस्थाओं को पत्र लिखे और उनके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। मैंने डाकिए से पहले हमारी डाक को बाँटने का वायदा करा लिया तथा हर बार मैं काँपते हाथों से इन पत्रों को निम्मी बहन के पास ले जाता था। वह उन्हें तुरन्त ही खोलकर पढ़ती थीं तथा इसके उपरान्त होने वाली निस्तब्धता से मुझे पता चल जाता था कि एक और अप्रिय तथा निराशाजनक समाचार आया है। प्रारम्भ में तो वह कहती थीं अभी सारा पत्र समाप्त नहीं हुआ, लेकिन धीरे-धीरे निराशा के साथ उसे समाप्त कर अंत में सुबकियाँ भरने लगती थीं। उनके सन्मुख तो मैं वीर पुरुष के समान साहसी बना रहता था किन्तु बाद में कमरे में जाकर मेरा साहस टूट जाता था और मैं रोने लगता था।

इन सर्वमान्य सम्मतियों से कोई भी कोशिश छोड़ बैठता, लेकिन हमने इनसे प्रभावित होकर अपने दृष्टिकोण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आने दिया। यहाँ तक कि मैं भी अपनी अभिलाषाओं से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण उनके कथन के औचित्य का मूल्यांकन नहीं कर सका। पिताजी को दैनिक कार्यों में एक वास्तविक दृष्टिकोण अपनाने वाला होने के कारण मुझे बाहर जाने की इच्छा से परित्याग करने का परामर्श देना चाहिए था किन्तु उन्होंने बिलकुल इसके विपरीत किया। उन्होंने स्वयं बहुत-से शिक्षाविदों को पुनर्विचार करने के लिए लिखा।

मैं इस उत्सुकतापूर्ण खाली समय का सदुपयोग कुछ ब्रेल की पुस्तकें, जो मुझे

सेन्ट डन्सटन, अमेरिका तथा इंगलैंड से मिलती थीं, पढ़ने में करता था। यदि मेरा पत्र-व्यवहार अव्यवस्थित था तो मेरी पढ़ाई भी क्रम-बद्ध तथा निर्देशित नहीं थी। मैं ब्रेल बाप्टिस्ट और डिस्कवरी जैसी विभिन्न धार्मिक पत्रिकाएँ, विभिन्न डाइजेस्ट, तथा कुछ कहानियाँ और उपन्यास पढ़ता था। अतः मुझे अंगीठी के पास अर्धवृत्त की अन्तिम कुर्सी पर खाली हाथ न बैठने का संतोष तो कम से कम मिलता ही था।

अंत में इस निरन्तर प्रतीक्षा के निराशाजनक तीन महीनों का अंत होता नजर आया। मेरे सभी पते समाप्त प्रायः हो चले थे। तभी मेरे चचेरे भाई आनन्द का जिनके यहाँ हमने लाहौर से आने पर कुछ समय बिताया था, आगमन हुआ। यद्यपि वह पिताजी के भतीजे थे, लेकिन फिर भी हमारे लिए सगे भाई के समान ही थे। उनकी शिक्षा-प्राप्ति में पिताजी ने उनकी महत्वपूर्ण सहायता की थी। वह हाल में ही अमेरिका से वापस लौटे थे तथा मुझे ऐसे व्यक्ति से, जो ऐसे स्थान से आया हो जहाँ जाने की मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा थी, बातें करने में बड़ा सन्तोष मिलता था। मैं उनके इन अनुभवों से रेडियो के पास बैठकर बी.बी.सी. खबरें आस्ट्रेलिया या भारत के अंगरेजी कार्यक्रमों को सुनते हुए लाभ उठाता था।

एक दिन मेरे अमेरिका जाने का विषय छिड़ गया तथा पिताजी ने इस सम्बन्ध में उनसे परामर्श माँगा।

'क्या आप मेरा निष्पक्ष तथा ईमानदारी के साथ मत जानना चाहते हैं ?' वह बोले।

'हाँ'।

'मैं नहीं समझता कि उन्हें जाना चाहिएँ। मान लीजिये इन्हें वह सब शिक्षा मिल जाती है जो यह चाहते हैं, तो भी यह उसका क्या करेंगे ? आप स्वयं जानते हैं, कितने बी० ए०, एम० ए०, नवयुवक जो भली प्रकार देख सकते हैं, काम न मिलने के कारण घूमते फिरते हैं।

'अपने स्वजनों से इतने अधिक समय तक अलग रहना इनके लिए अत्यधिक हानिकारक रहेगा। उनकी दुनिया तथा उनका जीवन क्रम बहुत भिन्न है। तथा परस्पर विरोधी सामाजिक पृष्ठभूमि इन्हें कहीं के भी उपयुक्त नहीं रहने देगी। यह न यहाँ के रहेंगे और न ही वहाँ के। मेरा विचार है, यदि यह भारत में ही

रहेंगे तो अधिक प्रसन्न रहेंगे। जो भी थोड़ी-बहुत शिक्षा इन्हें मिलती हो वह इन्हें प्राप्त कर लेनी चाहिए तथा संगीत पर इन्हें विशेष ध्यान देना चाहिए। यह आत्मनिर्भर से कुछ अधिक हो जायेंगे। संगीत से इन्हें आत्मसन्तोष मिलेगा और हम सबके निकट भी रहेंगे जिससे आवश्यकता होने पर हम भी इनकी सहायता कर सकेंगे।'

मेरा दिल बैठ गया। मैं जानता था, पिताजी मेरे चचेरे भाई आनन्द की राय का कितना आदर करते थे। जो कुछ भी उन्होंने कहा वह काफी उचित और सत्य प्रतीत होता था। वह हाल में ही अमेरिका से लौटे थे तथा वह अमेरिकन प्रिंटिंग हाउस भी गए थे। मुझे यह भी ज्ञान था कि हमारे लगभग सभी सम्बन्धियों की यही राय थी, लेकिन मेरी इच्छा और पिताजी के निश्चय को जानकर साफ-साफ नहीं कहते थे। अन्ध शिक्षा के सभी कार्यकर्ताओं की भी यही दलील थी।

फिर भी एक बात थी। आनन्द भाई ने सुख की बात की थी। रात को बिस्तर पर लेटकर मैं इस सम्बन्ध में अक्सर सोचा करता था। क्या मैं कभी पंडित जी के समान ही संगीत पढ़ाकर प्रसन्नता तथा सुखपूर्वक रह सकता था ? क्या कभी मैं और अधिक अध्ययन करने की अपनी लालसा को छोड़ सकता था ? यदि मेरा जन्म एक ऐसे परिवार में न होता जहाँ कोई भी व्यक्ति शिक्षा के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं करता था, और मैं स्वयं को सबसे अलग महसूस करता था और यदि मेरे पश्चिमी देशों में अध्ययन करने की बात ही न उठती तो मैं शायद मास्टर कोहली के समान ही संगीत शिक्षक बनकर भी खुश रहता।

पूर्व अनुमानानुसार अगले दिन, पिताजी ने, जब हम अकेले थे, बातचीत प्रारम्भ की।

'तुम जानते हो,' वह बोले, 'जो कुछ थोड़ा-सा रुपया मैंने तुम्हारे लिए रख छोड़ा है उसका प्रयोग तुम जैसे चाहो कर सकते हो। तुम भरातीय संगीत की अपनी शिक्षा चालू रख सकते हो तथा फिर भी तुम्हारे पास इतना काफी रुपया बच जाएगा जो तुम्हें एक छोटी-सी दुकान खोलने के लिए पर्याप्त होगा। इस सम्बन्ध में मेरे मन में कोई शंका नहीं है कि इस प्रकार तुम आत्मनिर्भर तथा स्वतन्त्र हो जाओगे।

'इसके अतिरिक्त जैसा तुम्हारे चचेरे भाई आनन्द कहते हैं, तुम हम सबके पास भी रहोगे। बेटा, घर छोड़ना कोई आसान बात नहीं है। मैंने अपनी अल्पायु

में ऐसा किया था लेकिन मुझे बहुत कठिनाई हुई थी। तुम्हारे लिए तो यह और भी कठिन होगा।

'पश्चिम जाने का प्रयोग प्रत्यधिक जोखिम से भरा हुआ है। हमें यह नहीं मालूम, किस प्रकार तुम अपनी शिक्षा की दृष्टि से दूसरे लड़कों की तुलना में ठीक रहोगे। तुम्हें पाँचवीं या छठी कक्षा से प्रारम्भ करना पड़ेगा। तथा अधिक से अधिक मैं तुम्हारा खर्चा तीन या चार वर्ष तक बर्दाश्त कर सकता हूँ। और यदि कुछ रुपया उधार लिया तो सम्भवतः एक और वर्ष। लेकिन उस समय तक तुम हाई स्कूल तक की शिक्षा भी समाप्त नहीं कर सकोगे। इसी बीच सारा रुपया समाप्त हो जाएगा और तुम भारतीय संगीत की अपनी शिक्षा को भी पूरा नहीं कर सकोगे न ही मेरे पास तुम्हारे लिए कोई दुकान खुलवाने के लिए कुछ बचेगा। यदि पाकिस्तान न बना होता तो मैं तुम्हें तुम्हारी मनचाही शिक्षा दे सकता था। लेकिन अब स्थिति बिल्कुल भिन्न है। अपने घर तथा देश में रहने के अयोग्य रहने से अधिक भयंकर तथा खराब बात दूसरी नहीं हो सकती।'

मुझे शरणार्थी-शिविर याद आ गया। भुजाहीन तथा कान कटे हुए शरणार्थी की आकृति मेरी नजरों के सामने से घूम गई। बहुतों ने इससे भी बहुत अधिक खोया था। पाकिस्तान के निर्माण में जिन लोगों ने अपनी सम्पत्ति तथा जीवन की आहुति दी, उनके सामने मेरी अभिलाषा तो बिल्कुल नगण्य थी।

'मैं अपने को किसी भी प्रकार किसी भी स्थिति में समझा लूँगा' इस कटु सत्य का घूँट पीते हुए मैंने कहा।

पिताजी ने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रखा, 'सम्भव है कुछ अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाएँ लेकिन इस समय तो यह अत्यधिक कठिन तथा निराशाजनक ही प्रतीत होता है।' वह बोले।

'क्या मैं केवल कुछ उत्साहवर्द्धन के लिए ही अभी भी विदेशी स्कूलों को लिखता रह सकता हूँ' मैंने पूछा।

'अवश्य', वह बोले।

'मैं विश्वास दिलाता हूँ, डैडी जी', मैंने कहा, 'मैं यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहना सीखने का प्रयत्न करूंगा।'

हाँ | १८

सुबह सात का समय था और मुझे ओम् भाई ने आकर जगाया जो मेरे बिस्तर पर झुककर भाप से तर खिड़की को बाहर देख रहे थे। तुरन्त ही मेरी बहनें भी उसके साथ आकाश में गुब्बारे को ढूँढ़ने में लग गईं जो सुरक्षापूर्ण स्केटिंग का चिन्ह था।

'मेरा विचार है, पिछली रात बर्फ नहीं जमी,' उम्मी ने निराशाजनक आवाज में कहा।

'वह देखो' ओम् भाई चिल्लाए और इस चिन्ह को देखकर सबके मुख पर प्रसन्नता की आभा दौड़ गई।

वे सूर्य की धूप का सेवन करने के लिए पार्टीशन करके बनाये गये मेरे कमरे के बाहर चले गए। ओम् को अपने स्केटिंग के जूते नहीं मिल रहे थे, अतः मैं उसकी सहायता के लिए उठा। घर में अत्यधिक ठण्ड थी तथा खिड़की में से शीतल वायु का एक तेज झोंका उसी समय आया। आखिर सभी सम्बन्धित वस्तुओं का संग्रह किया गया और सब भारी-भारी कोट पहनकर चल दिए।

आजकल लगभग प्रतिदिन ही मौसम साफ रहता था और बर्फ जमाने के लिए पर्याप्त ठण्डा भी रहता था। मेरी बहनें तथा ओम् भाई कम से कम तीन घंटे प्रातः-काल तथा तीन घण्टे सायंकाल स्केटिंग करते थे। केवल मैं ही शिमला की पहाड़ियों के इस मनोरंजक खेल में भाग नहीं ले सकता था। पहले तो वे मुझे स्केटिंग के लिए बनाए गए बर्फ के मैदान में ले जाते थे और मैं वहाँ खड़ा हुआ मधुर संगीत और स्केटिंग के खिलाड़ियों के शोर को सुनता रहता था। लेकिन अब मैंने वहाँ जाना बन्द कर दिया था। इसके बजाए मैं पहाड़ी के सिरे पर अकेला खड़ा रहूँ और कभी-कभी कोई स्केटिंग का खिलाड़ी केवल दो-चार शब्दों के रूप में मुझसे बात कर ले, मैं घर पर ही अकेला रहना अधिक पसन्द करता था।

मैं कुछ देर के लिए काँपता हुआ खुले दरवाजे के पास खड़ा रहा और स्केटिंग

के बर्फ के मैदान की ओर जाते हुए खिलाड़ियों की दूर से आती हुई आवाजों को सुनता रहा। अन्त में मैंने द्वार बन्द कर दिए और फिर से बिस्तर पर लेट गया। यही केवल ऐसा स्थान था जहाँ अपने शरीर को कुछ गर्म कर सकता। लेकिन मैं दोबारा सो नहीं सका। सबके चले जाने तथा माताजी और अशोक के न उठने के कारण घर वास्तव में बिल्कुल निर्जन मालूम पड़ रहा था।

मैंने अपनी ब्रेल की पुस्तक उठाकर पढ़ने का प्रयास किया लेकिन अंगुलियों के ठण्ड से अकड़ जाने के कारण पढ़ न सका। लगभग दो घण्टे तक मैं वहाँ लेटा रहा और सोचता रहा, अब कौन-से स्कूल को लिखना चाहिए।

मैं सूची में लिखे कई स्कूलों को छोड़ गया था जिनमें अधिकतर अमेरिका के दक्षिणी भाग में थे। क्योंकि मैंने इन राज्यों का नाम भी नहीं सुना था और मुझे यह भी पता नहीं था कि वह कहाँ-कहाँ स्थित हैं, अतः वहाँ जाने की मेरी कोई विशेष रुचि भी नहीं थी। मैं बोस्टन, न्यूयार्क, शिकागो अथवा सनफ्रान्सिस्को जाना चाहता था। मेरे लिए यही अमेरिका था। फिर भी मैंने उनको भी लिखने का निश्चय कर लिया।

मैंने अन्धों के लिए अर्कन्सास स्कूल को एक पत्र लिखा, जिसमें अपनी अल्प योग्यता को यथाशक्ति अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से लिखने का प्रयास किया।

शिमला
३१ जनवरी, १९४९

दि मैनेजर,
अर्कन्सास स्कूल फार दी ब्लाइन्ड,
लिटिल राक,
आर्क।

प्रिय महोदय,

मैं अभाग्यवश १५ वर्ष की आयु का एक अन्धा लड़का हूँ। मेरी अमेरिका आने की तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने की हार्दिक इच्छा है। मैं निम्नलिखित विषय जानता हूँ।

अंग्रेजी,
गणित,

मैं ब्रेल पढ़ सकता हूँ और लिख भी सकता हूँ तथा मैं साइटिड टाइप टच

प्रणाली से जानता हूं। मैं संक्षिप्त तथा सार रूप में लिखना भी जानता हूँ। मैंने निम्नलिखित संस्थाओं से शिक्षा पूर्ण कर ली है।

१—अन्धों के लिए दादर अन्ध विद्यालय,

२—अन्धों के लिए एमरसन अन्ध संस्था, बम्बई, भारत लाहौर, पाकिस्तान

३—महायुद्ध के अन्धों के लिए सेन्ट डन्सटन विद्यालय, देहरादून, भारत

दादर अंध विद्यालय में मैं लगभग चार वर्ष तक पढ़ता रहा हूँ। वहाँ मैंने ब्रेल लिखना और पढ़ना तथा अंग्रेजी का अध्ययन किया है। मैं वहाँ अपने पिताजी के द्वारा कुल साढ़े पाँच वर्ष की अवस्था में ही भेज दिया गया था। चार वर्ष की आयु में ही मैं मैनिन्जाइटिस के कारण अन्धा हो गया था। अन्धों के जिए एमरसन शिक्षण संस्था में मैंने एक वर्ष तक अध्ययन किया है। जहाँ XXI केवल AXXM गणित पढ़ते थे तथा कुछ स्थानीय भाषा का भी अध्ययन करते थे। इसके पश्चात् मुझे सेन्ट डन्सटन में, जो महायुद्ध में हुए अंधे सैनिकों के लिए था, भेजा गया। केवल महायुद्ध के अन्धे सैनिकों के लिए होने के कारण मुझे एक नागरिक के रूप में वहाँ प्रवेश मिलने में बड़ी कठिनाई हुई तथा मेरा वहाँ दाखिला तक असाधारण रूप में हुआ था। मैं वहाँ केवल एक वर्ष रहा लेकिन मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि वहाँ मैंने अच्छी उन्नति की। मैं आठ महीने तक सेन्ट डन्सटन होस्टल में तथा शेष समय अपने एक सम्बन्धी के पास रहा। मैं सेन्ट डन्सटन से मिला अपना एक प्रमाण-पत्र साथ नत्थी करके भेज रहा हूँ जिससे आपको मेरी वर्तमान स्थिति का ज्ञान हो जाए। सेन्ट डन्सटन भारत में अन्धों के लिए सबसे बड़ी संस्था है। और अब भारत में मेरे लिए और अधिक शिक्षा की कोई सम्भावना नहीं है क्योंकि मैंने सेन्ट डन्सटन से वह सब सीख लिया है जो कुछ भी वह मुझे पढ़ा सकते थे। यदि आप मुझे अपना प्रवेश-पत्र का फार्म तथा व्यौरा भेज दें तो मैं आपका अनुग्रहीत रहूंगा। मेरी इच्छा है कि आपकी नियमावली तथा प्रवेश-पत्र मेरे पास ही रहें, फिर चाहे आप मेरे बारे में अन्य बातें विस्तारपूर्वक पूछें या नहीं। इस सम्बन्ध में ही काफी विलम्ब हो गया है, अतः मैं और अधिक विलम्ब नहीं करना चाहता। मुझे पूर्ण निश्चय है कि आप इस सम्बन्ध में मेरी सहायता करेंगे। इस पत्र को मैं स्वयं टाइप कर रहा हूँ। टाइप करना तथा ब्रेल जी.आर-२ मुझे सेण्ट डन्सटन में सिखाया गया था। आपकी संस्था में शिक्षा प्राप्त करने के लिए मेरे पिताजी कुछ भी खर्च करने में संकोच नहीं करेंगे। मैं आपका कोर्स पूर्णरूप से पढ़ना चाहता हूँ।

मैं अपना एक चित्र भी नत्थी कर रहा हूँ। मेरा विचार है आप इसे पसन्द करेंगे। क्या आपके यहाँ विश्वविद्यालय की भी परीक्षाएँ होती हैं?

मेरा विश्वास हैं मुझे 'हाँ' में उत्तर मिलेगा। साथ ही मैं शीघ्र उत्तर की आशा करता हूँ।

सधन्यवाद,

आपका शुभाकांक्षी
पुत्र—डा० ए० आर० मेहता,
उप संचालक, स्वास्थ्य सेवा
अरनेस्टन (अपर प्लेट)
शिमला—ई,
पूर्वी पंजाब (भारत)

मैंने यह पत्र इस आशा से लिखा था कि यह स्कूल भी अन्य स्कूलों के समान ही निराशाजनक उत्तर देगा। फरवरी के अन्तिम सप्ताह में मुझे उनका एक उत्तर मिला तथा हमेशा की तरह इसे भी मैं निम्मी बहन के पास पढ़ने के लिए ले गया।

फरवरी १६, १९४९

श्री वी० पी० मेहता,
द्वारा—डा० ए० आर० मेहता,
उप संचालक, स्वास्थ्य सेवा,
अरनेस्टन, (अपर प्लेट) शिमला—ई।
पूर्वी पंजाब, भारत।
श्री मेहता,

मुझे आपका ३१ जनवरी को प्रेषित किया गया पत्र प्राप्त हुआ जिसमें आपने अर्कन्सास स्कूल फार ब्लाइन्ड में दाखिल होने की इच्छा व्यक्त की है। उत्तर-स्वरूप हमें यदि आपका विस्तृत विवरण मिल गया तो यहाँ दाखिल करने में प्रसन्नता होगी। इससे मेरा तात्पर्य संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रवेश-पत्र की अनुमति से है, जो मैं समझता हूँ एक विद्यार्थी के रूप में आप प्राप्त कर सकते हैं। इसमें आपको आर्थिक विवरण, तथा यहाँ ठहरने के समय का व्यौरा भी लिखना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त अन्य सभी आवश्यक जानकारी तथा कार्य आपको करने पड़ेंगे।

संयुक्त राज्य अमेरिका के बाहर के विद्यार्थियों से एक वर्ष की फीस ६००·०० डालर ही लिए जाएंगे। लेकिन किसी भी अवस्था में इससे अधिक नहीं होंगे।

हम शिक्षा का ऐसा कोर्स पढ़ाते हैं जिसके बाद आपको विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिए प्रवेश मिल सकेगा। इसमें वह सभी पाठ्यक्रम होता है जो साधारणतया अमेरिका पब्लिक स्कूलों में पढ़ाया जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे यहाँ संगीत में भी एक विस्तृत कोर्स है। तथा साथ ही बहुत-से खेल और व्यवसायों की शिक्षा भी दी जाती है।

मैं इसके साथ प्रवेश-पत्र फार्म नत्थी करके नहीं भेज रहा हूँ किन्तु यदि आपने इस जानकारी के उपरान्त भी उसकी माँग की तो वह भेज दिया जाएगा। मैं आपको अर्कन्सास ब्रेल समाचार की ब्रेल भाषा में एक प्रतिलिपि भेज रहा हूँ। जिससे आपको हमारे शिक्षा-कार्य-क्रम का कुछ ज्ञान हो जाएगा।

यदि आप इस सब जानकारी के उपरान्त भी यहाँ आना चाहें तो हम आपसे उत्तर प्राप्त करने की आशा करते हैं।

शुभाकांक्षी

जे० एम० डब्लू जे० एम० बूली, सुपरिटेन्डेन्ट

मैं हर्षोन्माद से भर गया और निम्मी बहन के कथन पर मुझे बड़ी कठिनाई से विश्वास होता था। 'उन्हें मुझे अपनी संस्था में दाखिल करके प्रसन्नता होगी।'

उन्होंने इसे शीघ्रता से पढ़ा। पुनः पढ़ा। जो कुछ लिखा था उसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं थी। यदि इससे पहले के सभी पत्रों में मेरे प्रवेश के लिए इन्कार न होता तो मैं अत्यधिक प्रसन्नता प्रदर्शित करता हुआ माँ के पास दौड़ा हुआ जाता और उनसे हर्ष के साथ कहता 'मैं आखिरकार अमेरिका जा ही रहा हूँ।' तथा उनका आशीर्वाद माँगता लेकिन एक के बाद एक आनेवाली निराशाओं ने मुझे अप्रसन्न तथा सतर्क बना दिया था।

'इस स्कूल के सम्बन्ध में मुझे कुछ बतलाओ', उन्होंने कहा।

'मुझे इसके बारे में कुछ नहीं मालूम।' इसके बाद एक नीरवता रही, एक लम्बी नीरवता जो मुझे उद्वेग रहित रखने के लिए काफी थी।

'मेरा विचार है तुम इस पत्र को अपने पास रखो और केवल डैडीजी को ही दिखलाओ', उन्होंने भावनाहीन आवाज में कहा।

सायंकाल को भी ऐसा ही हुआ। पिताजी के हाथ में पत्र देने से पूर्व मैंने उन्हें

बतलाया, 'मुझे इस स्कूल के सम्बन्ध में कुछ भी मालूम नहीं है।' इससे पहले जितने भी पत्र प्रसिद्ध स्कूलों, जैसे पर्किन्स, वारेस्टर कालेज, प्रिंटिंग हाउस जैसे राष्ट्रीय संस्थान तथा अन्य कम प्रसिद्ध स्कूलों से आने वाले पत्र भी मैंने पिताजी को नहीं दिखाए थे क्योंकि उनके सबके उत्तर लगभग समान ही होने के कारण मैं उन्हें पिताजी को दिखलाना अनावश्यक समझता था। तथा उनकी बातें मेरे तथा निम्मी के बीच तक ही सीमित रहती थीं।

'यह तो उत्साहवर्द्धक है', उन्होंने कहा। उन्होंने बिना कोई विशेष भाव प्रदर्शित किए अत्यधिक धैर्य के साथ कहा।

मैं उस हिचकिचाहट को समझ गया, जिसका मैं पहले ही अनुमान लगा रहा था। वह मुझे दस हजार मील के फासले पर एक ऐसी संस्था में जिसका कार्य-क्षेत्र केवल दो कमरों वाले स्कूल तक ही सीमित होने की भी सम्भावना थी, भेजने से पहले सोच-विचार में पड़ गए थे।

'तुम जानते हो यह स्कूल नीग्रो लोगों के लिए भी हो सकता है।' उन्होंने कहा, 'खैर, मैं तो इस पत्र को ध्यान से पढ़ूंगा और मि० बूली को लिखूंगा, लेकिन मैं तुम्हें पहले ही इस पर बहुत अधिक निर्भर न रहने के लिए चेतावनी दिए देता हूँ।'

तीन सप्ताह तक एक बचपनपूर्ण किन्तु शान्त आशा स्थिर रही तथा कभी-कभी मैं यह कल्पना करता था कि सम्भव है अभी सब कुछ समाप्त न हुआ हो। जैसे-जैसे मार्च का महीना आया और चला गया इसी प्रकार अप्रैल का महीना भी, तो मैंने इसको भुलाने ही का निश्चय कर लिया। श्री बूली से कोई उत्तर अभी तक नहीं प्राप्त हुआ था तथा न ही अर्कन्सास ब्रेल समाचार की प्रतिलिपि आई थी।

आखिर अप्रैल के अन्तिम दिनों में मुझे ब्रेल समाचार की प्रतिलिपि मिली। मैंने इसे ऐसे ही बिना किसी प्रकार की बड़ी आशा के पढ़ना शुरू कर दिया। लेकिन ज्यों-ज्यों मैंने उसे पढ़ा और उनके सामाजिक कार्य-क्रम को देखा, जिसके अनुसार अन्धे लोग स्वतन्त्र रूप से गलियों और सड़कों पर स्वयं ही चल सकते थे। उनके पाठ्य-क्रम के बारे में भी मैंने कुछ पढ़ा तो मेरी आशा कुछ बढ़ी। मैं फिर से निराश नहीं होना चाहता था इसलिए मई के मध्य तक आशा के साथ प्रतीक्षा करता रहा, जब मेरे पिताजी एक पत्र घर पर लाए, जिसके द्वारा मुझे यह सूचना मिली कि मेरा दाखिला अर्कन्सास स्कूल में हो गया है।

'क्या आप मुझे वहाँ भेज रहे हैं ?'

'देखा जाएगा, लेकिन इस पत्र के आधार पर तुम्हारे लिए पारपत्र तथा पासपोर्ट तथा डालरों की व्यवस्था तो कम से कम की जा सकती है। एक बार अमेरिका में पहुँचने के पश्चात् यदि तुम यह समझो कि अर्कन्सास स्कूल तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है तो तुम्हें परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता रहेगी।'

उनका उत्साह किन्तु साथ ही सावधानीपूर्ण आवाज से ही मैं समझ गया कि चाहे मैं कभी भी अर्कन्सास स्कूल में अध्ययन न कर सकूं, फिर भी वह मुझसे प्रसन्न थे। फिर भी मुझे कुछ दुःख था, क्योंकि मैं अमेरिका के सभी शिक्षा विशेषज्ञों तथा अपने सम्बन्धियों की सम्मतियों के विरुद्ध जा रहा था। यदि कहीं मैं गलती पर रहा अथवा फेल हो गया तो ? क्या मैं उस समय होने वाली निराशा को सहन कर सकूंगा ?

मेरे परस्पर विरोधी विचारों की इस प्रकार की स्थिति हो गई थी कि मुझे अपने सामने पूर्ण विनाश ही नजर आता था। सम्भव है मेरे अत्यधिक प्रतीक्षा करने के फलस्वरूप यह विरोधी विचारों की चरम सीमा थी। मैं इन चिन्तित करने वाली बातों के सम्बन्ध में किसी से परामर्श करना चाहता था जो मेरी विरोधी भावनाओं को भी समझ सके। मेरे पिताजी एक ऐसे व्यक्ति थे जो मेरे प्रयासों का मूल्यांकन कर सकते थे और जब उन्होंने कहा कि उन्होंने अवकाश ग्रहण करने से पूर्व अपनी संग्रहीत छुट्टियाँ लेने का निश्चय कर लिया है और यदि सम्भव हो सका तथा डालर उपलब्ध हो सके तो अमेरिका भी जाना चाहते हैं, तो मुझे बहुत सन्तोष हुआ। अपनी लम्बी समुद्र-यात्रा के दौरान में उनके साथ अपनी आशंकाओं पर विचार-विमर्श कर सकता था और उनका मार्ग-निर्देशन प्राप्त कर सकता था।

अपने मस्तिष्क में इस सुरक्षा को रख मैंने समस्त परिवार को उत्साहपूर्ण तैयारी में व्यस्त कर दिया था और विशेष रूप से माताजी को। मेरे कपड़ों की व्यवस्था तथा उनकी पूर्व नियोजित कार्यों में व्यस्तता और मेरी झुँझलाहट, इन सभी समस्याओं का समाधान होना था। अब वह मुझे कम से कम अपना स्तर अपनाने की सलाह तो दे सकती थीं। मेरी सभी बहनों को तो बुनने का मानो एक बुखार-सा हो गया हो। उनमें से हर एक ने मेरे विदेश जाने से पूर्व एक स्वेटर उपहार-स्वरूप देने का निश्चय किया था। निम्मी बहन मुझे एक रिकार्डों की दूकान पर

ले जाना चाहती थीं, जहाँ से मुझे भारतीय संगीत के रिकार्ड चुनने थे जिससे अपने देश की याद आती रहे। अशोक ने मेरे लिए एक चित्र में रंग भरने प्रारम्भ कर दिए थे।

इस सब उत्साह और उल्लास के कारण मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था और कैसे तैयारी शुरू की जाए यह सोचने में असमर्थ था। लेकिन इस समस्या का शीघ्र ही समाधान हो गया। तैयारियाँ चलती रहीं लेकिन मैं लगभग आधा दर्जन इन्जेक्शन लगने की पीड़ा के कारण बिस्तर में ही पड़ा रहा।

एक दिन जब मेरी तथा पिताजी की इंगलैंड जाने की सभी तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं तथा पारपत्र इत्यादि सब मिल चुके थे, पिताजी घर आए और बतलाया, उनकी छुट्टियाँ रद्द कर दी गई हैं तथा उनकी केन्द्रीय सरकार में उप मुख्य संचालक स्वास्थ्य-सेवा के पद पर पदोन्नति कर दी गई है तथा उन्हें 'अपरिहार्य' होने के कारण एक वर्ष तक और कार्य करना पड़ेगा।

वह बोले, 'मेरा पहला कर्तव्य राष्ट्र की सेवा करना है और फिर परिवार की।' वह साथ ही एक ही सांस में यह भी कह गए, 'क्या यह परोपकार का सिद्धांत नहीं हुआ। तुम अमेरिका जा रहे हो तो मुझे यहाँ रुपया कमाते रहना चाहिए। अब यदि तुम एक वर्ष और प्रतीक्षा कर सको तो मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा अन्यथा तुम्हें अकेले ही जाना पड़ेगा। अब जैसा तुम चाहो तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है।'

अब मुझे अकेले ही जाना पड़ेगा, सोचता हुआ मैं वापस आ गया। मेरी सारी उत्सुकता के बीच यह 'अकेला' शब्द निरंतर खटकता रहा।

पिताजी ने मेरे कथनानुसार ही कार्य किया। जहाज कम्पनियाँ मुझे अकेले ले जाने के लिए तैयार नहीं थीं अतः दुगना किराया देकर उन्होंने मेरे लिए वायुयान में स्थान सुरक्षित करा दिया। अपने एक सम्बन्धी के द्वारा हमें पता चला कि एक बड़े पंडित जी १४ अगस्त को अन्य तिथियों से मेरे बाहर जाने के लिए अधिक उपयुक्त समझते हैं और मुझे इससे कोई विशेष लगाव न था, इसलिए मैं इसी तारीख पर जाने के लिए राजी हो गया, यद्यपि उसके दूसरे दिन ही दूसरा स्वतंत्रता-दिवस मनाया जाना था।

एक विशेष कठिनाई अभी भी रह गई थी, जिसका अभी तक समाधान नहीं हुआ था। पंडित जी के निश्चय के अनुसार मुझे अमेरिका स्कूल खुलने से एक माह

पूर्व पहुंच जाना चाहिए था। अब समस्या यह थी कि इस एक महीने में क्या किया जाए। निस्सन्देह म उस देश को देखना चाहता था और वहाँ के लोगों से मिलना चाहता था, किन्तु यह मेरे अँगरेजी के अल्पज्ञान के कारण तथा किसी अमेरिकन से जान-पहचान न होने के कारण सम्भव नहीं था। मैं कुछ घबराने लगा लेकिन पिताजी ने मेरा उत्साह बढ़ाया।

'तुम न्यूयार्क में किसी छोटे होटल के लिए एक टैक्सी कर सकते हो और वहाँ तुम्हें बहुत-से लोग मिलेंगे। क्योंकि अमेरिका संसार का सबसे अधिक मैत्रीपूर्ण देश है अतः टैक्सी चालक भी तुम्हारा मित्र बन जाएगा।'

इन सांत्वनापूर्ण शब्दों के बावजूद मैं जानता था कि वह मेरे सम्बन्ध में चिन्तित थे। उन्होंने अपने एक पुराने मित्र को जो अमेरिका में ओहायो में रहते थे, पत्र भी लिखा जिसमें उन्होंने पूछा था कि यदि वह न्यूयार्क में किसी परिवार को जानते हों जहाँ मैं खर्चा देकर रहने वाले मेहमान के रूप में रह सकूं। उन्होंने उत्तर दिया उनके एक दूर के सम्बन्धी ने एक अन्धे संगीतज्ञ से विवाह कर लिया है जो न्यूयार्क में रहते हैं। उन्होंने लिखा कि उन्होंने डी फ्रैंको परिवार से बात करली है तथा वह मुझे पन्द्रह डालर प्रति सप्ताह लेकर प्रसन्नतापूर्वक रख लेंगे। अतः सब कठिनाई हल हो गई।

अपनी नई नियुक्ति के कारण पिताजी को नई दिल्ली चले जाना था। अतः मेरे प्रस्थान की तैयारियों में कुछ विघ्न पड़ गया। हमने फिर अपने थोड़े-थोड़े सामान को पैक करना शुरू कर दिया।

मुझे वास्तव में अपने जाने से तीन दिन पहले तक, जब मेरी पंडित नेहरू से भेंट हुई, ऐसा प्रतीत ही नहीं होता था जैसे मैं विदेश जा रहा हूं। ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं पहला अन्धा लड़का था जो अमेरिका जा रहा था। इसलिए पंडित जी मुझे देखना चाहते थे।

उस दिन बहुत गर्मी थी तथा मौसम भी बहुत कष्टकारक था। मैं अपनी लम्बी पेन्ट में तथा कुछ बड़े कोट में कुछ कष्ट-सा अनुभव कर रहा था। पंडित नेहरू से मेरी भेंट में अभी कुछ मिनट शेष थे, अतः समय काटने के लिए हम विभिन्न सड़कों पर मोटर चलाते रहे। जैसा भारत में आम तौर पर नहीं होता था। पिताजी कार चला रहे थे और ओम् भाई मेरे पास बैठे थे, जो घबराहट में कभी कैमरा खोलते थे और कभी बन्द करते थे। मैं बार-बार अपनी ब्रेल घड़ी देख रहा

था तथा घड़ी की सुइयाँ कभी जल्दी चलती मालूम पड़ती थीं, कभी धीमी।

'मुझे आशा है, जब मैं तुम्हारा पंडित नेहरू के साथ चित्र लूँगा तो मेरे हाथ चुस्त रहेंगे, नहीं तो सब कुछ खराब हो जाएगा,' ओम् भाई बोले।

आखिर हम स्वतन्त्र भारत के प्रधान मंत्री के घर में पहुंच गए। मैंने अपने पिताजी का बड़ा-सा हाथ पकड़ रखा था और साथ में ओम् भाई टाइपराइटर, कैमरा तथा अर्कन्सास ब्रेल समाचार साथ में लिए हुए चल रहे थे। हम अन्दर पहुंच गए।

'डैडीजी, क्या आप समझते हैं कि पंडित नेहरू कभी इस भेंट को याद रखेंगे?'

'मेरा विचार है वह याद रखेंगे।' वह बोले। लेकिन मुझे आश्चर्य होता था, किस प्रकार पैंतीस करोड़ लोगों में से पंडित जी एक पन्द्रह वर्ष के बच्चे को याद रख सकेंगे।

'मुझे आशा है, वह मुझे चित्र खींचने देंगे,' ओम् भाई बोले। मैंने अपनी टाइप की मशीन खोली, उसमें एक कागज लगाया, पंडित जी के सम्मुख ब्रेल टाइप करके पढ़ने के लिए प्रस्तुत हो गया, उन्हें यह दिखाने के लिए कि मैं अमेरिका जाने के लिए किस हद तक तैयार था। अर्कन्सास स्कूल के समाचारपत्र में से अपना पहले ही तैयार किया हुआ अंश पढ़ने की सोची जो मुझे अच्छी तरह याद था तथा जब मुझसे पढ़ने के लिए कहा जाए तो मैं कोई गलती न कर सकूँ, लेकिन यह बेइमानी-सी लगी।

तभी पंडितजी आ गए। मुझे उनके कदम बहुत सौम्य किन्तु दृढ़ लग रहे थे, जैसा मैंने पहले ही अनुमान किया था। तुरन्त ही हम तीनों उठकर खड़े हो गए। पिताजी ने मेरी कमर में हाथ डालकर कहा, 'यह है मेरा अन्धा लड़का, जिसके सम्बन्ध में मैंने आपसे कहा था, पंडित जी!' और ओम् भाई के परिचय के बाद हम सब बैठ गए।

अनेकानेक बार मैंने पंडितजी की आवाज रेडियो पर तथा जनता के लिए दिए गए उनके प्रभावशाली भाषण सुने थे, जिन्हें सुनने के लिएस्थान इतना ठसाठस भरा रहता था कि किसी भी श्रोता के लिए साँस लेना और हिलना तक कठिन हो जाता था। आज मैं उनके ही घर पर उनके दाहिनी ओर बैठा हुआ था। मैं उन्हें बतलाना चाहता था कि मैं उन्हें अपने पिता के समान प्यार करता था और विभाजन

के संकटकालीन दिनों में भी वास्तव में मैं उन पर विश्वास करता था। और यदि वह चाहें तो मैं अपनी अमेरिका की यात्रा को भी रद्द कर सकता था। लेकिन यह सब उनके कुछ चुने हुए और नाप-तोल कर बोले हुए उत्साहवर्द्धक शब्दों की तुलना में बच्चों जैसी बातें मालूम होती थीं।

उन्होंने कुछ वाक्य बोले जो उन्होंने ऊँचे स्वर से पढ़े और फिर उन पर हस्ताक्षर कर दिए। अभी मैंने अर्कन्सास स्कूल समाचार का एक पैराग्राफ भी पूरा नहीं पढ़ा था कि वह बीच में ही बोल उठे, 'अर्कन्सास क्यों ?'

'अमेरिका में केवल यही एकमात्र संस्था है जो मुझे दाखिल करने के लिए तैयार है।' मैंने कहा। उन्होंने मामले को आगे नहीं बढ़ाया और मुझसे पूछा कि मैंने अपनी आँखें कैसे खोई।

'मैनिन्जाइटिस से' मैंने उत्तर दिया, 'जब मैं साढ़े तीन वर्ष का था।'

कुछ देर की नीरवता के पश्चात् पंडित जी कुछ स्मरण करने लगे। 'मैं जब इंगलैंड गया था तो लगभग तुम्हारे ही बराबर था। उन बातों को अब बहुत समय बीत गया।'

अचानक ही मैं उन्हें अपने और अधिक निकट अनुभव करने लगा।

'मेरा बड़ा लड़का, यदि पंडित जी, आप अनुमति दें तो आपके कुछ चित्र खींचना चाहता है।' पिताजी ने सुझाव दिया। और इसके उपरान्त हम सब बराण्डे में आ गए। केमरे की दो क्लिक ध्वनियों के साथ भेंट समाप्त हो गई। जब पंडित जी मुझे आशीर्वाद दे रहे थे तो ओम भाई सब चीजें समेट रहे थे।

हम कार में बैठ गए और घर की ओर चल पड़े। मैं अब सबके कौतूहल का केन्द्र बन गया था और पंडित जी के साथ भेंट, जो यद्यपि बहुत थोड़े समय तक रही, चर्चा का विषय थी।

तीसरा भाग

अमेरिका तथा शिक्षा

विश्व का केन्द्र | १६

अब मैं अमेरिका में था। मेरी कल्पना में यह देश महासागरों के समान अनन्त तथा असीम प्रतीत होता था। मेरी इच्छा थी कि मेरे मस्तिष्क पर एक ऐसा चित्र, कोई-सा भी चित्र, खिच जावे जिसे मैं भविष्य में याद रख सकूं। घर पर तो बड़ी कठिनाई से लगभग आधा मील दूर सीधे जाया जा सकता था। रास्ते में बहुत-से मोड़ थे, तंग गलियाँ थीं, बहुत-सी गलियों में से निकलने वाली उपगलियाँ थीं जिनमें कार की खिड़कियाँ खोल लेने पर टाँगे में जुते घोड़े की टापों की एक विशेष क्रम से उठने वाली ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती थीं। समय-समय पर कोचवान की घोड़ों पर चाबुक मारने की आवाज भी सुनाई देती थी जो अपने मुसाफिरों को जल्दी से उनके गन्तव्य स्थानों पर पहुँचा देना चाहता था। साइकिलों की घण्टियों की आवाज अक्सर आती रहती तथा रास्ता रोकने के लिए टाँगों के कोचवानों को साइकिल-सवार अपशब्द भी कहते रहते थे और हर मोड़ पर टाँगों को तेज चलने से रोकने के लिए सीटियाँ बजती रहती थीं। भारत में, मुझे याद है, गलियों का जीवन गन्दा तथा अश्लील आवाजों से दूषित रहता था तथा गलियों में बहुत अधिक मोड़ और घुमाव होते थे। लेकिन जिन गलियों में अब मैं चल रहा था, मुझे अनुभव होता था कि काफी चौड़ी तथा सीधी हैं तथा वहाँ पूर्ण शान्ति है। टैक्सी ड्राइवर को अभी तक कहीं भी हार्न बजाने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी और न ही उसने रास्ते में अपने किसी साथी ड्राइवर से बातें की थीं। मेरे विचार से इन गलियों में काफी तेज चला जा सकता था तथा आसानी से अपने लक्ष्य पर पहुँचा जा सकता था।

मेरे दाईं ओर पीछे की सीट पर श्रीमती डी फ्रैन्को बैठी थीं। वह कह रही थीं, 'ओह तुम जैसे सीधे-सादे लड़के के लिए यह यात्रा बड़ी कष्टप्रद रही है। कैसे खतरनाक रास्ते से तुम आये हो ?'

'मैंने तो कोई कठिनाई अनुभव नहीं की', मैंने कहा।

'ओह ! तनिक इसकी कल्पना करो कि कहीं तुम्हारे थैले की सारी सामग्री चुरा ली गई होती तो ?'

'श्रीमती डी फ्रैन्को ! अभी मेरे पास दो थैले हैं और एक अभी भी पूरा भरा हुआ है।'

'मैं जानती हूँ ! लेकिन यह अमेरिका का कितना गलत परिचय है।' उन्होंने मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ लिए और अचानक ही बड़े जोर से हँसीं। उनके हँसने में एक उन्मुक्तता थी जो भारत में साधारणतया स्त्रियों में नहीं मिलती थी।

'आप हँस क्यों रही हैं ?' मैंने हतप्रभ होकर पूछा।

'मैं देख रही हूँ, अब तक निरन्तर तुम अपने हाथ अपने जाकेट में रखे हुए हो। क्या तुम्हें अपना मनी-बेग खोने का भी डर लगा हुआ है ?'

'मेरा यह तात्पर्य नहीं है।' मै धीरे से बोला तथा अपने मुख पर लज्जा के कारण दौड़ने वाली लाली को मैंने तुरन्त अनुभव किया।

इस हास्य में अब टैक्सी ड्राइवर भी साथ दे रहा था तथा वह टाँगे के कोचवान की भाँति चोरी के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से जानने के लिए उत्सुक था। मैं सोच रहा था तथा अपने मुख को इस प्रकार कुछ विश्राम देने लगा था। श्रीमती डी फ्रैन्को ने ड्राइवर को बतलाया कि किस प्रकार मैं सामान के कक्ष में सामान लेने के लिए गया तथा वहां कैसे एक बैग खुला पाया और कैसे हमें लगभग दो घंटे तक हवाई अड्डे पर ही पड़ा रहना पड़ा। वहाँ हम विभिन्न फार्म भरते रहे तथा बीमा के व्यक्तियों के सम्मुख खोई हुई वस्तुओं का सूची पत्र तैयार करते रहे। ड्राइवर बार-बार कहता रहा, 'ओह ! कितना बुरा हुआ है। यह सुनकर मुझे बहुत दु:ख हुआ। देश में आने पर यह स्वागत का कितना बुरा तरीका है ?' मैं लगातार यही सोच रहा था कि श्रीमती डी फ्रैन्को चुप हो जायेंगी। क्योंकि सामान की सुरक्षा करने वाले व्यक्ति ने मुझे बतलाया था कि उसकी स्मृति में सामान की यह पहली ही चोरी थी।

लेकिन उत्सुक ड्राइवर जोर देकर पूछता रहा, 'यह सब कैसे हुआ ?'

'ऐसा प्रतीत होता है', मैंने कहा, 'जब सामान हवाई जहाज से आफिस ले जाया जा रहा था तो किसी ने मेरे बैग को तोड़ दिया।'

'लेकिन आपके साथ ऐसा नहीं होना चाहिए था श्रीमान्।' ड्राइवर ने कहा।

तथा श्रीमती डी फ्रैन्को बोलीं, 'ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए था।'

मैं ड्राइवर के गाड़ी मोड़ने की प्रतीक्षा करता रहा। मुझे याद है जब उसने अन्त में गाड़ी मोड़ी तो बिल्कुल दाईं तरफ को मोड़ा तथा यह अर्धमोड़ नहीं था जिसका मुझे जब तक अभ्यास था मैंने उनकी बातचीत में हस्तक्षेप करते हुए पूछा, 'आप कहाँ रहती हैं श्रीमती डी फ्रैन्को ?'

'ब्रोडवे पर', उन्होंने कहा।

'क्या ब्रोडवे बहुत चौड़ी सड़क है ?' मैंने पूछा।

इस पर वह हँसी और बोलीं, 'ओह ! वह तो विश्व का केन्द्र है।'

'नहीं टाइम्स स्क्वेयर है', ड्राइवर बोला।

'लेकिन टाइम्स स्क्वेयर भी तो ब्रोडवे पर ही है', श्रीमती डी फ्रैन्को ने उत्तर दिया। वह फिर हँसीं।

मैं अब विश्व के केन्द्र में था। मै सोच रहा था, ऐसा केन्द्र बिन्दु जो मेरी कल्पना के विपरीत परिधि रहित था। भारत में विश्व की कल्पना एक अनन्त परिधि के रूप में की जाती थी पर यहाँ यह एक क्षितिज रेखा रूप में था। मैं यह बात अपने इन दोनों साथियों को बतलाना चाहता था लेकिन यह नहीं जानता था कि कैसे इसे शुरू किया जाए तथा किस प्रकार यह तथ्य उन्हें स्पष्ट किया जाये।

भारत में मेरा जीवन एक निश्चित क्रम से, ढंग से चलता था तथा एक ऐसा चक्र था जिसमें से निकलने का कोई साधन नहीं था। यह एक गोल दायरे में चक्कर लगाने वाले खेल के समान था जो निस्सन्देह एक नवीनता लिए हुए था परन्तु फिर भी हिण्डोले की उदास कर देने वाली चाल को लिए हुए था। अमेरिका में आकर जीवन एक तेज रेलगाड़ी के समान चलने लगा था जिसमें तेजी से एक के बाद एक घटनाएँ घटित होती हैं। जैसे थैले का खोला जाना।

इनमें से किस जीवन को मैं अधिक पसंद करता, अभी इतनी जल्दी कहना बड़ा कठिन था।

'आपकी हवाई जहाज की यात्रा कैसी रही श्रीमान्', उत्सुक ड्राइवर ने पूछा।

'हाँ, हमें उसके सम्बन्ध में कुछ बतलाओ। वह वास्तव में अत्यधिक मनोरंजक रही होगी,' श्रीमती डी फ्रैन्को बोलीं।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि इन्हें क्या बतलाऊँ ? क्या मैं इन्हें वह बता दूँ जो पिताजी ने हवाई जहाज पर चढ़ने के पूर्व मुझसे कहा था ?

'तुम्हें अत्यधिक भावुक तथा शर्मीला रहने का स्वभाव छोड़ना पड़ेगा।' उन्होंने कहा था, 'तुम्हें मोटी चमड़ीवाला बनना पड़ेगा।'

और मेरी बहन उम्मी ने अपने उसी लापरवाही के ढंग से कहा था, 'डैडीजी, आपको इससे मोटी चमड़ी वाला बनने की कला सीखने की आशा नहीं करनी चाहिए, जबकि इसका वजन कुल नव्बे पाउण्ड है।'

'क्या मतलब ?' मैं बोला था। 'मैं लगभग पचपन सेर का हूँ।'

निम्मी बहन ने मुझे सान्त्वना देने की गरज से कहा था, 'यह एक पूर्ण वयस्क के समान लगता है। तुम क्या कह रही हो उम्मी बहन ?'

हवाई जहाज में बैठे हुए मैंने इस बातचीत को अपने मस्तिष्क से निकालने की बड़ी कोशिश की थी। मैं स्वयं से कह रहा था, अब मैं पूर्ण वयस्क हो गया हूँ। आखिर अब मैं साढ़े पन्द्रह वर्ष का हो गया था तथा ओवर कोट पहने था। इस कारण कोई भी मेरे लड़कों के समान दुबले-पतले शरीर का अनुमान नहीं लगा सकता था। मेरे चलने से पूर्व यह एक और वाक्य उम्मी बहन ने कहा था। मस्तिष्क से निकालने का काफी प्रयास करने पर भी यह निरन्तर एक काँटे के समान चुभता रहा। उस रात को मैं हवाई जहाज पर बहुत कम सो सका था तथा सपने में एक आदमकद शीशा देखा था। आज मैंने पहली बार शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देखा था और अपना सीना ठोक-ठोककर कह रहा था 'अब मैं बड़ा हो गया हूँ। मैं लड़का नहीं हूँ अब मैं एक वयस्क हूँ।'

मैं झटके से जाग गया तथा कठिनाई से साँस ले रहा था। मैं सोच रहा था कि सुबह हो गई है। यद्यपि हवाई जहाज में बैठे हुए निश्चित रूप से कुछ भी बतलाना बड़ा कठिन था। मैं पहले कभी भी इस प्रकार से बन्द जगह में नहीं रहा था और आवाज, सुगन्ध तथा स्पर्श तक का अनुभव मशीन की घरघराहट के कारण नहीं होता था। अतः एक अन्धे व्यक्ति के लिए तो रात और दिन एक में ही मिल गए थे। मैं समझ गया कि अब प्रातःकाल हो गया है क्योंकि कुछ समय के पश्चात् हवाई जहाज की परिचारिका ने आकर मेरे कन्धे को थपथपाया और बोली, 'श्रीमान्, नाश्ता करेंगे आप ?'

पहले तो मैं हाँ कहना चाहता था क्योंकि मेरा पेट खाली था और मुझे भूख लग रही थी लेकिन एक क्षण में ही मुझे याद आ गया कि मेरे पिताजी वहाँ नहीं थे और उनके बिना किस प्रकार मैं नाश्ता करूँगा ? जीवन भर मैंने अपने हाथों से ही

खाना खाया था। केवल चम्मच से ही मैं खाना जानता था और वह भी कभी-कभी ही मेरे प्रयोग में आई थी। घर छोड़ने से केवल एक सप्ताह पूर्व ही पिताजी ने शीघ्रता में मुझे छुरी-काँटे से खाने की शिक्षा देना शुरू किया था। लेकिन उनसे खाना मुझे उसी प्रकार अजीब लगता था जिस प्रकार दस्ताने पहनकर ब्रेल पढ़ना। बकरे के गोश्त के 'चाप' में हड्डी से गोश्त काटना मुझे अत्यधिक कठिन प्रतीत होता था।

'अभी नहीं,' मैंने परिचारिका से कहा, 'लेकिन मैं संतरे का रस लेना चाहता हूँ।'

उस दिन सुबह मैंने पहले की अपेक्षा उस सहायता की कहीं अधिक आवश्यकता अनुभव की जो मैं पीछे छोड़ आया था। मैंने छुरी-काँटों से खाना सीखना इस आशा से स्थगित कर दिया था कि मैं पिताजी से रास्ते में सीख लूँगा। लेकिन उनके लिए मेरे साथ आना सम्भव नहीं हो सका था।

'क्या आप आज भोजन कम खायेंगे ?' परिचारिका ने मुझसे फिर एक बार पूछा।

'नहीं,' मैंने कहा, 'मैं सिर्फ गान्धीजी का अनुसरण करने की कोशिश कर रहा हूँ।'

'ओह !' वह बोली, 'लेकिन उन्होंने तो इक्कीस दिन का व्रत किया था और मेरा विचार है कि उस समय उन्होंने संतरे का रस भी नहीं पिया था।'

'शायद मुझे भी ऐसा ही करना पड़े', यद्यपि यह मैंने एक बनावटी मुस्कान के साथ कहा था लेकिन इसके बारे में परिचारिका से कहीं अधिक गम्भीर था।

'कृपा करके आप हमारी हवाई सर्विस के विरुद्ध भूख हड़ताल न करें श्रीमान्।' उसने कहा।

'यह हवाई सर्विस के विरुद्ध नहीं है,' मैं बोला, 'किन्तु कुछ धार्मिक कारण हैं।' और ऐसा कहकर मैं समझ गया, उसकी नजरों में मैं बहुत ऊंचा उठ गया था। क्योंकि जब हम ब्रसेल्स में रुके तो वह एक विशेष बर्तन में संतरे का रस ले आई और इस प्रकार से एटलान्टिक पार करने के लिए मुझे पर्याप्त मात्रा में वह मिल गया।

कई बार मैंने सोचा, क्या ही अच्छा होता यदि मां चाकलेट लाण्ड्री बेग में न रखकर हैण्ड बेग में रख देतीं। उन्होंने उन्हें और बहुत-सी चीजें जैसे मेरे मोजों, चाबियों और बनयाइनों के साथ दबा दिया था और फिर मेरे ओवर कोट के साथ

सी दिया था। 'इस प्रकार तुम अधिक चीजें ले जा सकते हो,' वह बोलीं, 'क्योंकि वह तुम्हारे ओवर कोट को तो नहीं देखेंगे।'

मैं कई बार परिचारिका से ओवर कोट लाने के लिए कहना चाहता था लेकिन छिपे हुए लान्ड्री बैग का पता चलने के डर से चुप रहा और इस प्रकार मेरा पेट भी खाली ही रहा। मैंने अपनी भूख को संतरे के जूस के कई गिलास पीकर कम करने की कोशिश की। जितना अधिक मैं छुरी-काँटे का ध्यान करता था तथा अपने छोटे-से शरीर की ओर देखता था उतना ही अधिक मैं उदास हो जाता था। मैं सोच रहा था, कब तक मैं अपना यह गर्व स्थिर रख सकूंगा।

मैं 'बहाना' और 'गर्व' दो शब्दों को इस्तेमाल करके एक वाक्य अपने दोनों साथियों से कहने वाला था तभी श्रीमती डी फ्रैन्को ने सौम्यता के साथ मेरा हाथ दबाया और कहा, 'ओह! तुम्हें अभी भी भाषा की कठिनाई है।'

तभी ड्राइवर बोला, 'हाँ, श्रीमान् मुझे अंगरेजी बोलने में कठिनाई आती है लेकिन मैं हिन्दू तो शायद कभी नहीं बोल सकता।'

'हिन्दी तुम्हारा तात्पर्य है?' मैंने ठीक करते हुए कहा।

'आप देखिए ना' वह एक बार फिर जोर से ठहाका मारते हुए बोला। इस बार हँसने में श्रीमती डी फ्रैंको और मैंने भी उसका साथ दिया। अब हम ब्रौडवे पर मुड़े।

'वेद, हम जल्दी ही घर पहुँच जाएंगे,' श्रीमती डी फ्रैंको बोलीं 'और तुम तथा मेरे पति साथ बैठकर खूब मनोरंजक वार्तालाप कर सकोगे। मैं जानती हूँ तुम दोनों में काफी समानता है।' वह भी अन्धे थे और मैं भी अन्धा था, अतः उनका विचार था हम दोनों एक दूसरे के सम्पर्क को खूब पसन्द करेंगे।

'हम आ गए।' ड्राइवर ने रुकते हुए कहा और मैंने शीघ्रता से दो डालर निकाले जो मेरी माता जी की एक अमेरिकन मित्र ने दिये थे, और ड्राइवर को दे दिये।

'यह काफी नहीं होगा,' श्रीमती डी फ्रैंको बोलीं।

'लेकिन ये दस रुपये हैं,' मैंने कहा, 'इतने में तो एक टांगा भारत में सारे दिन के लिए किया जा सकता है।'

'यह अमेरिका है,' वह बोलीं।

'लेकिन मेरे पास तो कुल अस्सी डालर का चैक है,' मैं घबराते हुए बोला। श्रीमती डी फ्रैंको ने बकाया रकम अदा की। और टैक्सी ड्राइवर ने मेरे दोनों थैले पत्थर पर रख दिये और मेरा हाथ हिलाकर बोला, 'यदि मैं कभी भारत गया तो कभी टांगाचालक न बनने की बात याद रखूंगा।' इसके उपरान्त वह अपनी टैक्सी लेकर चला गया। मैं यह जानने के लिए कि अब मुझे क्या करना है वहीं खड़ा रहा। तभी मैंने श्रीमती डी फ्रैंको को अपना बैग बन्द करते सुना। उन्होंने खाली झोला उठा लिया और बोलीं, 'क्या तुम दूसरा उठा सकते हो ?'

'हाँ निश्चय ही,' मैं बोला और उसे उठा लिया। इसके बाद शीघ्रता से उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझे अपने रहने के मकान की ओर ले चलीं। जब मैं चौथी मंजिल तक सीढ़ियों पर चढ़ने के उपरान्त उनके फ्लैट में पहुँचा तो सोच रहा था कि किस प्रकार की स्त्री थी वह। क्या भारत में कभी कोई स्त्री इस प्रकार अंधे व्यक्ति का मार्ग दर्शन कर सकती थी ? वह इस प्रकार एक अनजान आदमी को देखकर सम्भवतः सकुचा जाती। इसी बीच श्रीमती डी फ्रैंको मेरा हाथ घसीटती हुई ले जा रही थीं। लेकिन इस विचार ने श्रीमती डी फ्रैन्को की सुदृढ़ मांस-पेशियों पर से ध्यान नहीं हटने दिया। मैं सोच रहा था कि अमेरिका में कम से कम अन्धों से लोग-बाग बचने का प्रयत्न तो नहीं करते।

यदि एपार्टमेंट में कोई बम फट जाता तो भी मुझे इतना अधिक आश्चर्य नहीं होता जितना श्री डी फ्रैंको के अपनी पत्नी के प्रवेश करने पर उसका जोर से चुम्बन लेने पर हुआ। मैं सोच रहा था, यदि कहीं मेरी माता को यह पता चल जाता कि डी फ्रैंको दम्पति इस प्रकार खुले आम प्यार तथा चुम्बन का आदान-प्रदान करते हैं तो वह मुझे उनके पास रहने की अनुमति न देतीं।

मैं श्री डी फ्रैंको से पहले ही डर गया था। उनका हाथ एक पुरुष के समान जरा जोर से मिला था। उनकी आवाज बिल्कुल एक प्रशिक्षित गायक की थी। और जिस ढंग से वह मेरे कन्धे को पकड़कर अपने रहने के कमरे की ओर ले गए उससे मुझे एक ऐसे विश्वास का अनुभव हुआ जो भारत में अन्धों में कहीं नहीं दिखलाई पड़ा था।

'मूरियेला ने मुझे बतलाया है, तुम्हारे साथ कोई दुर्घटना हो गई।' मेरे बाद मेरे थैलों को कमरे में लाते हुए उन्होंने कहा।

'इतनी नहीं, जो मुझे यहाँ आने से रोक देती।' मैं बोला।

वह हंसे। 'तुम्हें इतना अधिक विलम्ब हो गया था कि मैंने तुम्हारा खाना बनाना शुरू कर दिया था।'

'ओह! आप खाना बना लेते हैं?' मैंने अपने आश्चर्यमय भाव को न संभालते हुए कहा।

'कभी-कभी मैं मूरियेला की सहायता कर देता हूँ।' उन्होंने साधारण ढंग से कहा। अब उन्होंने हवाई अड्डे पर न आने के लिए माफी माँगना शुरू कर दिया, 'तुम्हारे आने के समय ही मेरे एक विद्यार्थी के पढ़ने का समय होता है।'

'इसकी बात मत कीजिए,' मैंने कहा।

'इसके अतिरिक्त', वह कहते रहे, 'मैं जानता था, तुम एक सुन्दर सुशिक्षित स्त्री का स्वागत पाकर बुरा नहीं मानोगे।'

'हवाई अड्डे से यहाँ तक की हमारी यात्रा अत्यधिक मनोरंजक रही', मैंने कहा।

उनके बार-बार कमरे में भारी कदमों से इधर-उधर टहलने से मुझे उनकी उपस्थिति का अनुमान हो रहा था।

श्रीमती डी फ्रैंको ने रसोई में से मुझसे पूछा कि मैं गोश्त खाता हूँ अथवा नहीं।

'मैं खाता हूँ,' मैंने कहा। मैं नहीं कहना ही चाहता था क्योंकि मुझे इसके काटने की मुसीबत अच्छी नहीं लगती थी, लेकिन मेरी भूख ने मेरी शर्म पर परदा डाल दिया।

उन्होंने इस पर एक संतोष की सांस ली, 'इस सम्बन्ध में मैं और जौन अंदाज लगा रहे थे।'

'मैंने माताजी को वचन दिया था कि मैं अपना वजन बढ़ाऊंगा और पिताजी से कहा था कि मैं अमेरिका में हरेक चीज खाऊँगा।'

इसके उपरान्त श्रीमती डी फ्रैंको ने खाना परोसा तथा हमारे गिलासों को भरते हुए कहा, 'मटर बारह पर है, गोश्त छः पर तथा स्पागेटी बीच में है।'

'क्या तुम इन संकेतों को समझते हो?' श्री डी फ्रैंको बोले।

'नहीं' मैंने कहा।

'हम घड़ी के डायल का प्रयोग खाने की प्लेटों को पहचानने के लिए करते हैं।'

'यह खाना पहचानने का अच्छा तरीका है', श्रीमती डी फ्रैंको बोलीं, 'और अमेरिका में तुम्हें शायद ही कोई ऐसा अंधा मिले जो इसे न समझता हो। मैं समझती थी कि सभी स्थानों पर अंधे इसे समझते होंगे।'

'प्रिय, तुम भूल जाती हो' श्री फ्रैंको बोले, 'भारत में अभी बहुत-सी बातें आरंभिक अवस्था में है और निस्संदेह अंधों के लिए किए गए कार्य अभी तक वहाँ बहुत पिछड़ी दशा में है।'

'भारत में पिछड़ी अथवा प्रारम्भिक अवस्था में भी, कोई कार्य ही नहीं हुआ है,' मैं बीच में बोला।

श्री डी फ्रैंको की चुपचाप धीरे-धीरे पानी पीने की ध्वनि रुक गई और वह कुछ क्षण के बाद बोले, 'मेरा तात्पर्य ऐसा नहीं था।'

'मुझे खेद है,' मैं पानी पीने के लिए गिलास उठाते हुए बोला, और हमने खाना खाना शुरू कर दिया।

मुझे प्रसन्नता थी कि गोश्त की गोलियों को काटने की आवश्यकता नहीं पड़ी। और श्रीमती डी फ्रैन्को के रसोई की ओर जाने पर मैंने स्पागेटी का सबसे बड़ा टुकड़ा उठाया। सख्त तथा तेज मटरों के दाने जो प्लेट से बाहर निकले पड़ रहे थे तथा श्रीमती डी फ्रैंको के रसोई में ही बने रहने की प्रार्थना से वार्तालाप कुछ शान्त-सा रहा।

अपने उपवास के कारण, जो भारत से अमरीका की उड़ान के अड़तालीस घण्टे रहा था, मैं कमजोर तथा सुस्त हो गया था। लेकिन काफी चुस्त हवाई जहाज की परिचारिका की गैरहाजिरी तथा अब श्रीमती डी फ्रैंको के बार-बार रसोई की तरफ जाने के कारण मुझे पेट भरने का अच्छा अवसर मिल गया था तथा अब खाना खाने के बाद मैं अपने इन नए महमानों के सम्बन्ध में सुनने को तैयार हो गया। सेव खाकर हम आराम कुर्सियों में लेट गए तथा मैंने अब श्री फ्रैंको से अपने सम्बन्ध में कुछ बतलाने को कहा।

'मेरा जीवन सीधा-सादा है तथा बिना किसी रोमान्स के रहा है,' उन्होंने कहना शुरू किया।

'ओह!' मैंने जोर देते हुए कहा, 'आप अत्यधिक नम्र हो रहे हैं।'

'नहीं,' उन्होंने सीधे-सादे शब्दों में कहा, 'मैं बारह वर्ष तक अन्धों की पर्किन्स इन्स्टिट्यूट में रहा। उसमें प्रवेश के समय मैं छः वर्ष का था। कालेज में पढ़ने के

पश्चात् मैं न्यूयार्क आ गया। यहाँ संगीत पर भाषण देने प्रारम्भ कर दिये तथा यदा-कदा रेडियो पर भी प्रोग्राम देने लगा। यहीं मैंने मूरियेल से विवाह किया और अब यहाँ हूँ।'

वह यह कहते जा रहे थे और मैं एक विचार-चित्र बनाता चला जा रहा था कि इसी प्रकार का जीवन मेरा भी हो सकता था। डा० हालदार ने, जब मैं छः वर्ष का ही था तो मुझे पर्किन्स में प्रविष्ट कराने का प्रयास किया था और फिर श्री डी फ्रैंको के समान ही मैं न्यूयार्क में रह सकता था तथा एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ के समान जीवन-यापन कर सकता था। लेकिन हाँ, विवाह ?

अब तो तथ्य यह था कि उनके पास शिक्षा थी, वैभव था और थी स्वतंत्रता, जब कि मेरे पास तीनों में से कुछ भी नहीं था।

'पर्किन्स में आपका जीवन कैसा रहा ?' मैंने अपनी ईर्ष्या को दबाते हुए पूछा।

'दूसरे लाखों लड़कों से कोई विशेष भिन्न नहीं' उन्होंने स्पष्ट कहा, 'वहाँ जीवन बिल्कुल सामान्य तथा बिना किसी विशेष घटना के रहा। हम अन्य बहुत-से बच्चों के समान ही खेलते और पढ़ते थे।'

'वह जीवन सचमुच कैसा था ?' मैंने जोर देते हुए पूछा।

'बड़ा मज़ेदार जीवन था।' उन्होंने अन्यमनस्क भाव से कहा, 'हाँ, बड़ा मजेदार ही तो !'

मैं इस 'मजेदार' शब्द में जीवन के बारे में अपनी सारी कल्पनाओं को भर देना चाहता था। लेकिन उन्हें अपने पर्किन्स में व्यतीत किए जीवन के सम्बन्ध में अधिक नहीं बतलाने देना चाहता था, क्योंकि मेरा कुछ ऐसा विचार था कि वे मुझे कुछ तोड़-मरोड़कर तथ्यों को बतायेंगे।

'तुम मेरे सम्बन्ध में तो सब कुछ जान गए', वह बोले, 'अब कुछ अपने बारे में बतलाओ।'

'हाँ, हाँ, अवश्य बतलाओ', श्रीमती डी फ्रैन्को बोलीं, 'हमने भारत के बारे में बहुत कुछ सुना है। वह अवश्य अत्यधिक दिलचस्प देश होगा।'

अब मैं चुपचाप सोच रहा था। क्या मेरे ये मेजबान पण्डित जी, मेरे संगीत शिक्षक, के बारे में कुछ दिलचस्पी दिखायेंगे ? भारत के विभाजन के बारे में तथा रामसरन की भारत विभाजन पर की गई टिप्पणी को क्या ये मनोयोग से सुनेंगे।

यह सब कुछ कहने के लिए मेरे पास था। तभी श्रीमती डी फ्रैन्को ने मुझसे पूछा कि अगर वे मेरे खाना समाप्त करने के पहले ही मेज पर से उठ जायँ तो मैं बुरा तो नहीं मानूँगा।

'बिल्कुल भी नहीं', मैं बोला, 'अब मैं कुछ थक गया हूँ लेकिन भारत में बीते अपने विगत जीवन से आपको मै कभी विस्तार से अवगत कराऊँगा।'

'शीघ्र ही ! हम आशा करते हैं', वह बोलीं। और मेरे घुटने छूकर उन्होंने कहा, 'चिन्ता मत करो। शीघ्र ही तुम्हारी अंगरेजी सुधर जायगी' और फिर एक ही क्षण में मुझे रसोई घर से प्लेटों के धोने की आवाज आने लगी, जिन्हें श्रीमती फ्रैन्को जल्दी-जल्दी धो रही थीं।

मैं बहुत ही थक गया था लेकिन मुझे एक प्रश्न का श्री डी फ्रैन्को से उत्तर मिले बिना नींद नहीं आ सकी। 'आपने इस प्रकार कैसे विवाह किया ?' मैंने एकदम पूछा।

'क्या तात्पर्य है तुम्हारा ?' उन्होंने हँसते हुए कहा।

'मेरा मतलब है, यह सब कैसे हुआ ? आप उनसे कैसे मिले ?'

'बड़ी आसानी से,' वह बोले, 'जब मैं न्यूयार्क आया तो वह उसी डिपार्टमेंट में रहती थीं जिसमें मैं रहता था। हम आते-जाते अक्सर दरवाजे पर मिलते थे। एक रात को मैं उनसे बोला और हम एक दूसरे को अधिक अच्छी तरह जानने लगे और परिणाम अब तुम देख ही रहे हो।'

'ठीक इसी प्रकार ?' मैंने पूछा। क्योंकि मेरी उत्सुकता शान्त नहीं हुई थी।

'हाँ', उन्होंने उत्तर दिया।

'असम्भव !' मैं कहे बिना न रह सका। अमेरिका आने से केवल एक ही सप्ताह पूर्व मैं नई दिल्ली में पिताजी के साथ बैठा था तथा हम विवाह के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। उनके कहने का ढंग स्पष्ट था। उनकी भाषा अधिक भावपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक थी :

'तुम अब काफी बड़े हो गए हो और तुम चाहो या न चाहो तुम विवाह के सम्बन्ध में सोचोगे ही। यद्यपि कुछ वर्षों तक तुम्हारा विवाह नहीं होगा लेकिन तुम इस सम्बन्ध में सोचते रहोगे।'

'मैं नहीं सोचूँगा', मैंने निश्चयात्मक ढंग से कहा था।

'शर्माओ मत, यह स्वाभाविक ही है। मैं इस सम्बन्ध में तुमसे अभी बात

करना चाहता था। मुझे नहीं मालूम तुम कब तक अपने देश से बाहर रहोगे अथवा मैं फिर कब तुमसे मिलूंगा।'

मैं सोचता रहा, किस प्रकार हमने समुद्र यात्रा करने की योजना बनाई थी। मुझे अपने तथा उनके लिए भी दुःख था। क्योंकि जो विचार उन्होंने दो-तीन सप्ताहों तक मुझे बतलाए थे, अब रात के सुनसान कुछ घंटों में ही सारे निकाल दिये जाने को थे।

'मैं अपने विचर-सागर में गोते लगा रहा हूँ?' वह बोले। उचित शब्दों का चयन करने का प्रयास करते हुए उन्होंने कहा, 'क्या तुम समझते हो किसी पश्चिम की लड़की से विवाह कर लोगे?'

'निश्चय ही नहीं' मैंने जोर देकर तथा प्रश्न के कारण अचानक होने वाले प्रभाव पर विजय पाते हुए कहा।

'मैंने बहुत-से एंग्लोइंडियन देखे हैं' वे कहते रहे तथा साथ ही उनकी आवाज की गति ऊँची उठती चली गई, 'एंग्लोइंडियन जो किसी अज्ञात अंगरेज के औरस से किसी गरीब भारतीय माँ के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। तुम जानते ही हो कि उनकी अवस्था कैसी रहती है?'

लेकिन वे उत्तर के लिए रुके नहीं। 'उन्हें अपनी माताओं के कारण शर्म आती है क्योंकि वे काली स्त्रियाँ होती हैं। ये उन्नत एंग्लोइंडियन बच्चे अपने को गौरांग समझते हैं और अपने को अपनी भारतीय माँ से उच्च समझते हैं। उन्हें इंगलैंड को अपना देश कहने का अवसर भी मिल जाता है। वे ऐसे देश को अपना देश मानकर बातें करते हैं जिसे वह कभी वास्तव में अपना देश नहीं समझ सकते। हाँ अपना देश!' उन्होंने तिरस्कारपूर्वक कहा।

'वास्तविकता तो यह है कि उनका अपना कोई देश नहीं होता। किसी भी देश को वह अपना देश नहीं कह सकते। कोई उनका पिता नहीं होता और कोई ऐसी माँ नहीं होती जिसका वे आदर कर सकें। मैं···मैं तो ऐसी सन्तान उत्पन्न करने के बजाय क्वारा रहना अधिक पसन्द करूँगा।' उन्होंने व्यंग्यात्मक ढंग से कहा, 'कम से कम भारत में तो अवश्य!'

'यह कहते हुए मुझे अब दुःख होता है', वह अब सामान्य आवाज में कहते रहे, 'क्योंकि कठिनाई यह है कि मैं एक विश्व के सिद्धान्त में विश्वास करता हूँ और मैंने जातीय उच्चता और एक देश की दूसरे देश पर महत्ता में कभी विश्वास नहीं किया।'

इसके बाद कुछ देर शान्ति रही। यह विचारों के आदान-प्रदान के ऐसे बहु-मूल्य क्षण थे जिन्हें अपने उत्तर से भंग करना मैंने उचित नहीं समझा।

'यह याद रखो,' वे धीरे-धीरे कहते रहे, 'मैं अत्यधिक पतित एंग्लो इंडियनों की बात कर रहा हूँ। उन पर घृणा करने की बजाय दया आती है और यह भी मत समझो कि इनमें अपवाद होते हैं जो हमारे समाज में घुलते-मिलते रहते हैं।'

'इनमें दो बातों में बहुत कुछ समानता है। एक तो जो कुछ मैं एंग्लोइंडियनों के लिए कह रहा हूँ और दूसरी जो बहुत-से लोग कहते थे कि तुम बहुत छोटी आयु में अमेरिका आने पर न भारत के लिए उपयोगी रहोगे और न ही अमेरिका के जीवन में घुल-मिल सकोगे। पन्द्रह वर्ष की आयु बहुत कम होती है, विदेश में जाने के लिए तो बहुत ही कम।'

इसके उपरान्त वह कुछ देर शान्त रहे और यह कष्टप्रद नीरवता स्थिति की गम्भीरता को बतलाने के लिए पर्याप्त थी।

'विवाह,' उन्होंने कहना प्रारम्भ किया, 'जीवन को पूर्ण तथा सम्पन्न बनाने के लिए आवश्यक है और सम्भवतः तुम्हारे सम्बन्ध में तो और भी अधिक। मेरी आयु पचपन वर्ष है जो भारत में बुढ़ापे का प्रतीक है···अत्यधिक बुढ़ापे का। अभी तक तुमने अपने परिवार की आँखों के द्वारा जीवन व्यतीत किया है। लेकिन तुम्हारी विदेश यात्रा, मेरी मृत्यु तथा तुम्हारे भाई-बहनों का विवाह इसमें एक परिवर्तन कर देगा। न तो तुम्हारे माता-पिता और न ही तुम्हारे भाई-बहन पूरे जीवन भर साथ देंगे।'

'मैं भारत में तुम्हारे अच्छे तथा सफल विवाह की आशा कभी नहीं कर सकता। मैं यह कठोर तथ्य तुम्हें इसलिए बतलाना चाहता हूँ कि लोग इस यौन सम्बन्ध में आँखों को कितना अधिक महत्व देते हैं। स्त्री और पुरुष अपनी आँखों के द्वारा ही परस्पर प्रेम में पड़कर एक दूसरे से प्यार करते हैं। फिर कठिनाई यह है कि मेरे विचार से अंधापन किसी व्यक्ति को कामेच्छा की वृद्धि से असमर्थ नहीं करता। तथा इस सम्बन्ध में कोई भी मनोवैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। लेकिन तुम किसी व्यक्ति से उसकी लड़की को विवाह के लिए कहते समय उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन नहीं करते।

'ओह! तुम भारत में विवाह कर सकते हो लेकिन वह सफल नहीं होगा!

जीवन सुखी नहीं होगा क्योंकि जिस तरह की लड़की तुम चाहते हो वहाँ नहीं *मिलेगी। जब तुम तस्वीर का दूसरा पहलू देख लोगे,* मेरा मतलब पाश्चात्य ढंग के विवाह से है, तो एक ऐसे जीवन-साथी की आकांक्षा करोगे जो तुम्हारे समान ही हो।

'भारत एक कठोर नियमों वाला देश है। विवाह यहाँ एक व्यापार की कड़ी होती है। विवाह से पूर्व लोग सम्पत्ति तथा कर्ज इत्यादि का बहुत ध्यानपूर्वक अध्ययन करते हैं। अमेरिका में निस्संदेह तुम्हारा अंधापन तुम्हारे विवाह में बाधक तो अवश्य होगा क्योंकि वहाँ का दृष्टिकोण भारत से भिन्न है। वहाँ इस बन्धन में लोग बिना माता-पिता के माध्यम के आबद्ध होते हैं। लेकिन इन सब बातों का ज्ञान तुम्हें वहाँ रहकर ही हो सकेगा।

'एक बात मैं तुम्हें और बतलाना चाहता हूँ। अमेरिका में एंग्लो इन्डियनों की समस्या देखने को नहीं मिलती, लेकिन यह यहाँ है। इसके अतिरिक्त तुम्हारा कर्तव्य तथा तुम्हारी सेवा की भावना तुम्हें भारत वापस जाने के लिए बाध्य कर देंगी, जहाँ मातृभूमि होने तथा जन्म लेने के कारण तुम्हारी जड़ें गहरी जमी हुई हैं।'

जब मैं तथा श्री डी फ्रैंको एक आरामकुर्सी में बैठे हुए थे तो मेरी बहन की चेहरे रहित शक्ल मेरी आँखों के सामने घूम गई।

'इसके अतिरिक्त भी कुछ और होगा?' मैंने मूर्खतापूर्वक हठ करते हुए कहा।

उन्होंने हँसकर कहा, 'इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं, सिवाय इसके कि हमारे इस विवाह के बाद भी हमारा जीवन सुखी है।'

'इतने में ही श्रीमती डी फ्रैंको रसोईघर में से आ गयीं और बोलीं, 'डियर ! आप इन्हें मकान तथा ग़ुसलखाना दिखला देंगे, इस बीच मैं स्टूडियो की कोच पर इनका बिस्तर ठीक करूँ।'

अतः डी फ्रैंको मुझे अपने दो कमरे वाले मकान में ले गए जिसके साथ ही रसोई तथा ग़ुसलखाना लगा हुआ था। अक्सर वह मेरा हाथ पर्दे पर रखते थे जिसके द्वारा सोने का कमरा रहने के कमरे से अलग किया गया था। दो बिस्तरों के अतिरिक्त एक उनके लिखने की मेज, और एक रेडियो फोनोग्राफ उनके रहने के कमरे में रखे हुए थे। इसके अलावा एक स्नान करने का स्थान तथा एक रैफ्रीजरेटर भी था। यह एपार्टमेंट मुझे छोटा मालूम होता था, सामान से भरा हुआ था तथा खाने की मेज और रैफ्रीजरेटर के बीच में मुश्किल से इतना स्थान बचा था जिससे एक व्यक्ति कठिनाई से रसोई में जा सकता था।

श्रीमती डी फ्रैंको ने बतलाया, 'यह बहुत अच्छा आरामदेह मकान है और हम दोनों इसमें बहुत प्रसन्न हैं।'

मेरा छोटा-सा स्टूडियो कोच का बिस्तरा तैयार हो गया था और अपने मेजबानों से औपचारिक रूप से अभिवादन कर विदा लेने के उपरान्त मैं लेट गया। मैंने सोचा कि अब किसी भी सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचूँगा। कुछ भी नहीं, अकेलेपन के बारे में भी नहीं। तुम कम से कम वायुयान की परिचारिका के सम्बन्ध में तो सोच सकते हो? तुम अपनी माँ के सम्बन्ध में कुछ क्यों नहीं सोच सकते? उन्होंने तो घर से चलने के पूर्व तुम्हें कोई सुझाव अथवा व्याख्यान नहीं दिया।

श्रीमती डी फ्रैंको एक बार पर्दे के पीछे से अपने सोने के कमरे से आई और होठों में ही धीरे से फुसफुसाते हुए कहा,'मुझे नहीं मालूम आपके यहाँ भारत में रैफ्रीजरेटर होते हैं अथवा नहीं, लेकिन मैं नहीं चाहती कि आपको हमारे रेफ्रिजरेटर की आवाज से कोई बाधा हो। हमारे रैफ्रीजरेटर की मोटर सारी रात बड़े जोर की आवाज करती है। आशा है आप इस ओर ध्यान न देंगे।'

'बिल्कुल नहीं, श्रीमती डी फ्रैंको,' मैंने अपना मुख उनकी ओर मोड़ते हुए कहा।

'ओह!' वह बोलीं, 'मैं तुमसे यह बता देना चाहती थी,' मुझे मूरियेल तथा मेरे पति को जौन कहा करो।'

'बहुत अच्छा,' मैंने कठिनाई से कहा, 'गुड नाइट, मूरियेल!'

'स्वीट ड्रीम्स!' उन्होंने धीरे से कहा और फिर पर्दे के पीछे चली गई।

मेरा दूसरा घर | २०

अमेरिका में मेरे प्रथम दो सप्ताह न्यूयार्क नगर के मैनहैटन उपनगर की सड़कों पर आने-जाने और वहाँ की आवाजों से अभ्यस्त होने में—भारत में मैं आदमियों के शोर और गाड़ियों की आवाजों का अभ्यस्त था, उनसे कहीं भारी शोर यहाँ हो रहा था—और ऊँची-ऊँची इमारतों, जिनमें एम्पायर स्टेट बिल्डिंग भी शामिल थी, की तेजी से चलनेवाली लिफ्टों में उतरने-चढ़ने में बीत गए। डी फ्रैन्को परिवार और मैंने खुशबूदार कोनी द्वीप का भी भ्रमण किया। यह भी एक प्रकार का मेला ही था, लेकिन भारतीय मेलों के समान नहीं था, हालाँकि वहाँ भी खूब जोर-जोर की आवाजें हो रही थीं, जो अमेरिकी तमाशों की चरमराहटों, 'हाट डाग्स' की दूकानों के चारों ओर होने वाले शोर और यहाँ तक कि अमेरिकी स्त्री-पुरुषों की हँसी से अनभिज्ञ व्यक्ति को नयी और विचित्र मालूम पड़ रही थीं।

लोगों के आने-जाने के लिए रास्तों में बनाए गए विशेष प्रकार के घूमने वाले द्वार, चलती-फिरती सीढ़ियाँ, औषधि-विक्रेताओं की दुकानों के काउन्टर जो हमारे देश में कैमिस्टों की दुकानें कहलाती हैं, और डाइम स्टोर सभी अलग-अलग प्रदर्शन-से मालूम पड़ते थे। मेरे मस्तिष्क पर इनमें से किसी का भी इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ा जितना पंसारी तथा किराने की दुकानों का, जो रबड़ की पहियों वाली गाड़ी पर होती थीं तथा जिनमें टोकरियाँ न रहकर काउन्टर बने थे और सब्जी-विक्रेता भाव-ताव नहीं करते थे तथा फेरीवालों के शोर के स्थान पर मन्द-मन्द अलसाये संगीत के स्वरों की ध्वनि थी। जब मैं इन आश्चर्यजनक प्रदर्शित वस्तुओं का निरीक्षण नहीं करता था तो सब्जियों तथा अन्य आवश्यक पदार्थों के अमेरिकी नाम याद करने लगता था। मेरे शब्द-कोष में 'बिस्कुट', 'मिठाई' और टिन की जगह 'कूकीज', 'कैंडी', और 'केन' जैसे शब्द आ गए। डी फ्रैन्को दम्पति ने मेरा एक नये पेय से परिचय कराया; यह था कोका कोला। उन्होंने मुझे

'क्रिबेज' खेलना भी सिखाया और जब कभी हमें शाम को कोई चौथा साथी मिल जाता था तो हम ब्रिज खेलने लगते थे।

इस प्रकार दो सप्ताह व्यतीत हो गये और डी फ्रैन्को दम्पति का मेन में ग्रीष्म कालीन छुट्टियाँ बिताने का समय आ गया। उन्होंने मुझे भी अपने साथ चलने का निमंत्रण दिया।

'अगस्त के दिन मेन में बिताने के लिए सबसे अच्छे होते हैं', उन्होंने कहा। मूरियेल ने कहा, 'ऐसी सुन्दरता को यदि तुम न भी देखो तो भी अपने हृदय में अनुभव करोगे।'

'हर बार', जौन ने कहा, 'जब मैं नाव पर जाता हूँ और मछली पकड़ने की रस्सी गहरे पानी में डाल देता हूँ और जब छड़ी पर रस्सी भारी मालूम होने लगती है तभी, केवल तभी मुझे अनुभव होता है कि मै वास्तव में जीवित हूँ। क्या तुम्हें तैरना पसन्द है?' उन्होंने अचानक पूछा।

'मुझे नहीं आता कैसे तैरा जाता है', मैंने कहा।

'हम सिखायेंगे तुम्हें', मूरियेल बोलीं।

'हाँ! पानी में अपने शरीर को छोड़ने के समान आनन्द और किसी काम में नहीं आता', जौन ने कहा।

'तुम पानी से डरते तो नहीं?' मूरियेल बोलीं।

'बिल्कुल नहीं', मैंने उत्तर दिया, 'मैं कई बार तैरने के तालाब में उतर चुका हूँ। लेकिन भारत में मुझे कोई भी तैरना नहीं सिखाता, क्योंकि उन्हें हमेशा यही डर रहता था कि कहीं मेरा सर तालाब की दीवारों से न टकरा जाय।'

'बिल्कुल फिजूल की बात।' जौन झुँझलाये, 'तुम तालाब की दीवार के पास पहुँचना अपने शरीर तथा मुख के अनुभव से पता लगा सकते हो। ठीक उतनी ही आसानी से जितनी आसानी से किसी अन्य पदार्थ का अनुभव करते हो।'

'खैर, कुछ भी हो', मूरियेल ने कहा, 'मेन में हम पानी के तालाबों में नहीं तैरेंगे।'

मैंने अनुभव किया कि जौन तथा मूरियेल मेन के सम्बन्ध में इस तरह बातें कर रहे थे जैसे मैं रावलपिण्डी में अपनी साइकिल चलाने के बारे में बातें किया करता था। सम्भव है, मेन में उनके पास साइकिलें भी हों तथा साइकिल चलाने के लिए बड़े-बड़े मैदान भी।

'मेन चलते समय यदि तुम चाहो तो हम वाटर टाउन में रुक जायँ और वहाँ तुम अर्कन्सास जैसी बेकार जगह जाने के स्थान पर पर्किन्स में दाखिले के बारे में फैरल से बातें कर लेना', जौन ने कहा, 'मैं तुम्हारा दक्षिण की ओर जाना पसन्द नहीं करता। इसके अतिरिक्त वह स्थान अंग्रेजी सीखने के लिए भी उपयुक्त नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें अर्कन्सास में पढ़ाने का निश्चय कैसे कर किया। वह एक सरकारी स्कूल है। वहाँ अपने खर्चे से पढ़ने वाले शायद तुम अकेले ही विद्यार्थी होगे। अब जब तुम यहाँ आ गए हो, मुझे विश्वास है कि फैरल तुम्हें पर्किन्स में दाखिला दिला ही देंगे।'

उसी दिन मूरियेल की एक मित्र हमारे यहाँ आई और उसने बतलाया कि अर्कन्सास में पोलियो—एक छूत की बीमारी—फैली हुई है। मेरी सुविधा के लिए मूरियेल की मित्र ने पोलियो को विस्तार से समझाते हुए बतलाया, 'पोलियो अमेरिका में एक जानी-पहचानी बीमारी है और विशेष रूप से गर्मियों में बहुत होती है। इसमें शरीर की मांस-पेशियों पर फालिज पड़ जाता है और कभी-कभी तो आदमी हमेशा के लिए चलने-फिरने तक से असमर्थ हो जाते हैं। अक्सर इसके शिकार काल के ग्रास भी बन जाते हैं। मेरे एक मित्र को पोलियो हो गई थी···'
मैं बिल्कुल स्तब्ध-सा रह गया। मूरियेल के मित्र की कल्पना-शक्ति निस्संदेह काफी तेज थी। और मैंने निश्चय किया कि मैं अर्कन्सास बिलकुल नहीं जाऊँगा।

लेकिन उस दिन शाम को जब मैंने श्री वूली से टेलीफोन पर बातें कीं तो वह बोले, 'बेटा, हम उत्सुकता से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। न्यूयार्क में अब और अधिक मत ठहरो। अगले दो हफ्तों में स्कूल का पाठ्य-क्रम शुरू हो जायगा और तुम्हें वहाँ पहले ही पहुँच जाना चाहिए जिससे तुम हमारे यहाँ के व्यवहार तथा नियमों से परिचित हो जाओ। क्या तुम पोलियो से डर गये हो ? डर ही किसी भी अन्य कारण से अधिक इसका जन्मदाता है।' उन्होंने हँसते हुए कहा, 'बेटा, कब तक तुम्हारे पहुँचने की मैं आशा करूँ ?'

मैं अर्कन्सास जाऊँगा ही। केवल श्री वूली ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने मुझे अमेरिका आमंत्रित किया था।

एक चहारदीवारी थी, बहुत ऊँची चाहारदीवारी। किसी भी स्थान से अधिक ऊँची। वहाँ बहुत-सी भेड़ें थीं। इतनी अधिक कि उनकी लाइन भी खत्म होने को नहीं आती थी। एक-एक करके कूद-कूद कर बाड़े को पार करती जा रही थीं।

बाड़ ऊँची होती जा रही थी और भेड़ें भी अधिक ऊँचाई पर कूदती जा रही थीं।

और अब मैं भी एक भेड़ बन गया था और मेरी दाई ओर मेरे कान में कोई फुसफुसा रहा था कि तुम कभी भी नहीं कूद सकोगे। मैं तुम्हें बतलाये देता हूँ, तुम इसे कभी भी नहीं कूद सकोगे। और मुझे ऐसा अनुभव होता जैसे भेड़ों की आँखें मिलकर मुझे देख रही हों।

'अरे यह तो डर गया है', एक चीखी और दूसरी बोली। 'यह शरीरधारी मानव एक बुरी भेड़ ही बन पाते हैं', और वे हँसे। मेरी मांसपेशियाँ सख्त हो गई और बाड़ हिमालय पर्वत से भी अधिक ऊँची प्रतीत होने लगी। मेरे बाईं ओर वाली भेड़ ने कहा, 'तुम इसे पार कर सकते हो। ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि इस अवस्था में बाड़ की ऊँचाई का उस समय तक अनुमान नहीं होगा जब तक तुम दूसरी ओर कूद नहीं जाओगे।'

मैं गिर रहा था, लुढ़क रहा था। किसी चीज का मैं सहारा लेना चाहता था, लेकिन वहाँ कुछ था ही नहीं, केवल खाली स्थान। इसके बाद नंगा फर्श था। हमेशा की तरह लड़के अपना टिफन खाने के लिए फर्श पर बैठे थे। मैं कमरे में देर से आया था और आते हुए अब्दुल की कोहनी से मेरा घुटना रगड़ गया। अब उसने मेरा घुटना पकड़ लिया था और पेंट पकड़कर जोर से खींच रहा था।

'तुमने मेरी चाय गिरा दी है', वह चिल्लाया, 'अगर मेरे पास चाकू होता तो मैं तुम्हारी टाँग काटकर अलग फेंक देता।'

'मुझे दुःख है', मैंने कहा, 'लेकिन कितनी भीड़ है और तुम दरवाजे पर बैठे हो।'

दरवाजे में से गुजरने लायक स्थान भी क्यों नहीं था? यहाँ हर एक चीज इतनी ठसाठस क्यों भरी हुई है? और मोटे-मोटे बदसूरत पैरों वाले व्यक्ति, जिन्होंने कभी भी पैरों में जूते नहीं पहने, चाय क्यों पीते हैं? अब्दुल जान-बूझकर मेरे लम्बे-लम्बे मोजों के भीतर चाय उँडेल रहा था। चाय गरम थी और मैंने अब्दुल को ठोकर मार दी और अपनी टाँग को ढीला करने का प्रयत्न किया परन्तु उसने मेरा पैर जूते सहित जोर से पकड़ लिया और उसे नहीं छोड़ा।

मैं छोटा था तथा अब्दुल बड़ा। मैं कमजोर था और वह बलिष्ठ। चाय गरम थी और जलते हुए पैर से उसकी तेज बदबू आ रही थी। मैं भागना चाहता था। माँ के पास भागकर रोना चाहता था और अब्दुल के छोटे-छोटे बाल खींच रहा था।

'मैं तुम्हें अपने से बड़े लड़कों के बाल खींचने का मजा चखा दूंगा', उसने कहा और तपाक से उठकर खड़ा हो गया। मैं तेजी से दौड़कर अब्दुल की नजरों से ओझल हो गया। मैं घर की ओर भाग रहा था जहाँ फिर कभी अब्दुल मुझे नहीं ढूँढ सकता था।

तभी मैं अचानक टकराकर गिर पड़ा और जागकर मैंने पाया कि मैं लोहे के पलंग को अपने हाथों से कसकर पकड़े हूँ। बिस्तर की श्वेत धुली हुई चादर काफी पसीना आने के कारण मेरी पीठ से चिपक गई थी। अब भी बड़े जोर से मुझे पसीना आ रहा था। कल मैं न्यूयार्क में था और जहाँ डी फ्रैन्को दम्पति के साथ दो सप्ताह बड़े आराम से काटे थे। और अब मैं अर्कन्सास के अंधों के स्कूल के बच्चों की एक लाइन में पड़े तीस बिस्तरों में से एक पर पड़ा हुआ था। मैंने अपनी ब्रेल घड़ी में समय देखा। अभी केवल साढ़े बारह बजे थे। रात का मुश्किल से अभी प्रारम्भ ही हुआ तथा लगभग आधे घंटे से मैं नींद न आने के कारण बिस्तर पर पड़ा-पड़ा करवटें बदल रहा था। मैं जान-बूझकर जबरदस्ती जागा रहना चाहता था, जिससे मैं फिर वही भयंकर स्वप्न न देखने लगूं। इस स्कूल में आखिर कौन-सी विशेष बात थी जिसके लिए मैंने दस हजार मील की यात्रा की थी ? कल ही मैं घर पत्र डालकर इसके सम्बन्ध में सूचना दूंगा। तथा मैंने स्कूल के भवन के कल्पना-चित्र का स्मरण करना प्रारम्भ कर दिया जिसका मैंने उस दिन प्रातः-काल श्री बुली के साथ भ्रमण किया था। कोई भी अन्य लड़का अभी नहीं आया था।

भवन उपयोगी तथा सुडौल आकार का बनाया गया था और उसकी कल्पना करना कठिन नहीं था। इस भवन का एक भाग लड़कों के लिए सुरक्षित था तथा दूसरा लड़कियों के लिए। मुख्य भवन के बीच में एक पतली-सी गैलरी थी—जिसमें छः कक्षाओं के कमरे थे। हर एक कमरे में पन्द्रह विद्यार्थियों के बैठने का स्थान था। एक हाल था तथा दो कमरों का एक आफिस था जिसमें सुपरिन्टेडेंट, प्रिन्सिपल तथा पुस्तकाध्यक्ष की मेजें थीं।

दूसरी मंजिल पर गैलरी के ऊपर एक छोटा-सा पुस्तकालय था तथा एक संगीत कक्ष था जो लड़कियों के सोने की जगह को लड़कों से अलग करता था। इस गलियारे से नीचे जमीन पर कुछ कक्षाओं के कमरे, रसोई तथा भोजन करने के लिए कमरे थे जिनमें एक विद्यार्थियों के लिए था तथा एक शिक्षक वर्ग के लिए।

लड़कियों के समान ही लड़कों की डौरमीटरियाँ भी तीन भागों में बाँट दी गई थीं—एक छोटे बच्चों के लिए जो दस वर्ष से कम आयु के थे, सुरक्षित थीं तथा दूसरे बड़े लड़कों के लिए, जो साधारणतया दस वर्ष से चौदह वर्ष की आयु के होते थे, सुरक्षित कर दी गई थीं। इसके अतिरिक्त एक तीसरा भाग चौदह वर्ष से अधिक आयु वाले बच्चों के लिए निर्धारित था, जिसमें मुझे रखा गया था। मुझे ताले वाली एक छोटी-सी आलमारी भी मिली थी जो लगभग छः फुट लम्बी तथा दो फुट चौडी थी। एक लम्बे कमरे में ऐसी उन्तीस आलमारियाँ दो कतारों में लगाई गई थीं, जिनके अन्त में दो नालियाँ बनी हुई थीं। मुझे ऊपर, सोने वाले कमरे में एक बिस्तर मिला था। इस एक कमरे में ऐसे तीस बिस्तर वाले पलंग थे तथा हर एक पलंग के बीच का फासला मुश्किल से एक फुट रहता था। अन्य बड़े लड़कों के समान ही मुझे भी एक छोटा-सा आराम कक्ष मिला था। लड़के तथा लड़कियों के डौरमीटरियों के बीच में जगह-जगह फैले हुए अध्यापक मण्डल के कमरे थे।

भवन-निर्माताओं ने भवन-निर्माण के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा था कि समस्त विद्यार्थी वर्ग, जिसमें पाँच वर्ष की आयु से लेकर तीस वर्ष की आयु तक के विद्यार्थी थे, तथा जिनकी संख्या १०० से कुछ अधिक थी; १८ अध्यापक जिनमें निरीक्षक महोदय तथा प्रिन्सिपल भी सम्मिलित थे तथा वे सभी लोग जो भवन के प्रबन्ध में सहायक होते थे, उचित रूप से रह सकें तथा कार्य कर सकें। इस भवन का प्रसार बम्बई के दादर के अन्धों के छोटे-से स्कूल से अथवा हमारे लाहौर के घर से तीन गुना था। भवन-निर्माताओं के ध्यान से कुछ थोड़ी-सी सम्भवतः चूक भी हो गई थी। मुख्य भवन से कुछ पीछे तीन छोटे मकान और बने हुए थे। इनमें औद्योगिक शिक्षा दी जाती थी और विद्यार्थियों को बढ़ईगीरी और कुर्सी बुनना सिखाया जाता था। दूसरे स्थान में कैलिस्थैनिक और मल्लयुद्ध का प्रशिक्षण दिया जाता था तथा इनकी प्रतियोगिताएँ होती थीं। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग शनिवार के नृत्य के लिए भी किया जाता था तथा अन्तिम भाग में मुख्य भाग से अतिरिक्त बची हुई लड़कियों को शिक्षण दिया जाता था।

लड़कों की ओर से गलियारे में, जिसमें मुख्य कक्षाओं के कमरे थे, एक विशेष आकर्षण था जो स्पष्टतः भवन-निर्माण के समय नहीं बनाया गया था तथा बाद में छुट्टियों के बीच निर्मित कराया गया था। इस बेढंगे-से निर्माण के पीछे एक नवनिर्मित काउन्टर पर एक फ्रीजर में कुछ हलके पेय बोतलों में भरे हुए रखे रहते थे

तथा इसके पास ही एक चाकलेट केस रखा रहता था। मुझे बतलाया गया कि स्कूल की उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों पर इसके प्रबन्ध का उत्तरदायित्व है।

अपने बिस्तर पर लेटे हुए मै भवन की रूपरेखा पर सोच रहा था, जैसा मैंने सवेरे प्रत्येक कमरे में आकर देखा था, तथा मुझे आश्चर्य हो रहा था किस प्रकार उस खाली भवन में सौ विद्यार्थियों के आने पर एक जागरण का वातावरण व्याप्त हो जाएगा तथा खाली निर्जन-से बड़े कमरों में फिर जीवन का संचार हो जाएगा। अपने शयनागार में भी जो भवन के बिल्कुल एक सिरे पर स्थित था, फ्रीजर के इंजिन की ध्वनि आ रही थी तथा मुझे उस दिन अपने कमरे में बुक-कीपर के टाइपराइटर की टिप-टिप की याद आई। मैं सोच रहा था कि लड़कों के बीच में भवन के दूसरे सिरे पर लड़कियों के परस्पर होने वाले वार्तालाप को मैं सुन सकता था।

लेकिन अभी तो विद्यार्थियों के वापस आने में दो सप्ताह शेष थे। मुझे अब्दुल के स्वप्न ही क्यों आ रहे थे ? मुझे परेशान करने के लिए यहाँ भी अब्दुल रहेगा ? लेकिन अब तो मैं बड़ा हो गया था। दुगना, नहीं दादर स्कूल की उम्र से शायद तीन गुना बड़ा हो गया था, तथा मैं अब बड़े लड़कों की डौरमीटरी में सो रहा था। फ्रीजर का इंजन चलना बन्द हो गया था। मै जानता था कि कुछ देर बाद वह फिर चलने लगेगा और ऐसा ही हुआ। प्रत्येक वस्तु पर नीरवता का वातावरण छाया हुआ था।

मेरे पलंग के सिरहाने की ओर एक खिड़की थी। बाहर हवा चलने से पत्तों के चुरमुराने की आवाज आ रही थी। अगस्त मास की उस गरम रात को भी हवा चल रही थी तथा निर्जन और उजाड़-सा प्रतीत होता था। मुझसे यह नीरवता सहन नहीं हो रही थी। अचानक ही किसी वस्तु के तेजी से खड़खड़ाने की आवाज होने लगी। मुझे डर लगने लगा, क्योंकि आवाज डरावनी थी और ऐसा मालूम होता था जैसे यह सारे भवन में फैलती जा रही हो। मैं बिस्तर पर कूद पड़ा और सीढ़ियों पर से यह कहता हुआ दौड़ा, 'कोई है? यहाँ कोई है? कोई हथौड़ी पीट रहा है।' लेकिन इस आवाज का पता इसके अनियमित प्रतिध्वनित होने के कारण नहीं चला। मैं पागलों के समान चिल्ला रहा था। तब मैंने भवन के दूसरे छोर से लड़कियों के कक्ष से आते हुए कदमों की आवाज सुनी, उसने कहा, 'क्या मामला है ?'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

वह ठीक मेरे सामने आकर दूसरी ओर देखते हुए रुक गये और पूछने लगे, 'तुम कहाँ हो ? क्या मामला है?'

'सुनिये।' मैं अभी मुश्किल से कह पाया था, तभी उसके तेजी से घूमने के कारण उसके शरीर ने मेरे शरीर के साथ घर्षण किया।

'ओह यहाँ है आप।' उसने अपना हाथ मेरे कन्धे पर रखते हुए कहा, 'क्या बात है ? क्या आपको घर की याद आ रही है ? अपने आपको स्थिर कीजिये, और मन को शान्त कीजिये।'

'लेकिन वह आवाज···क्या आप सुन नहीं रहे हैं ? क्या आप बहरे हैं ?

'ओह वह।' वह बोला, 'वह भाप के पाइप है।'

'भाप के पाइप,' मैंने अपना प्रश्न दोहराया।

'भाप के पाइप, जिनसे हम सर्दियों में भवन को गरम करते हैं। मिस्त्री लोग आज इन पर काम कर रहे थे और उन्होंने शायद उन्हें खुला छोड़ दिया है।'

'मै इस आवाज को पसंद नहीं करता।' मैंने कहा, 'मैं इसे पूरी तरह घृणा करता हूँ। मै वापस घर जाना चाहता हूँ।

उसका हाथ मेरे कन्धे पर काँप रहा था। उसने जोर से गला साफ करने के बाद कहा, 'मैं तो यहाँ का रात का पहरेदार हूँ। क्या मैं आपकी कोई सहायता कर सकता हूँ ?'

'मुझे आप अकेला छोड़ दीजिये,' मैंने तत्काल कहा।

इसके बाद मैंने उसके वापस जाते हुए कदमों की ध्वनि सुनी। मैं उसके पीछे दौड़ना चाहता था और कहना चाहता था, 'मुझे बड़ा दुःख है।' बूढ़े आदमी हमेशा दयावान और विचारवान होते हैं। जरूरत पड़ने पर वे फौरन अकेला छोड़ देते हैं। सम्भव है, इस स्कूल में और भी ऐसे बूढ़े आदमी हों जो इस तरह कन्धे पर हाथ रखते हों और किसी को दुःख पहुँचाने वाली बात न कहते हों।

मैं बाहर चला गया और साथ के दरवाजे की देहली पर बैठ गया। जब मेरा हृदय सामान्य रूप से धड़कने लगा और मुझे यह महसूस होना बन्द हो गया कि वह बाहर निकल पड़ेगा तो मैंने कुछ खोज करने का निश्चय किया। मैं यह जानना चाहता था कि वहाँ भवन के अतिरिक्त और क्या-क्या है ? मैंने चारों ओर घूमना शुरू कर दिया। पहले तो मुख्य भवन के चक्कर लगाने शुरू किये। मैंने इस काम के पूरा होने का समय निर्धारित किया। यदि मैं तेज चलूँ तो इसका एक चक्कर दस

मिनट में लगा लेता था। भवन के चारों ओर जगह-जगह घास लगी थी। इसे मैंने उस दिन प्रातःकाल नहीं देखा था। लेकिन बाद में उस रात मुझे बंगलों के पीछे एक जंगल भी मिला। मैं कुछ दूर जंगल में गया और कई इंच मोटी सूखी पत्तियों की परत पर, जो उस ऊबड़-खाबड़ जमीन पर फैली हुई थीं, चलने लगा। ये पत्तियाँ मेरे नंगे पैरों के नीचे चरमराती थीं। मैं वापस अन्दर नहीं जाना चाहता था, और मानो मुझे पत्तियों का एक बड़ा कालीन मिल गया था जो मुझे कोमलता प्रदान कर रहा था।

मैं गहरी नींद सोया और जब जागा तो सुबह हो गई थी तथा मैं हल्की-हल्की ठण्ड का अनुभव करने लगा था। मैं भवन के मुख्य द्वार की ओर गया तथा वहाँ पहरेदार को बैठे हुए पाया। जैसे ही मैं अन्दर जाने लगा तो उसने पूछा, 'क्या अब आपकी तबियत कुछ ठीक है श्रीमान्?'

'बहुत अच्छी', मैंने कहा।

वह उठ बैठा और पीठ पर से अपनी कमीज को झाड़ा, 'वायदा करो तुम किसी से इस बारे में कुछ नहीं कहोगे ?'

'निश्चय ही मैं नहीं कहूँगा', वह बोला। 'मैं भली प्रकार समझ गया हूँ। अब लगभग साढ़े पाँच बज गये हैं श्रीमान्। और मेरे जाने का समय हो गया है। आपको अकेले यहाँ कोई कष्ट तो नहीं होगा ?'

'नहीं', मैंने विश्वास के साथ कहा और गलियारे के बीच में से होकर भवन के अंत में लड़कों के कक्ष की ओर चलने लगा।

सभी कुछ आश्चर्यमय तथा अग्राह्य-सा लग रहा था। स्कूल के कुछ समय तक लगने के बाद ही मैं वहाँ के कार्यक्रम का अभ्यस्त हो पाया। लाकर रूम में होने वाली सभी व्यर्थ की बातें तथा कक्षा के कमरे में होनेवाली सब टिप्पणियाँ तथा मजाक सभी कुछ मेरी शिक्षा के लिए उसी प्रकार व्यर्थ थे जिस प्रकार न्यूयार्क के सबवे स्टेशन का शोर होता था। अपना सर आगे झुकाये मैं ध्यानपूर्वक अपने से परिचित कराये जाने वाले विद्यार्थी के स्वर को सुनता था और उसके हाथों की बनावट का ध्यान रखता था। धीरे-धीरे कुछ तो मेरी तीव्र स्मृति के कारण, कुछ मेरे शीघ्र अंगरेजी के ज्ञान के विकास के कारण तथा कुछ व्यक्तियों के बार-बार सम्पर्क में आने के कारण उनके व्यक्तित्व की छाप मेरे मस्तिष्क पर पड़ने लगी। आम विद्यार्थियों के लिए शुरू में मैं कौतूहल का विषय बना रहा लेकिन

कुछ समय के पश्चात् जब उन्होंने देखा कि न तो मेरे सिखों के समान बाल हैं, न ही दाढ़ी है तथा न ही अन्य सामान्य लड़कों से अलग कोई विशेष बात है, तो वे मुझे भी अन्य सामान्य लड़कों की भाँति समझने लगे। पहले सप्ताह के बाद उन्होंने भारत के बारे में मुझसे कोई प्रश्न नहीं पूछा।

स्कूल के ये सभी प्रारम्भ में ही निरन्तर होने वाले अनुभव इतने अधिक थे कि मेरी इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो गई थीं लेकिन अब दैनिक कार्यों में ठीक ढंग से रुचि लेने लगा था और मेरी सूंघने की, सुनने की तथा छूने के ज्ञान की शक्तियाँ फिर से जागृत हो गई थीं।

एक दिन शनिवार को रात के समय लाकर के कमरे में इतना अधिक शोर-गुल हुआ कि मैं सिवाय अपने कपड़े बदलने के और कोई भी काम नहीं कर सका। राबस्ट औथर प्रसन्नतापूर्वक दाढ़ी बनाते हुए सीटी बजा रहा था तथा गरम पानी नल में से निरन्तर निकल रहा था। मेनेथ, जिसकी आवाज बहुत तेज थी, टाई पसन्द करने के लिए किसी अर्ध अंधे को ढूंढ़ने का भरसक प्रयास कर रहा था। 'क्या कमरे में जार्ज है क्या ? जार्ज पैट कहाँ गया है ?' वह अपनी तेज आवाज में चिल्ला रहा था। बिना, जो अब तक अपने कपड़े पहन चुका था, अब अपने क्लै-रीनेट पर मैक्स के साथ अभ्यास कर रहा था जिसने एक बार कहा था, 'मैं बिली के बजाने को सह नहीं पाता।' तथा अपनी आवाज को खूब तेज करके गाकर संगीत को दवाने का उसने प्रयास किया।

बिग ने अपने जूते बेंच पर रख दिये थे जो लाकरों की दो लाइनों को अलग करती थी और वह इस बात की शिकायत कर रहा था कि 'जो' ने जूतों को अच्छी तरह नहीं चमकाया। 'एक निकिल में तुम कितने काम कराना चाहते हो ?' जो ने तेजी से प्रत्युत्तर दिया। स्वभावतः वह लाकर रूम के अन्य लड़कों का सम-र्थन चाहता था।

'जो', बिगजिम ने गम्भीर आवाज में कहा, 'यदि वह अंधा केनेथ मेरे जूतों की ठोकर में अपना चेहरा न देख पाया तो मैं मार-मार कर तुम्हारा भेजा निकाल दूंगा और तुम्हें आगे के जीवन के बारे में सोचने की जरूरत न पड़ेगी।'

'जो सोचेगा', पास से गुजरता हुआ एक लड़का बोला।

अब तक एक दूसरे के पीछे एक लाइन लग गई थी और कई आवाजें एक साथ

शीघ्र हजामत समाप्त करने के लिए उठीं, 'तुम्हें दाढ़ी बनाते अब पूरे दस मिनट हो गए हैं।'

'भगवान को धन्यवाद दीजिए कि आपकी दाढ़ी मेरे समान सख्त नहीं हैं', दूसरी ओर से आवाज आई।

'लेकिन' एक अन्य लड़के ने शिकायत भरे स्वर में कहा, 'दूसरे नाच के समय में अब केवल आधा घण्टा शेष रह गया है।'

'धैर्य बहुत बड़ा गुण है।' औथर ने उसे खिजाया। लेकिन वह प्रसन्नतापूर्वक सिंक के पास से हट गया।

मैं झुककर अपना मोजा अपने लाकर की पेंदी में ढूँढ रहा था, तभी एक दूसरे लड़के का घुटना मेरी पीठ में लगा। साथ ही वह अपने हाथ मेरी गर्दन पर डाल कर हँसने लगा और क्षमा माँगने लगा। उसके मुख से हजामत बनाने के साबुन की सुगंध आ रही थी तथा उसने अपने गीले हाथों से मेरी कमीज पकड़ रखी थी जिसे मैंने जरा देर पहले ही पहना था। मेरी कमीज के अगले भाग को उसके हाथ खराब कर रहे थे। लेकिन नाच के बारे में अत्यधिक घबराहट होने के कारण मैंने उससे कुछ नहीं कहा। मैं जानता था कि इससे बचने का कोई भी चारा नहीं था। मेरा सिर अभी से चक्कर खा रहा था। यह पतला-सा संकरा कमरा विभिन्न वस्तुओं से भरा हुआ था। तम्बाकू, दाँतों के पेस्ट, जूतों की पालिश, प्रसाधन की सामग्री, बालों के तेल तथा हजामत बनाने की क्रीम आदि चीजों की गन्ध वातावरण में भर गई थी और उस हवा में दम-सा घुटने लगा था। शनिवार के नाच की जल्दी-जल्दी तैयारी करने से यह गन्ध और भी तेज तथा भारी होती जा रही थी।

मोटा चार्ली गुलखाने से बाहर आ गया था तथा दरवाजे पर जोर से थपकी देकर उसने अपने आने की पूर्व परिचित ढंग से सूचना दी।

जैसे ही वह कमरे में घुसा औथर तथा केनेथ दोनों ने ही उसे अपने-अपने कपड़ों का निरीक्षण करने के लिए चिल्लाकर बुलाया।

फिर उसके उपनाम से सम्बोधन करते हुए पुकारा, 'ओ एक आँख वाले बैल ! इधर आ जरा।'

'जो' ने अपने स्वाभाविक शिष्ट ढंग से बोलते हुए कहा, 'पहले बेचारे लड़के का खुद कपड़े तो पहन लेने दो।'

'तुम मूर्ख हो जो', आर्थी ने तत्काल कहा, 'क्या तुमने कभी बैलों को कपड़े पह-

नते सुना है ? तुम्हें अपने अन्धेपन को इस तरह प्रकट नहीं करना चाहिए।'

जिम अभी भी जो के साथ तर्क कर रहा था लेकिन इस बार विषय नाच का था। 'तुम्हें क्या तकलीफ है 'जो' ? तुम कभी नाच में नहीं आते। क्या इसका कारण यह है कि तुम अपनी पसन्द की लड़की के लिए आर्थिक कठिनाई के कारण कोक नहीं खरीद सकते ?'

लाकर रूम के दूसरे सिरे से इसी बीच औथर बोला, 'बिग जिम, यदि तुम 'जो' को नाचने के लिए ले जाओ तो मैं इसे एक निकिल शायद एक डाइम दे दूंगा जो इन दोनों के लिए काफी होगी।'

'ओह ईश्वर न करे ! मैं नाच में जाकर क्या करूँगा ?' जो ने हताश होते हुए कहा। यद्यपि बिग जिम अब भी उससे जोर-जोर से मजाक कर रहा था लेकिन बाकी सभी चुप थे।

मोटा चार्ली अपने कपड़े पहनता जा रहा था और हर एक लाकर में प्रत्येक लड़के के कपड़ों का निरीक्षण भी करता जा रहा था। वह मेरे लाकर के पास ही खड़ा हुआ केनेप के गले में टाई बाँध रहा था। मैं प्रतीक्षा कर रहा था और जानता था कि अब वह मेरा ही निरीक्षण करेगा।

'तुम तो बिल्कुल लोगों को मार ही डालोगे।' मेरी ओर मुड़कर वह बोला।

'नहीं तो !' मैंने तुरन्त एक मुस्कान के साथ उत्तर दिया। उसने मेरी टाई बाँधी, अपने कन्घे से कुछ विशेष ढंग से मेरे बालों को संवारा और बिना कोई औपचारिक बात कहे चला गया। उस दिन शाम को पहली बार मैंने अपने शरीर के विभिन्न अवयवों में आराम अनुभव किया। अब वहाँ की तेज गन्ध सेंट की भीनी-भीनी सुगन्ध में परिवर्तित हो गई थी। मैं अपने को उस अभिनेता के समान समझ रहा था जिसे अपने पार्ट का पूर्व ज्ञान बिल्कुल भी न हो तथा जो अपने स्वभाव के विपरीत अभिनय करने के लिए बाध्य किया गया हो। मैं निश्चय ही अभी भी कपड़े बदलने वाले कमरे में ही था लेकिन मोटे चार्ली की उपस्थिति ही इतनी अधिक उत्साहवर्धक थी, मानो एक सिद्धहस्त तथा कुशल अभिनेता किसी नौसिखिये को ध्यानपूर्वक सिखाता है। पूरी तरह तैयार हो जाने के पश्चात् मैं ड्रेस रिहर्सल के लिए अपने लाकर के पास प्रतीक्षा करने लगा। सब लड़के कमरे के बाहर जा रहे थे और यह निश्चित ही था कि वे अपनी लड़की मित्रों के लिए बिल्डिंग की दूसरी ओर जा रहे थे। आखिर घड़ी ने आठ बजाये और मैं लड़कों के पीछे-पीछे उस

क्लब की ओर चल दिया जिसे वे 'अविवाहित मनोवृत्ति वाले लोगों का क्लब' कहते थे। 'मनोवृत्ति' शब्द का प्रयोग सदस्यों के समय-समय पर बदलने वाले रुख का परिचायक था।

मुख्य भवन के जिमनाज़ियम तक जाने के लिए मुश्किल से एक ब्लाक के अंश का ही फासला तय करना था और जिस समय हमने प्रवेश किया, संगीत बज रहा था तथा कम से कम आधा हाई स्कूल हाल में एकत्र था। मुश्किल से हाल हमारे घर के ड्राइंग रूम से दुगना बड़ा था। पहले कभी भी किसी लड़की के सम्पर्क में न आने के कारण तथा नाच न जानने के कारण मैं पीछे दीवार से लगकर खड़ा कमरे में होने वाले क्रियाकलापों का अनुभव करने लगा। लोगों की सक्रियता कमरे के छोटा होने तथा व्यक्तियों के अधिक होने के कारण और भी ज्यादा पुरजोर मालूम पड़ रही थी। जहाँ मैं खड़ा था वहाँ भी, कभी-कभी किसी का शरीर मेरे शरीर से रगड़ खा जाता था। इस हर्ष तथा उल्लास से परिपूर्ण वातावरण में मैं अकेला खड़ा हुआ एक सम्पूर्ण दृश्य की कल्पना करता रहा, जब तक मेरे ध्यान में यह तथ्य न आया कि उपस्थित जन समुदाय में से कितने ही बिल्कुल अन्धे थे, और जो नहीं थे उनके पास मेरी ओर ध्यान देने का समय ही नहीं था।

'मेरा नाम ऐन लैम्बार्ट है वेद', मैंने सुना, 'आओ मेरे साथ नाचो न ?'

'नहीं', मैंने बड़ी कठिनाई से कहा। फिर जरा सोचकर कहा, 'मैं नाचना नहीं जानता।'

'मैं तुम्हें सिखा दूंगी', उसने सरलता से कहा।

'मुझे सीखने की इच्छा नहीं है', मैंने कहा। वह चली गई।

रे मेरे बराबर में ही खड़ा था। वह बोला, 'तुम बिल्कुल मूर्ख हो। क्या तुम जानते हो, किसने तुम्हारे साथ नाचने का प्रस्ताव किया था ?'

'मुझे इसकी चिन्ता नहीं रे' मैंने कहा।

'स्कूल की सबसे सुन्दर और चुस्त लड़की ने और वह भी पहले नाच में ही, क्या तुम शिष्टता के नियमों से बिल्कुल अनभिज्ञ हो ? तुम बिल्कुल मूर्ख हो।'

मैंने शेष समय वहाँ ठहरना उचित नहीं समझा तथा लाकर रूम में वापस आकर कपड़े उतारना शुरू कर दिया। जो पास ही बेंच पर बैठा गुनगुना रहा था, 'होम, स्वीट होम !' 'अपना घर ! अपना प्यारा घर !'

'कौन है ?'

'मैं हूँ,' मैं बोला।

'अरे ! तुम वापस भी आ गए,' वह बोला।

'मेरी तबीयत ठीक नहीं मालूम पड़ रही है' मैं बोला और जो ने फिर उसी प्रकार गुनगुनाना शुरू कर दिया। मै जब सोने के कमरे की ओर जाने लगा तो उस लम्बे लाकर रूम में उसी के गुनगुनाने की एकमात्र ध्वनि सुनाई दे रही थी।

हमेशा हाउस मास्टर की आवाज के साथ दिनचर्या प्रारम्भ होती थी। वह एक बहुत बूढ़े व्यक्ति थे। उनके व्यग्र स्वभाव तथा सुस्त और हास्योत्पादक ढंग से बोलने के कारण कोई भी नहीं डरता था। स्कूल लगने के प्रथम दिवस से ही हर कोई हाउस मास्टर के स्वभाव से परिचित हो जाता था। वह हमेशा दरवाजे में खड़े होकर जोर से कहते थे, 'गुड मार्निंग भाइयो ! अब समय आ गया है, जब हमें संसार का मुकाबला करना है। तुम बाहर चिड़ियों के चहचहाने को सुनकर जान सकते हो कि सारी दुनिया निर्मम नहीं है। उठो दोस्तो ! क्या तुम्हें गिरजे से तिरकर आने वाला संगीत नहीं सुनाई पड़ रहा है ?'

लेकिन गिरजे का संगीत कभी नहीं सुनाई पड़ता था। केवल घण्टों की तेज गूँजने वाली आवाज सुनाई पड़ा करती थी।

'उठो भाई,' हाउस मास्टर कहते जाते 'रसोइया तुम्हें हैम और अण्डे देगा और एक सन्तरे के जूस का बड़ा गिलास तथा पका-पकाया अन्न भी देगा।'

हैम और अण्डों के नाम अलग-अलग व्यक्तियों पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया डालते। कभी तेज आवाज वाले केनेप के होठ चप-चप करने लगते और कभी चबी अर्नी—इसी नाम से सब उसे बुलाते थे—अपने सिर को कम्बल में छिपाये हुए कहता, 'मुझे वर्षों से यहाँ हैम और अण्डे नहीं मिले और मैं पिछले नौ वर्षों से इस स्कूल में हूँ। नौ वर्ष जो तुम्हारे यहाँ रहने की अवधि से नौ गुना होते हैं और यहाँ केवल कुछेक सुखाए गए टोस्ट तथा अधपके भीगे हुए-से अण्डों के अतिरिक्त और कुछ भी नाश्ते में नहीं मिलता। बहुत हुआ तो शायद स्टार्च-प्रधान अन्न मिल जाये।'

ऐसी सभी बातों की अवहेलना करते हुए हाउस मास्टर कहते, 'मेरे ईसाई सिपाहियो ! उठो और एकदम मार्च करने लगो।' और वह यह कहते हुए बाहर चले जाते कि 'नाश्ते के लिए यह अंतिम निमंत्रण है।' और उसी समय नीचे घड़ी में छः बजकर पैंतालीस मिनट होते। स्लीपर खोजने के लिए पैरों की आवाज सुनाई

पड़ती और जो अब भी सोते रहते थे उन्हें जार्ज और पैंट की नियमानुसार मिलने वाली सजा सहन करनी पड़ती थी। जैसे ही दोनों शैतान किसी लड़के का बिस्तर उलट देते या उसे इधर-उधर घुमाते या साथ वाली कुर्सी पर डालते तो चारों ओर एक शोर मच जाता था। कुछ लड़के उन्हें इस कार्य के कारण बुरा-भला कहते रहते थे तथा दूसरे लड़के अपने को जागता हुआ बतला कर विरोध प्रदर्शित करते तथा हाउस मास्टर जार्ज तथा पैंट को झिड़कते हुए वहाँ आकर बिस्तरों का निरीक्षण करते तथा लड़कों को खूब झिड़कते।

नीचे लाकर रूम में दो या तीन व्यक्ति एक साथ सिंक का प्रयोग करते। आठ व्यक्तियों की भीड़ एक छोटे-से क्यूबिकल में, जिसमें कुल तीन फव्वारे स्नान करने के लिए होते, लग जाती। अर्द्धनिद्रित अवस्था में लड़के गाते, सीटी बजाते, लाकर रूम से स्नानागार की ओर तथा स्नानागार से लाकर रूम की ओर दौड़ते रहते। अब तक हाउस मास्टर नीचे आ जाते थे तथा लाकर रूम के दरवाजे में खड़े होकर कहते, 'तीन मिनट में लाइन बन जानी चाहिए। दो मिनट साठ सेकण्ड में लाइन बन जानी चाहिए' आदि। जैसे ही घंटे में सवा सात बजते, लाकर रूम के दरवाजे पर बड़ी भीड़ हो जाती थी। हर एक लड़का जैसे भी कपड़ों में होता बाहर लाइन में खड़ा हो जाता। हाँ, इतना जरूर था कि डाइनिंग रूम में पहुँचने से पहले हमारी कमीजों के बटन लग जाने चाहिए थे तथा हमारी पतलूनों के जिप बन्द हो जाने चाहिए थे। ईश्वर की प्रार्थना होने के बाद हम अपनी नियत मेजों पर, जिन पर छः लड़के प्रति मेज के हिसाब से बैठते थे, बैठ जाते।

जल्दी-जल्दी सूखे हुए टोस्ट को चबाते हुए हम किसी प्रकार ऊपर से ठंडे दूध पीकर उन्हें निगल जाते। ठंडे दूध का तालू पर वही प्रभाव होता था जो ठंडे पानी का आँखों पर। स्त्री-परिचारिकाएँ जल्दी-जल्दी इधर-उधर जाती रहती थीं और मुझे याद है, मैं उस समय कितना असहाय अनुभव करता था जिस समय मेरे पास से तेजी से यह कहते हुए कोई गुजर जाती थी, 'क्या आपको और दूध चाहिए ? क्या आपको अन्न चाहिए ?' अभी तक भारतीय रिवाजों का ही अभ्यस्त होने के कारण जहाँ सभ्य व्यक्ति पहली बार पूछने पर मना ही करते हैं और कभी-कभी तो तीन-चार बार कहने तक मना करते हैं, मैं स्वभावतः 'नहीं' कह देता था। लेकिन भारतीय रिवाज के विरुद्ध यहाँ परिचारिकाएँ कभी भी दोबारा लौटकर और अधिक खाने के लिए दबाव नहीं डालती थीं। इस प्रकार मैं उस समय तक भूखा ही

रहता रहा जब तक मैं उनके प्रचलित नियमों का अभ्यस्त नहीं हो गया।

हम प्रातःकालीन नाश्ता करके जब लौटते थे तो कक्षाएँ प्रारम्भ होने में पौन घंटा शेष रहता था तथा अभी भी लाकर रूम ही सबके आकर्षण का केन्द्र रहता था, तथा लड़कों की लाइन स्नानागार अथवा टायलेट के पास लगी रहती थी। कुछ लड़के एकान्त तथा खिड़की विहीन कोठरियों में ही बैठ जाते थे। शेष अपना 'के-पी कार्य' करते थे। हाउस मास्टर जान-बूझकर निपट अन्धों को फर्श साफ करने का कार्य नहीं देते थे। उनसे केवल खिड़कियों को झाड़ने और साफ करने तथा पलंगों की चादरें झाड़ने का ही कार्य लिया लाता था। मुझे याद है, जिस सप्ताह मेरे कार्य करने की बारी आई तो हाउस मास्टर ने मेरा कार्य, जो सम्भवतः सबसे आसान था, स्वयं साफ करके मुझे बतलाया था। ऐसा ही उन्होंने और भी बहुत-से लड़कों के लिए किया था। लड़के कहते थे, 'इन वृद्ध को जब यह काम इतना पसन्द है तो इन्हें यही काम क्यों न करने दिया जाय ?'

सवा आठ बजे हम सब अलग-अलग अपनी-अपनी कक्षाओं के कमरों में चले जाते थे जो हमारी 'ब्रेल' की पुस्तकों से, जो एक लाइन में दीवार के सहारे रखी रहती थीं, उठने वाली गन्ध से भरे रहते थे। मुझे नवीं श्रेणी में रखा गया था यद्यपि भारत में हुई मेरी कुल शिक्षा पाँच वर्ष से कम थी और वह भी समय-समय पर होनेवाली बीमारी आदि से ठीक प्रकार नहीं हुई थी। गणित में केवल जोड़, घटाव, गुणा तथा बड़ी-बड़ी रकमों के भाग से अधिक कुछ नहीं जानता था। अधिक गणित जानने के लिए तथा विशेषकर गुणन खण्ड तथा विभाजन को समझने के लिए मुझे पाँचवीं तथा छठी श्रेणी की कक्षाओं में पढ़ना पड़ता था जिनके विद्यार्थी आयु तथा आकार-प्रकार में मुझसे आधे थे। मैं उनकी कक्षाओं में घंटे प्रारम्भ होने के कुछ मिनट पूर्व ही चला जाता था और पीछे की सीटों पर यथाशक्ति चुपचाप बैठे रहने का प्रयास करता था। लेकिन फिर भी मुझे कुछ कम अन्धे केनेप के साथ रहना पड़ता था जो प्रथम दिन ही कक्षा प्रारम्भ होने से पहले मेरे मुख की आकृति का अनुमान करना चाहता था तथा अपना परिचय बढ़ाना चाहा था और स्यू जो अपने दिमाग में ही अंकगणित की समस्याओं को हल कर लिया करती थी और हमेशा इन्तजार किया करती थी कि कोई भी व्यक्ति, विशेष रूप से मैं, सवाल का जवाब न दे सके तो वह फौरन उत्तर दे।

मिस हार्पर की अंग्रेजी की कक्षा में दो सप्ताह तक रहने के पश्चात् उन्होंने

मुझसे कहा, 'वेद, ओ' हेनरी की छोटी कहानी में, जिसे मैंने अभी समाप्त किया है, तीसरा अंश कौन-सा है ?'

यह पहला सीधा प्रश्न था जो किसी अध्यापक ने मुझसे किया था। यद्यपि मेरी किसी भी कक्षा में चार विद्यार्थियों से अधिक नहीं थे। मैं कहने ही वाला था 'मुझे नहीं मालूम' लेकिन मैं कह गया, 'तीसरा अंश, मिस हार्पर ! निश्चय ही नायिका का नाम है।'

कुछ देर के अन्तराल के पश्चात् एक बड़े जोर की हँसी का ठहाका लगा और मेरे गालों पर शर्म की रक्तिम आभा दौड़ गई।

इस प्रकार इस प्रसंग का अंत हुआ। मिस हार्पर बहुत तेजी से पढ़ती थीं। इतना तेज जिसे समझना मेरी समझ से बाहर था। बाद में कहानियों पर जब पहली परीक्षा हुई तो उसमें मुझे सिफर मिला।

श्री चाइल्स की नागरिक शास्त्र की कक्षा सम्भवतः मेरे लिए सबसे आसान रहती थी। यद्यपि वह स्कूल में सबसे अधिक कठोर शिक्षक के रूप में प्रख्यात थे। यह एक ऐसा विषय था जिसमें संग्रहीत ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी जैसी गणित में, तथा इसमें तत्कालीन समस्याओं का समावेश होता था यद्यपि वह एक मनोरंजनहीन पाठ्य-क्रम के रूप में ही। रे, लाइस तथा एवेलिन मेरे नवीं श्रेणी के साथी थे तथा वे तीनों ही अर्कन्सास स्कूल में किंडर गार्टन से पढ़ रहे थे। एक बार श्री चाइल्स की कक्षा में मैंने अमेरिका के नीग्रो लोगों की स्थिति के सम्बन्ध में उनके विचार जानने के लिए प्रश्न पूछा। रे जो अर्द्धअन्ध था और सोलह वर्ष की अल्पायु में ही एक स्थानीय गिरजे में उपदेशक था, श्री चाइल्स के लिए अपने को संयत न रख सका। वह तुरन्त ही बोला, 'मैं केवल ऐसे नीग्रो लोगों से सम्बन्ध रखना चाहता हूँ जो मर चुके हों। और यदि मैं तुम्हारी स्थिति में होता तो इस नीग्रो समस्या से अपने को अलग ही रखने का प्रयास करता।' और श्री चाइल्स तथा उसके बीच गरम वाद-विवाद के पश्चात् कक्षा के उपरान्त वह मुझसे बोला, 'मैं तुम्हारे लिए एक उपकार करना चाहता हूँ।' और फिर प्रत्येक अक्षर पर जोर देते हुए उसने कहा, 'यदि तुम इस नीग्रो समस्या में बहुत अधिक टाँग अड़ाओगे तो तुम भी उनमें से ही एक बन जाओगे। और यह याद रखो, तुम भारतीय चाहे अन्य कोई भी हो लेकिन श्वेतांग नहीं हो।' यह कहकर वह बिना मेरी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए तेजी से चला गया।

मैं कक्षा के कमरों के संकरे गलियारे से चलकर एक भीड़पूर्ण विक्रय स्थान के पास से होता हुआ बाहर चला गया। उस दिन अपरान्ह में श्री चाइल्स की कक्षा मेरी अंतिम कक्षा थी। मै जिमनाजियम में घूमता हुआ उसी जंगल में पहुँच गया था। वहाँ सूखी तथा सड़ी हुई घास की दुर्गन्ध आ रही थी, जो मेरे चलने से चरमरा रही थी और मुझे शान्तिपूर्वक टहलने और सोचने में बाधा डाल रही थी।

मैं अपने घर के सम्बन्ध में सोच रहा था, ऐसा घर जिसमें छः भाई और बहनें थीं तथा जिसमें खाली बैठकर मैंने अपने जीवन के सात वर्ष बिताये थे। डाइनिंग टेबिल पर बैठकर अपनी बहनों की, उनके स्कूल, उनकी सहेलियों और उनकी उन किताबों के सम्बन्ध में बातें सुना करता था। यदा-कदा पंजाबी का कोई उचित शब्द न मिलने के कारण वे 'आडियोलौजी', 'नेशनलाइजेशन', तथा डेमोक्रेसी जैसे अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग कर देती थीं। मैं उस समय भय और दुःख से भर जाया करता था। ऐसा लगता था जैसे 'शिक्षित लोगों का अपना अलग ही शब्द-कोष होता है' जिसे जाने बिना उनसे बात करना असम्भव है। मुझे याद है कि मैं यह सोचकर भय और पीड़ा से भर उठा करता था कि एक दिन आयेगा जब इन लोगों से वार्तालाप का अधिकार मुझसे छीन लिया जायेगा। मैं अपने ही परिवार के सदस्यों से भी बातचीत न कर सकूँगा। स्कूल तथा शिक्षा ही मुझे सत्य, शिव और सुन्दर मालूम पड़ती थी।

मेरे पिताजी ने यह शंका होने पर भी, कहीं यह स्कूल नीग्रो लोगों का न हो, मुझे अर्कन्सास आने दिया था। उन्हें आश्चर्य था कि कैसे उन्होंने मुझे प्रवेश की अनुमति दे दी जब कि अन्य स्कूलों ने स्पष्ट अस्वीकृति लिख दी थी।

और अब मैं अपने स्कूल, पुस्तकों, कक्षा के कमरों तथा शिक्षकों के साथ था। रे मुझसे इस प्रकार क्यों बोला ? मैंने यही प्रश्न अपने से पुनः किया। 'श्वेत और काले' इसका तो कोई अर्थ ही नहीं हुआ। 'श्वेत स्वच्छ होता है और काला गंदा' मैंने अपने से कहा, लेकिन 'साफ' और 'गन्दे' का मतलब कम से कम इस दृष्टि से कुछ नहीं था। काश ! मैं याद कर पाता कि मेरी बीमारी के पहले की दुनिया कैसी थी। काश, मैं केवल रंगों को ही पहिचान सकता। मैंने तो यही सुना था कि अंधे हमेशा एक काली दुनिया में रहते हैं, लेकिन यह भी सम्भव नहीं था, क्योंकि मैं नहीं जानता था कि अन्धकार तथा कालापन क्या होता है। इसमें केवल गन्ध तथा रात की नीरवता ही अपवाद थे। दो-दो पक्षी मेरे ऊपर फड़फड़ा रहे थे। मैं

सोच रहा था कि मैं कितना काला था। क्या मैं एक नीग्रो के समान था ? तथा उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध था ?

उस खुली जगह में बहुत-सी टूटी हुई पत्तियों के और उन आकस्मिक पक्षियों की उड़ान के बीच में किसी न किसी प्रकार मानव जाति की कल्पना करना चाहता था। सम्भव है, मैं ढूंढ सकूं कि इस समाज की उलझन में मेरा स्थान कौन-सा और कहाँ है ?

तभी घंटियाँ बजने लगीं, जिमनाजियम की कक्षा में जाने का निमंत्रण देने-वाली घंटियाँ। मैं सीधे कुछ नम तथा अन्धकारमय जिमनाजियम में चला गया। जिमनाजियम के कपड़ों के समूह में से एक सूट पहना तथा जल्दी से ऊपर दौड़ गया। वहाँ लड़कों के पंचिंग बैग को घूसे मारने की आवाजें हो रही थीं। तथा खुली हुई चटाइयों में से पसीने की असहनीय दुर्गन्ध आ रही थी। शिक्षक ने सीटी बजाई और हर एक को चटाई पर ठीक स्थिति में करते हुए चारों ओर घूम गया तथा व्यायाम का एक क्रम उसकी खरखराहटपूर्ण भर्राती हुई आवाज में संख्या गिनने के साथ प्रारम्भ हो गया। हमने तुरन्त ही अपने शरीरों को झुका दिया, अपनी मांसपेशियों को इकट्ठा किया और उसकी आवाज के साथ कूदने लगे।

मैं गलतियाँ होने की सम्भावनाओं से डर रहा था क्योंकि मुझे अपने जिमना-जियम शिक्षक का झुका हुआ शरीर अच्छा नहीं लगता था। उनका नंगा और फूला हुआ पेट पसीने से भर जाता था। यही वह शरीर था जो कुछ देर के पश्चात् मेरी स्थिति को ठीक करने के लिए मेरे ऊपर झुकेगा तथा मुझे बतलायेगा कि किस प्रकार मुझे बिना टखने हिलाये इधर-उधर हिलना था या बिना घुटने मोड़े पैर के अंगूठे छूने थे।

इस शारीरिक व्यायाम के पश्चात् हम एक बार फिर कपड़े पहिनने के कमरे में आ जाते थे। हाथ-मुँह धोने के बाद सब लड़के खाने के कमरे की ओर चल पड़ते थे जहाँ आँखों वाले दो शिक्षक विद्यार्थियों के तौर-तरीके का निरीक्षण करते रहते थे। जब से मिस हार्पर ने मुझे यह सिखलाया था कि गोश्त के टुकड़े को फार्क से कैसे ढूँढा, फिर छुरी से कैसे काटा, और चाप में हड्डी को ढूंढकर कैसे काटा जाता है, मैं काफी आसानी से इन वस्तुओं का प्रयोग कर सकता था। और अब मुझे भूखा नहीं रहना पड़ता था।

शाम के भोजन के बाद बैठने के लिए एक अध्ययन कक्ष था, तथा ऊँची

कक्षाओं के सब विद्यार्थियों का जमघट इस छोटे-से पुस्तकालय में हो जाता था। इसके बाद आठ बजे एक बार और कसरतें होती थीं और इसके बाद सोने से पहले अन्तिम एक घण्टा स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करने के लिए मिलता था। हाउस-मास्टर, जिनकी नकल हर एक लड़का उतारता था, हमें उसी प्रकार सुलाते थे जैसे बिस्तरों से उठाते थे। वह घूमते-घूमते अन्दर आ जाते थे और रुक-रुककर कहते थे, 'भाइयो! रात हो गई, रात हो गई। तुम वयस्क और बुद्धिमान हो और यह जानते हो कि अब साढ़े दस बजे तक गहरी नींद में सो जाना चाहिए।' लेकिन हम न तो बड़े अथवा वयस्क थे, और न ही बुद्धिमान थे। और इसके कुछ समय बाद ही सोते थे।

घोड़ों की दुनियाँ में गधा २१

स्कूल के प्रारम्भिक कुछ हफ्तों के बाद जिनमें मुझे घर की बहुत याद आती थी तथा मैं बहुत उदास रहता था, स्थिति धीरे-धीरे सामान्य होती गई और मैं वहाँ की परिस्थितियों का अभ्यस्त होता चला गया। कुछ समय पश्चात् मैंने गणित की प्रारम्भिक कक्षा में जाना बन्द कर दिया और हाई स्कूल के अपने गणित के शिक्षक से कुछ अतिरिक्त समय लेकर मेरा काम आराम से चलने लगा तथा मैं कक्षा के स्तर पर आ गया। कभी-कभी तो मुझे इंगलिश और नागरिक शास्त्र में 'रे' से भी अधिक नम्बर मिलते थे। पहले मैं घर के काम पर घण्टों व्यतीत करता था, अब आसानी से तीस-चालीस मिनट में उसे समाप्त कर लेता था। अब मुझे आमतौर पर कक्षाओं की पढ़ाई अधिक कठिन न होने पर असन्तोष होता था तथा यह देखकर कि कक्षाओं में अधिकतर समय पढ़ाई में व्यतीत न होकर बातों में ही व्यतीत होता है, मुझे दुःख होता था।

बिग जिम ने एक बार कहा था, 'सामाजिक तौर-तरीके सीखने से हमें क्या लाभ, जब स्कूल में हमारे सम्पर्क में केवल अन्धे लड़के ही रहते हैं। और आखिरकार हमें अन्धों की उद्योगशाला में पहुँच जाना होगा, जहाँ कोई भी नहीं देख सकेगा कि हमने चाँदी के बर्तनों में खाना खाया है या नहीं; हमने अपना मुख कमीज की आस्तीन से पोंछा है या नैपकिन से अथवा हमने नीली कमीज और खाकी पेंट पहनी है या नहीं।' वास्तव में सामाजिक रीति-रिवाज तथा समाजिक नियमों को सीखने में वास्तविक शिक्षा से हमारा बहुत अधिक समय व्यतीत हो जाता था। इस सम्बन्ध में कभी सप्ताह में दो बार तथा कभी सप्ताह में चार बार हमारी कक्षाएँ लगती थीं, जिनमें हमें आँखों वाले लड़कों के साथ उठने, बैठने, रहने तथा खाने-पीने के नियम बतलाए जाते थे। अगर हमारे स्कूल में आँखों वाले शिक्षक न होते तो सम्भवतः ये कायदे-कानून हमें बिल्कुल न सिखाये जाते।

श्री चाइल्स ने, जो लगभग निपट अन्धे थे, एक बार स्वयं एक सामाजिक

नियमों की कक्षा का परिचय कराते हुए कहा था, 'अन्धा होना भी एक बड़ी भारी समस्या है। तुम्हें हर आँखों वाले व्यक्ति के लिए अपने को बेचना पड़ता है। तुम्हें उसे वे काम करके दिखलाने पड़ते हैं जिन्हें वे तुम्हारे लिए असम्भव समझते हैं।'

निश्चय ही यह सत्य होगा, यदि घोड़ों की दुनिया में गधे के समान आप हों तो उन घोड़ों के सम्मुख आपको अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करना होगा। आपको किसी न किसी तरह उन्हें बतलाना पड़ता है कि आपके अन्दर भी भार वहन करने की उतनी ही सामर्थ्य है जितनी उनमें और यदि आप उतनी तेजी से काम न भी कर सकें तो भी कम से कम आपको अधिक समय तक काम करके स्तर को बराबर रखने के लिए तैयार रहना चाहिए।

'इस दृश्य जगत में चाहे तुम कोई भी गलती करो' श्री चाइल्स ने कहा 'जैसे गंदे कपड़े पहनना या मेज पर कोहनी रख कर खाना, और यदि आधी दुनियाँ भी यह गलतियाँ करने की अभ्यस्त हो तो भी नेत्रों वाले इसका सारा दोष तुम पर ही मढ़ देंगे। ये तुम्हें दयनीय अवस्था वाले कहेंगे, तुम्हारे भाग्य पर दुःख प्रकट करेंगे और वे स्वयं भयंकरतम गलतियाँ करेंगे, केवल इस बात का सहारा लेकर कि तुम अंधे हो।'

अतः हमें कक्षाओं में सामूहिक रूप से इस बात की शिक्षा दी जाती थी जिससे हमारा सामान्य ज्ञान बढ़े—जैसे कम व्यय वाले व्यक्तियों को अधिक आयु वाले व्यक्तियों से परिचित कराना चाहिए इसके विपरीत नहीं, तुम्हें नीला और खाकी रंग साथ-साथ न पहनना चाहिए, चाहे भले ही तुम यह न जानो कि नीला तथा खाकी रंग होता कैसा है, और यदि तुम आधा संतरा चम्मच से नहीं खा सकते तो अच्छा हो कि संतरे को बिल्कुल खाओ ही मत। साथ ही हमें यह भी सिखाया जाता था कि चाहे अन्धे व्यक्ति कितने ही स्वतन्त्र तथा कार्य कुशल क्यों न हो जाएँ, उन्हें नेत्र वालों की सहायता सहर्ष स्वीकार करनी चाहिए यह समझकर कि अन्धों की सहायता करने की भावना मन में उठी अच्छी भावनाओं का परिणाम है।

जब अरनेस्ट ने पूछा, 'यदि हम किसी रेस्तराँ में जायें और वहाँ हमें आधे-आधे भाग करके सन्तरे दिये जाएँ तथा हम उन्हें खाने में असमर्थ हों और रेस्तराँ की परिचारिका इस काम में हमारी सहायता करना चाहे तो क्या हमें उसकी सहायता को स्वीकार कर लेना चाहिए ?' तो उससे स्पष्ट रूप से कह दिया गया

कि वह गम्भीर मामलों पर हलके ढंग से बातें न करे ।

सामाजिक कार्यक्रम के अन्तर्गत फैकल्टी में व्यक्तिगत बैठकें भी होती थीं, जहाँ उन वैयक्तिक कमियों को दूर करने का प्रयास किया जाता था जिनकी आलोचना सबके सामने करना सम्भव नहीं था । अरनेस्ट ने हमें बतलाया था कि उसके परामर्शदाता ने उसे दिन में कई बार अपने पैरों को धोने का परामर्श दिया था । 'जो' ने भी इसी प्रकार हमें सूचित किया कि उससे दुर्गन्ध नाशक पदार्थ का प्रयोग करने के लिए कहा गया हैं । केनेथ ने बतलाया कि उसे कम से कम कुछ समय के लिए बातें न करने के लिए एक भाषण दिया गया है।

किसी भी अन्धे व्यक्ति को आम लोगों के सम्मुख प्रेम प्रदर्शित नहीं करना चाहिए था। एक शिक्षक ने तो यहाँ तक कहा कि आम लोगों के सामने अपने पति का अथवा पत्नी का चुम्बन करना भी उचित नहीं है तथा इससे बचने का ही प्रयास करना चाहिए । सम्भव है ऐसा करने से कभी कोई गलत धारणा बन जाए । इस सम्बन्ध में हमारी लिखित रूप में परीक्षा होती थी तथा यह हमारे शिक्षकों की योग्यता का ही परिणाम था कि कभी भी इस परीक्षा में कोई अनुत्तीर्ण नहीं हुआ ।

इन सामाजिक नियमों की शिक्षा का सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाग चेहरे की दृष्टि तथा चैतन्यता की शिक्षा का होता था। बसन्त ऋतु के प्रारम्भ में किसी दिन सब पूर्ण अन्धों को जिमनाजियम में इकट्ठा कर लिया जाता था तथा उनसे 'रुकावट की दौड़' करने के लिए कहा जाता था। सभी आकार-प्रकार तथा वजन की लकड़ी तथा प्लास्टिक के चौकोर टुकड़े जिमनाजियम की छत से लटका दिए जाते थे। कुछ तो उनमें से इतने नीचे लटकते थे कि सीने तक आ जाते थे जबकि अन्य मुश्किल से मस्तक तक आते थे । इन चौकों को विभिन्न गतियों से घुमाया जाता था तथा अन्धे लड़कों से इस प्रकार अधिक से अधिक तेजी से भागने को कहा जाता था कि वे उनसे न टकराएँ । रुकावटों को घुमाने का तात्पर्य यह था कि विद्यार्थियों को आवाज के आधार पर चलने वाली चीजों का ज्ञान हो जाए तथा वे रास्ते में आने वाली वस्तुओं को विचारमात्र से समझ सकें । चौका जितना अधिक पतला और ऊँचा होता था उतना ही उसका अनुभव करना कठिन होता था,अर्थात् त्वचा के द्वारा किसी भी रास्ते में पड़ने वाली वस्तु का अनुभव करना एक ऐसा अन्तर था जो हमारे कानों के नीचे तथा पास ही हजारों रोमछिद्रों के अन्तर पर होता था। कुछ चौके तो गली के सिरे पर लगे लैम्प के खम्भे से भी पतले होते थे। इस प्रतियोगितात्मक दौड़ से यह ज्ञान

हो जाता था कि एक चौके से दूसरे चौके की दूरी को कौन कितना अनुभव कर सकता है। तथा अपने सबसे समीप के चौके को अनुभव करने पर बिना दूसरे की ओर जाए उसके चारों ओर घूमना पड़ता था। यहीं आकर वास्तविक तथ्य का निरूपण होता था।

एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो निडर होकर घूमता था यदि वह बचपन में ही अन्धा हो गया था, तो यह एक सहायता होती थी ऐसे व्यक्ति इस परीक्षा में उन व्यक्तियों की तुलना में जिनकी नजर बाद में काफी आयु व्यतीत होने पर नष्ट हो जाती थी, अधिक सफल रहते थे। दूसरी प्रकार के व्यक्तियों की अनुमान करने की शक्तियों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता था। अपने बचपन में एक छत से दूसरी छत पर कूदना, सीढ़ी के डण्डों पर से कूदने के पश्चात् तथा अनजान भीड़-पूर्ण मार्गों में तेजी से साइकिल चलाने के कारण मेरे लिए यह तो एक बच्चों के खेल के समान हो गया था। जिमनाजियम को बिल्कुल शान्त रखा जाता था जिससे अन्धे लड़के चौकों की ध्वनि को सुगमता से सुन सकें यद्यपि मैं यही समझता था कि मैं उसमें अपने सिर पर एक जेट चालित वायुयान के बराबर शोर होने पर भी आसानी से दौड़ सकता था। जब कभी कोई किसी चौके से टकरा जाता था और दूसरों को इसका पता लग जाता था कि कौन टकराया है तो बाकी सब उस पर उपहास के ढंग से हँसते थे और उस समय तक हँसते रहते थे जब तक उनमें से कोई टकरा नहीं जाता था।

तीन-चार बार दौड़ने की परीक्षा देने के पश्चात् हमें चेहरे की कल्पना करने सम्बन्धी सिद्धान्त बताये गये। इसके अनुसार अन्धों को भी इस पर उतना ही अधिक जोर देना चाहिए जितना नेत्रवाले देते हैं। तथा इसे बढ़ाने का उपाय अपने मन से डर को निकालना और अपने मन को पूर्ण विश्राम देना है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए हमें कुछ बातें बताई गईं—सर हमेशा ऊँचा रखना चाहिए जिससे सीधी रेखा में चलने पर आसानी हो। कुछ लोगों का ख्याल है कि पीठ को तनिक टेढ़ा रखना चाहिए जिससे सामने से लगने वाली चोटें कम हो सकें तथा दिशाओं का ज्ञान दायाँ-बायाँ याद रखने से कहीं अधिक अच्छा होता है और दिशा-ज्ञान गाल पर पड़ने वाली सूरज की किरणों से किया जा सकता है। कुछ समय बाद सभी इसके अभ्यस्त हो जाते हैं कि किसी अनजानी दूकान में सही काउन्टर पर जा सकें अथवा अपरिचित इमारत में सही लिफ्ट का पता लगा सकें।

हमें यह भी बतलाया गया था कि सड़कों को लाँघते समय ट्रैफिक के साथ चलना पैदल पटरी पर चलने वालों के साथ चलने की अपेक्षा अधिक सुरक्षित होता है क्योंकि हो सकता है कि वे प्रकाश के विरुद्ध सड़क पार कर रहे हों। सुरक्षा मुख्यत: अन्धे व्यक्ति की कार की दूरी की उचित कल्पना पर ही निर्भर करती है। उसके अतिरिक्त चौड़ी सड़कों को खण्डों अथवा आधा-आधा पार करना ही अधिक सुरक्षित होता है। अन्त में सड़क पार करते समय घबरा कर कभी जल्दी नहीं करनी चाहिए तथा कभी भी जल्दी से दौड़कर सड़क नहीं पार करनी चाहिए।

तब प्रत्येक शिक्षक को दो या तीन विद्यार्थी प्रशिक्षित करने के लिए दे दिए गए और अपने हाथों में बेंत लेकर और जेब में बस का टोकन रख हम अलग-अलग शहर की ओर रवाना हो गए। मेरे शिक्षक ने रेकसाल ड्रगस्टोर से बहुत-सी छोटी-छोटी चीजों को विभिन्न काउन्टरों से खरीदने के लिए एक लिस्ट दी और कहा कि बाद में मैं उनसे एक काफी की दूकान में मिलूँ, जहाँ मुझे मिल्कशेक पिलाया जाएगा—अगर मैं सारी चीजें ठीक-ठीक खरीद सका तो! मुझसे विशेष रूप से कह दिया गया था कि अपने कार्य में किसी से भी सहायता की याचना न करूँ और यदि कोई सहायता करना भी चाहे तो मैं उसे शिष्टता से मना कर दूं। मुझे यह नहीं मालूम था कि शिक्षक महोदय मेरे ऊपर निरन्तर एक निरीक्षक की नजर रखेंगे या नहीं लेकिन चाहे वह हों या नहीं, यह आवश्यक था कि मैं अपनी स्वतन्त्रता के प्रथम दिवस पर कुशलता से काम करूँ।

मैं बेंत को हर कदम पर, एक-एक फुट पर आगे रखता हुआ चल पड़ा। यही मुझे सिखाया गया था। यह इसलिए किया जाता था कि जिससे किसी पत्थर से टकराने, मेन होल में गिरने या किसी अन्य ऊपरी या भीतरी बाधा से बचने में सहायता मिल सके। मुझे लगा कि बेंत की आवाज ने मुझे अत्यधिक चौकन्ना बना दिया है और उससे मेरा ध्यान भी बट रहा है। अत: मैंने वह एक स्कूल के सामने की सड़क के आखीर में एक गड्ढे में फेंक दी और मस्तिष्क में उस जगह को स्थिर कर लिया जिससे लौटकर उठा सकूँ। तब मैं तेजी से जेबों में हाथ डाल कर बस स्टाप की ओर चल दिया। बस स्टाप पर प्रतीक्षा करने की अपेक्षा मैंने तीन-चार ब्लाक आगे तक पैदल चलकर दूसरे स्टाप पर पहुँचने का निश्चय किया। अपनी अनुभव-शक्ति की परीक्षा करने के लिए मैंने लैम्पों के खम्भों को गिनकर दूरी का अन्दाजा लगाना शुरू किया।

सूर्य खूब तेजी से चमकने लगा था, यद्यपि उचित परिमाण में ठण्डी हवा चलकर उसकी गरमी को असहनीय नहीं बनने दे रही थी तथा उसके विपरीत इसे सुखकर बना रही थी। वास्तव में हवा इतनी सुखद थी कि इसके कारण मेरे काम में बिल्कुल भी विघ्न उत्पन्न नहीं हुआ और मैं मामूली-मामूली मोड़ तथा सड़क के उतार-चढ़ाव भी समझ जाता था जिनसे मैं पहले बिल्कुल अनभिज्ञ था। फिर भी जब सहसा मेरा पैर ढाल से उतरकर सड़क पर पड़ने लगा तो उस क्षण का वह भाग बड़ा भयंकर मालूम पड़ा तथा मैं अब अपनी बेंत की आवश्यकता अनुभव करने लगा—जिसे मेरे शिक्षक ने अन्धों की तीसरी टाँग बतलाया था। बिग जिम इसकी तुलना अपनी जगह से टूटी हुई पूँछ से करता था। तभी मेरे पैर को फुटपाथ के आखीर में छोटा-सा गढ़ा अनुभव हुआ। मेरे लिए इतना ही संकेत काफी था। मेरी बाई ओर आने-जाने वाली कारों का ताँता लगा हुआ था जो अनुमानतः चालीस मील प्रति घण्टे की रफ़्तार से चल रही थीं। 'फोर्ड' तथा 'शेबरले' गाड़ियों के इन्जिनों की ध्वनि आ रही थी, तथा कभी-कभी किसी 'ब्यूक' की आवाज सुनाई पड़ जाती थी।

मैं उस सड़क पर उसी प्रसन्नता तथा विश्वास के साथ चल रहा था जिस प्रकार कोई ड्राइवर होता है जिसके पैरों के अधिकार में एक टन वजन वाली मशीन होती है। इसके बाद मैंने गाड़ियों के ऊपर बिजली के तार में होती हुई ध्वनि सुनी। मेरे निरीक्षक ने इस ध्वनि को पटरियाँ छोड़कर चलने वाली गाड़ी के आने की सूचना कहा था और तुरन्त ही मैंने लगभग एक ब्लाक पीछे ट्राली मोटर के आने की ध्वनि सुनी जो सबसे अलग थी। बस स्टाप अभी भी एक या डेढ़ ब्लाक आगे था और मैं जानता था कि मुझे वह ट्राली पकड़नी है क्योंकि दूसरी को आने में बीस मिनट लगने थे। कानों से निरन्तर ट्राली-मोटर की ध्वनि सुनता हुआ मैं बस स्टाप की ओर अपनी शक्ति भर तेज गति से दौड़ा। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि एक दीवार अथवा किसी चहार दीवारी की छाया मेरे दाई ओर से गुजर गई। इसके बाद मेरे दाई ओर काफी स्थान हो गया तथा बाई ओर एक तंग रास्ता था जिस पर लैंपों के खम्भों की लाइन लगी हुई थी तथा ईश्वर ही जानता है और क्या कठिनाइयाँ थीं। एक खम्भे से टकराते-टकराते तो मैं बाल-बाल बचा तथा दूसरे से मेरा कन्धा टकरा ही गया। लेकिन भाग्य अच्छा था जो सिर नहीं टकराया।

जब मैं दूसरे स्टाप पर पहुँचा तो ट्राली लगभग मेरे ऊपर आ गई थी। अब

यदि मैं मोटरों आदि की ध्वनि सुनने के लिए रुकता तो ट्राली नहीं पकड़ सकता था। अतः मैंने तेजी से सड़क पार की। उस समय मेरे दिमाग में वही बात आ रही थी, जो बहुत समय पहले मैंने माताजी से कही थी।

'मृत्यु केवल एक बार ही आती है', मैंने कहा था।

'लेकिन,' उन्होंने कहा था, 'यदि कहीं तुम्हारी एक टाँग टूट जाए तो ?'

यह बात निस्सन्देह भयोत्पादक थी।

इसके पश्चात् मुझे मृत्यु से तो बिल्कुल डर नहीं लगता था लेकिन पहियों वाली कुर्सी की कल्पना से तो…।

सम्भव है यदि कहीं वह सफेद बेंत मेरे हाथ में होती तो मुझे मोटरों आदि की इतनी अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता न होती। तथा बस-चालक को पता चल जाता कि मैं अन्धा हूं और सम्भव है वह मेरे लिए कुछ देर प्रतीक्षा करता। लेकिन चलो ऐसे भी अच्छा है, मैंने सोचा।

जैसे ही मैंने बस स्टाप पर बेंच की झुकी हुई परछाई अनुभव की जो मुझसे लगभग दस-पन्द्रह फुट आगे थी उसी समय ट्राली मेरे पास से निकल गई। मैं सोच रहा था कि क्या ही अच्छा हो यदि वहाँ कोई प्रतीक्षा कर रहा हो तो ट्राली कम से कम रुकेगी तो सही। लेकिन वहाँ कोई नहीं था और ट्राली'निकल गई।

मरे-से मन से मैं बेंच की ओर चला और हाँफता हुआ बैठ गया। अभी बीस मिनट और थें, पूरे बीस मिनट, तथा सम्भव था मेरा मिल्क शेक मुझे न मिले। मैंने अपनी ब्रेल घड़ी निकाली और अपनी अंगुलियों को अच्छी तरह उसकी सुइयों पर जमाया। मैंने सुना कारों के बाद कारें चली जा रही थीं, मुझे उनके अंदर बैठे ड्राइवरों से उसी प्रकार ईर्ष्या हुई, जिस प्रकार एक बारिश में भीगता हुआ पैदल चलने वाला व्यक्ति अंगूठा दिखाकर किसी कार को रोकने की कोशिश करता है। यद्यपि मेरी कार में घुसने की कोई इच्छा नहीं थी।

आखिर एक दूसरी ट्राली आई। मैंने उसके दरवाजे खुलने की आवाज अपने से कुछ ही फिट के फासले पर सुनी। ट्राली की छाया के साथ-साथ चलने पर मुझे दरवाजा मिल गया और मैं उसकी तीन सीढ़ियों पर चढ़कर अंदर पहुँच गया। मैं कुछ घबरा गया था और सोच रहा था कि बिना किसी को दिखलाए किराये के सिक्के मैं बक्स में डाल भी सकूंगा अथवा नहीं। मुझे बक्सा मिल गया तथा डाइवर सम्भवतः यह समझ रहा था कि मैं कोई खाली सीट देख लूंगा क्योंकि उस-

ने स्वयं मुझे कोई खाली सीट नहीं बतलाई। ट्राली अब चल पड़ी थी। मैं बीच में बने रास्ते से होकर यात्रियों की धूमिल आकृतियों को अनुभव करता हुआ तथा विभिन्न पैकिटों तथा समाचारपत्रों के पृष्ठों को पलटने की ध्वनियों को सुनता हुआ आगे बढ़ने लगा। मैं उस समय तक चलता रहा जब तक मुझे एक खाली सीट की छाया का अनुभव नहीं हुआ तथा मैं वहाँ बैठ गया। अचानक मेरा सारा शरीर काँपने लगा। चार्ली ने ठीक ही कहा :

'मैं अन्धे होने को नहीं धिक्कारता, किन्तु जब व्यक्ति नेत्रों वाले व्यक्तियों की दुनियाँ में अन्धा हो जाता है तो मुझे यह अवस्था बहुत बुरी लगती है।' मुझे प्रसन्नता थी कि मेरे पास बेंत नहीं थी क्योंकि इस अवस्था में मुझे कोई देख नहीं सकता था। नहीं, मैंने अपने को सान्त्वना देते हुए कहा, मैं किसी भी अवस्था में बजाय बहरा होने के अन्धा होना अधिक श्रेयस्कर समझता हूँ। मुझे इस बात पर उस समय से पहले के किसी भी दिन से अब अधिक विश्वास था।

मैंने ट्राली के अर्ध मोड़ों की ओर ध्यान नहीं दिया यद्यपि मेरे प्रशिक्षक ने मुझसे दूसरे दाएँ मोड़ पर प्रतीक्षा करने को कहा था, जहाँ ट्राली माकहम से मेन स्ट्रीट को जाती थी। यह एक ऐसा स्पष्ट मोड़ था जिसकी ओर ध्यान न देना मेरे लिए सम्भव नहीं था। अब हम दक्षिण की ओर जा रहे थे। (मैं हमेशा सड़कों की दिशाओं का ज्ञान रखता था) तथा रेक्साल ड्रगस्टोर पाँचवीं सड़क पर था। मेरे शिक्षक ने कहा था, 'बस स्टापों पर इतना अधिक निर्भर मत करना बल्कि ब्लाकों की दूरी को ध्यान में रखना। इस प्रकार तुम कोई गलती नहीं कर सकोगे।'

मैं ठीक पाँचवीं सड़क पर उतर गया तथा मुख्य चौराहे को पार करके मैं रेक्साल ड्रगस्टोर में चला गया। अपना प्रथम अवसर होने के कारण मैंने अपने सम्मुख खड़े एक व्यक्ति से पूछा कि मुझे जूतों के फीते कहाँ मिलेंगे।

'बिल्कुल तुम्हारे पीछे' तुम्हारे दाईं ओर के दूसरे काउण्टर पर, वह बोला।

पाँच मिनट में मैंने वह सभी वस्तुएँ खरीद लीं, जिनके लिए मेरे शिक्षक ने मुझसे कहा था। फिर मैं तेजी से एक ब्लाक ऊपर, विभागीय स्टोर में अपने को खिड़कियों में लगी दुकानों के खरीदारों से बचाता हुआ तथा कल्पना के आधार पर खिड़कियों तथा अपने बीच काफी फासला रखता हुआ, दोपहर का खाना खाने के लिए लगी भीड़ का काफी ध्यान रखता हुआ आगे बढ़ा। खिड़कियों की परछाइयों के अन्तर को गिनकर मैंने यह पता लगा लिया कि ब्लाक में कितनी

दुकानें थीं, जिससे यदि अगली बार मैं शहर आऊँ तो विभिन्न स्टोरों की स्थिति का मुझे ज्ञान रहे तथा यह पता लग जाए कि कितने स्टोर छोड़ने के पश्चात् वह स्टोर है। इस तरीके में बहुत आसानी भी थी।

मेरे प्रशिक्षक ने किसी गली के सिरे को पहचानने के अनेक तरीके बतलाए थे। यातायात की गति के शोर से अनुमान लगाया जा सकता था। हवा का रुख तथा खिड़कियों की छाया से भी इसका अनुमान हो सकता था। आखिर मैं स्टोर के विभाग में पहुँच गया। मैं अन्दर गया और लिफ्ट की तरफ चल दिया। वहाँ मुझे मेरे शिक्षक मिल गए। जैसे ही हम रेस्तराँ में बैठे उन्होंने हँसते हुए कहा, 'तुम्हें उस व्यक्ति से जूतों के फीते वाले काउण्टर को नहीं पूछना चाहिए था।'

'तो फिर मुझे उसकी स्थिति का कैसे ज्ञान होता ?' मैंने कहा, 'उसकी गन्ध के द्वारा ?'

वह बोले, 'ट्राली के भीतर से मैं तुम्हें निरन्तर उस समय तक देख रहा था जब तुम बस की ओर भागे, जो तुमसे छूट गई। लेकिन ड्रगस्टोर पर तुम मुझे फिर मिल गए।' यानी वह निरन्तर मुझे देखते रहे थे।

'सबसे पहली बात', उन्होंने आश्चर्य से कहा, 'यह है कि तुम्हें यह मानना पड़ेगा कि तुम अन्धे हो और कुछ ऐसे कार्य हैं जो तुम्हें नहीं करने चाहिएँ जैसे बेंत को फेंकना तथा बिना यातायात की ध्वनि सुने सड़क पार करना।'

उनका कथन ठीक था। मुझे इस प्रकार सड़क पार करने की आदत नहीं डालनी चाहिए। लेकिन बेंत का मामला दूसरा था। मैंने उस समय भी जब बाइसिकल को चलाया था तो बेंत का सहारा नहीं लिया था, अतः मेरी समझ में नहीं आया कि पैदल चलती बार यह मेरे लिए आवश्यक क्यों थी। मैं तो मेनहोल में गिरने की सम्भावना को भी अपना सकता था। ड्राइवरों को अपने अन्धेपन का ज्ञान करने से अच्छा मुझे यही लग रहा था कि मैं स्वयं पर निर्भर करूँ। सम्भव है यह युक्तियुक्त हो, ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार बैन्जामिन फ्रैन्कलिन ने एक बड़ी मछली के पेट में छोटी मछली को देखकर शाकाहारी रहना छोड़ दिया था।

'तुम्हें वह बेंत ले आनी पड़ेगी,' मेरे शिक्षक ने धमकाते हुए कहा, 'यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हें चहार दीवारी के बाहर नहीं निकलने दिया जाएगा।'

'बहुत अच्छा श्रीमान्', मैंने उत्तर दिया।

अब तक मिल्क शेक आ गया था और मैंने नली को मुख में लगाकर उसे पीना

शुरू कर दिया। वह ठण्डा, मधुर और स्वादिष्ट था तथा मैं बेंत के सम्बन्ध में सब कुछ भूल गया। तभी अचानक मैं पेट में खालीपन और कमजोरी अनुभव करने लगा।

'मुझे जितना मैं समझता हूँ उससे अधिक, मजबूत होना चाहिए।' मैंने कहा।

'ऐसा सड़क पर पहले पहल अकेले आने पर होता ही है,' उन्होंने सहमति व्यक्त करते हुए कहा। जब हमने मिल्क शेक समाप्त कर लिया तो वह बोले, 'क्या तुम घर अकेले जा सकते हो ? मुझे शहर में कुछ और काम है ?'

'हाँ' मैंने कहा।

हम साथ-साथ उस स्टोर के उस विभाग से बाहर आए तथा बाहर आकर अलग-अलग हो गए। मैं उसी नुक्कड़ से बस पकड़ सकता था, लेकिन मैंने मार्खम (प्रथम गली) तक पैदल घूमते हुए चलने की सोची। मैं सम्भवत: एक पकौड़ों की दुकान के सामने से निकला था, क्योंकि वहाँ मटर के दानों के तलने की सुगन्ध आ रही थी तथा दूसरे खुले हुए दरवाजे से चमड़े की गन्ध आ रही थी। वह कोई जूतों की दुकान होगी या शायद कोई बिस्तरों की दूकान होगी। मैंने सोचा, इसके बाद एक झूलने वाला दरवाजा था जो खुलते और बन्द होते समय आवाज करता था, जिससे आती हुई हवा से उसके डाईम स्टोर होने की धारणा बनती थी। मार्खम स्ट्रीट में तीन-चार बसें खड़ी थीं। मुझे इंजन से पता चल गया कि उनमें से ट्राली कौन-सी है। बहुत-से लोग लाइन बनाकर उसमें चढ़ रहे थे। मैंने अपनी जेब को टटोला तो मुझे उसमें बस के दो टोकन मिल गए। मुझे इस छोटी-सी यात्रा के लिए एक अतिरिक्त टोकन दिया गया था। यह इसलिए दिया गया था कि कहीं मैं एक को खो न दूँ अथवा गलत बस में न चढ़ जाऊँ। वे शहर को एक बार और जाने के लिए पर्याप्त थे। मैं एक का अब प्रयोग न करूँ, मैंने सोचा। अत: मैं लाइन में से निकल आया और मार्खम के लिए पश्चिम की ओर चलने लगा। मैं घर तक पैदल चलने की बात नहीं सोच सकता था क्योंकि वहाँ से घर का फासला कम से कम दो मील था। इसके अलावा मैं रास्ता भी नहीं जानता था।

आधा ब्लाक पार करने के उपरान्त मैं पटरी पर चढ़ गया तथा उससे कोई एक फुट पीछे हटकर ट्राली को अँगूठे के इशारे से रोकने की कोशिश की। ट्राली तेजी से मेरे सामने से गुजर गई। कारें भी गुजरती रहीं। आखिर एक स्त्री वहाँ आकर रुकी।

'क्या आप स्टिफे स्टेशन जा रही हैं ?' मैंने पूछा।

'सीधी वहीं जा रही हूँ।' उसने कहा।

मैं कार पर चढ़ गया।

'मैं दावे के साथ कह सकती हूँ तुम अन्धों के स्कूल को जा रहे हो।' वह बोली।

क्यों मेरी आँखें हमेशा बता देती हैं कि मैं अंधा हूँ? अगर कहीं मैं चश्मा लगा लूँ और हमेशा आँखें खुली रखूँ तो किसी को पता नहीं लगेगा। लेकिन यह निरर्थक-सा था। मेरी माँ कभी इनको पसन्द नहीं करेगी तथा मेरी बाईं आँख से हमेशा सबको मेरे अंधे होने का ज्ञान हो जायेगा।

'तुम कितना देख सकते हो?' उसने पूछा।

'इतना जिससे मैं चारों ओर घूम सकूँ', मैंने उत्तर दिया। मैंने सोचा कि ऐसा कहकर उसके स्कूल में अन्दर जाने के लिए सहायता देने को कहने के झंझट से बच जाऊँगा।

अभी हमने ट्राली को पीछे छोड़ा ही था कि वह बोली, 'तुम जानते हो, कि तुम अर्ध अन्ध लोग ही पूरे अन्धे तथा नेत्र वाले व्यक्तियों की दुनियाँ में सम्पर्क स्थापित करते हो।'

'हाँ श्रीमती जी' मैंने कहा। यह पहला अवसर था जब मुझे अर्ध अन्ध शब्द भला प्रतीत हुआ।

'अन्धों की भी अपनी एक अलग ही दुनियाँ होती होगी। क्या तुम ऐसा नहीं समझते?' वह बोली।

'यह दुनियाँ आँखों रहित होती है', मैं बोला 'उसे पाँच इन्द्रियों की दुनियाँ के बजाए चार इन्द्रियों की दुनियाँ कहा जा सकता है।'

'लेकिन तुमने अपनी इन्द्रियों की शक्ति को बहुत बढ़ा लिया है। और अंधे व्यक्तियों को अपने आप चलते-फिरते देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। लेकिन मुझे तभी महसूस होता है कि उनमें अतिरिक्त संवेदनशीलता भी होती है।'

'उनमें कोई अतिरिक्त संवेदनशीलता नहीं होती, श्रीमती जी' मैंने कहा। 'हाँ, आप उसे मुखाकृति की दृष्टि कहें तो बात दूसरी है। आप कभी अन्धेरे में द्वार तलाश करने का प्रयास करें और विश्वास करें श्रीमती जी, यदि आपमें कुछ आकृति की दृष्टि है तो वह आपको मिल जाएगा।'

'उनमें अवश्य कुछ अधिक संवेदनशीलता होती होगी,' उसने ज़ोर देते हुए कहा। सम्भवतः उसने वह सब, जो कुछ मैंने कहा था, सुना ही नहीं था।

'तुम बिल्कुल अन्धे होते तब तुम्हें पता चलता कि मैं क्या कह रही हूँ ।'

मैं इतना थक गया था कि वाद-विवाद करने में असमर्थ था । मैं पीछे सीट से कमर लगाकर आराम से उसके अतिरिक्त संवेदनशीलता सम्बन्धी व्याख्यान को सुनता रहा तथा कार लगातार तेजी से भीड़ और ट्रैफिक में से गुजरती हुई चलती रही ।

एक स्थान पर कार रोककर वह बोली, 'अब हम पहुँच गए ।' काफी लम्बा रास्ता चलने के पश्चात् ठीक स्कूल के सामने उतरकर मैंने उसे धन्यवाद दिया तथा वह आगे चली गई । मुझे अपनी बेंत उसी स्थान पर मिल गई जहाँ मैंने छोड़ी थी । इसके नीचे के सिरे पर मैंने एक स्प्रिंग लगवा रखा था जिससे वह जमीन में रखने पर अपने आप ऊपर उठ जाती थी । मैं वहीं खड़ा रहा तथा बेंत को ऊपर-नीचे करता रहा और उसकी ध्वनि को सुनता रहा । जितना अधिक मैं उसे दबाता था उतनी ही कम मुझे वह अच्छी लगती थी । मैं जानता था कि चाहने पर भी मैं उसका अभ्यस्त नहीं बन सकता था । स्प्रिंग ने उसे अधिक अच्छा बनाने के स्थान पर और अधिक खराब बना दिया था ।

यातायात के शोर को चीरती हुई मैंने एक और तेज आवाज सुनी । क्लैक, क्लैक, क्लैक की आवाज हुई और मैं समझ गया एक और अन्धा व्यक्ति अपनी बेंत के सहारे रास्ता खोजता हुआ आ रहा है । उसकी मुखाकृति दृष्टि अत्यधिक कमजोर होगी, मैंने सोचा, तभी तो उसे हर रोशनी के खम्भे को छड़ी से ढूँढना पड़ता है । क्लैक, क्लैक, क्लैक की ध्वनि होती रही और मैं अपनी बेंत पर ऊपर नीचे हाथ फेरता हुआ वहीं खड़ा रहा । तभी मैंने उसके बीच में पैर दबाकर उसके दो टुकड़े कर दिए तथा वापस गटर में फेंक दी । अब मैं तेजी से स्कूल की तरफ चल पड़ा और लगभग दौड़कर स्कूल के भवन में पहुँच गया । लेकिन वह क्लैक, क्लैक, क्लैक की आवाज अभी भी वहाँ आ रही थी ।

मैं दो कदमों की दूरी एक ही पग में नापता हुआ दम भर में बाहर के लान में पहुँच गया । हमेशा के समान वहाँ जो अपनी एक धुन बजा रहा था ।

'कौन है' उसने पूछा ।

'मैं' मैंने कहा, 'अब तक तो तुम्हें मेरे पैरों की ध्वनि पहचानने का अभ्यस्त हो जाना चाहिए ।'

'मैं यही सोच रहा था,' उसने शिथिलता के साथ कहा और वह फिर अपनी धुन बजाने लगा ।

ग्रेजुएशन के बाद 'ग्राडिटोरियम' खाली होने लगा ग्रौर उसकी सूनी तस्वीर मुझे ग्रभी तक नहीं भूली है। केवल कुछ घुमक्कड़ प्रकृति के लड़के ग्रापस में जोर-जोर से बातें करते हुए इस तरह टहल रहे थे, मानो वह ग्रवसर गम्भीर रहने का तो हो ही, खुश रहने का भी हो। तब एक-एक करके लड़कों के माता-पिता ग्राये ग्रौर उन्हें गर्मियों की छुट्टियों के लिए लिवा ले गए ग्रौर स्कूल की इमारत उतनी ही खाली ग्रौर उसके कमरे उतने ही खोखले हो गए जितने मेरे ग्राने के समय थे। जिस इमारत में कभी ठसाठस भीड़ रहा करती थी वहीं ग्रब रसोइया, चौकीदार, मुनीम ग्रौर श्री वूली के परिवार के ग्रलावा ग्रौर कोई न रह गया। मेरा तो कोई घर ही नहीं था जहाँ मै जा सकता ग्रौर न मेरे माता-पिता थे जो मुझे लेने ग्राते। मेरे लिए तो केवल भविष्य में दुःखद ग्रौर भयानक गर्मी भर थी।

तेज ग्रौर नम गर्मियों के ग्रागमन पर ही मुझे पता चला कि स्कूल के वातावरण से मैं कितना बंध गया था। बसन्त के बाहर वाले कार्यक्रम तक मैं ग्रपने को वहाँ एक ऐसा कैदी समझता रहा, जिसका हर मित्र एक कैदी था, जिसके लिए बाहरी दुनिया केवल दिन-प्रतिदिन एक चहार दीवारी के भीतर होने वाली घटनाग्रों तक ही सीमित था। मेरे लिए तो यह सब कुछ ग्रमेरिका के जीवन को एक पक्षपात-पूर्ण दृष्टि से देखने के समान था ग्रौर बहुत-सी बातों के ग्रतिरिक्त मैंने सुना था कि ग्रन्धे होने का मतलब बेरोजगार रहना भी था क्योंकि नौकरी देने वाले ग्रंधों को नौकरी देना पसन्द नहीं करते थे। कम से कम किसी ग्रस्थायी काम में तो कभी नहीं। लेकिन श्री वूली के ग्रथक परिश्रम से ग्राखिरकार मुझे ग्रड़तालीस घण्टे प्रति सप्ताह काम करने पर सौ डालर प्रतिमास के हिसाब से एक ग्राइसक्रीम फैक्टरी में काम मिल गया। प्रतिदिन चार मील तक ट्रॉलियों ग्रौर बसों पर जाने के उपरान्त कार्य करने पर घर की याद ग्राने लगी तथा इस तथ्य को मानना पड़ा कि विदेशों के लोग ग्रन्धे व्यक्तियों की खूबियों को तुरन्त ही मानने के लिए तैयार नहीं हैं। हमारा पहला ग्रनुमान, कि ग्रन्ध समाज को विदेशों में बिना किसी कठिनाई के स्वीकार कर लिया जाता है, केवल एक भ्रम मात्र था।

मुझे ग्रपनी भीड़पूर्ण बसों की यात्राएँ याद हैं। मेरी मानसिक वेदना को बढ़ाने के लिए स्त्रियाँ खड़ी हो जाती थीं ग्रौर ग्रपनी सीट पर बैठने के लिए कहतीं ही नहीं, जोर देती थीं ग्रौर यदि मैं विरोध करता था तो किसी तीसरे व्यक्ति के हस्तक्षेप की भी ग्राशंका होने लगती थी। जब दो या तीन व्यक्ति मुझे सीट की

तरफ पहुँचाने लगते थे तो मुझे बड़ा बुरा लगता था, क्योंकि मैं अकेले ही वहाँ पहुँच सकता था। पहले दिन तो बस और दिनों के मुकाबले में काफी खाली थी। तथा मैं बिना किसी के यह समझे कि मैं अन्धा हूँ आसानी से घुस गया था। लेकिन अब सुबह साढ़े सात बजे और शाम को पाँच बजे चलने पर बस में इतनी अधिक भीड़ रहती थी कि खड़े होने को भी कठिनता से ही जगह मिलती थी और भीड़-भाड़ से भरे बस स्टाप में लोगों से टकराकर मेरा अंधापन प्रकट हो ही जाता था।

रेस्तराओं में भी, जहाँ मैं दोपहर को खाने के समय जाया करता था, परिचारिकाएं मुझे अन्धा ही नहीं बल्कि बहरा भी समझती थीं, जो मीनू को बताने के लिए इतनी जोर से चिल्लाती थीं कि सारे रेस्तराँ का ध्यान आकर्षित हो जाता था। यदि कोई मेरे साथ होता था तो वह मेरे साथी से पूछती थी कि मुझे किस वस्तु की आवश्यकता है, जैसे मैं कोई गूँगा हूँ तथा माँगने में असमर्थ हूँ। कभी-कभी अनजान लोग मेरे बिल का भुगतान सम्भवतः मुझ पर दया करके कर दिया करते थे।

जब कभी मुझे चौराहों को पार करना होता था, जो मैं बिना किसी अन्य व्यक्ति की सहायता के पार कर सकता था, तो भी तीन-चार आदमी आकार मुझे हाथों से लगभग उठाकर दूसरी ओर पहुँचा देते थे। जब कभी मैं इन सतर्क स्वयंसेवकों से आँखें बचाकर अधिक यातायात में से अपना रास्ता होशियारी से बनाता था, तभी कोई सड़क के किसी ओर से चिल्लाता था, 'देखो, सम्भलो!' जैसे मेरे ऊपर से कार के गुजरने में कुछ ही सेकेण्ड की देरी हो। मैं घबराकर पक्षाघात जैसी अवस्था में हो जाता था और मेरा सारा नियंत्रण और दिशाज्ञान खो जाता था। कभी-कभी तो मेरे तथा कार के बीच में फासला इतना कम रहता था कि मैं आसानी से सड़क पार कर सकता था, लेकिन जैसे ही मैं 'बचो, सम्भलो' की आवाज सुनता मैं घबरा जाता था तथा तुरन्त ही चारों ओर से मैं इतने समीप से ब्रेक लगने की आवाज सुनता था कि मैं कार को छू सकता था। यह एक आश्चर्य ही था कि मैं कभी भी जख्मी नहीं हुआ।

एक बार जब मेरा ख्याल है अभी मेरे काम का पहला सप्ताह ही चल रहा था—मैं बस से उतरकर पीछे की ओर से आइस क्रीम फैक्टरी की ओर जा रहा था, तभी मैंने अपने पैरों के नीचे से जमीन खिसकती-सी अनुभव की। मैं एक खाली जगह में गिर रहा था। 'इससे अधिक भयानक और कोई बात नहीं हो सकती',

एक व्यक्ति ने कहा, 'कि एक अन्धे आदमी के पैरों के नीचे की जमीन खो जाय। और सचमुच मेनहोल में गिरने पर ही समय की अनन्तता जानी जा सकती है।' निस्सन्देह उस कीचड़ से भरे मेनहोल के किनारे से नीचे तक पहुँचने और वहाँ से ऊपर आने का समय मुझे बहुत लम्बा प्रतीत हुआ। जिस बात का मुझे दुःख हुआ वह वास्तव में उसमें गिरने के कारण होने वाला दर्द नहीं था लेकिन एक बूढ़ी स्त्री का चिल्लाना और बेहोश होना था और जो भीड़ वहाँ इकट्ठी हो गई थी उसमें हर एक ने कुछ-कुछ कहना शुरू कर दिया। कुछ कहने लगे कि अन्धे लोगों को बिना किसी सहायक के बाहर नहीं निकलने देना चाहिए तथा कुछ ने बेंत न रखने के लिए मुझे झिड़कना आरम्भ कर दिया। मैं शर्म से गड़ा जा रहा था। शर्म इस बात की कि लोग क्या सोच रहे हैं ?

मैंने मेनहोल से ऊपर आने का भरसक प्रयास किया। मुझे ऊपर निकलना चाहिए, मैं सोच रहा था, लेकिन मेरे कपड़े भीग चुके थे और मैं काफी नीचे पहुँच चुका था। जैसे ही मुझे बाहर खींचकर निकाला गया मैं आइस क्रीम फैक्टरी की ओर दौड़ पड़ा तथा बहुत आवाजें एक साथ मिलकर मेरे पीछे रुकने के लिए चिल्लाती रहीं।

फैक्टरी के अन्दर हमेशा के समान ही तेज अमोनिया की दम घोंटने वाली गन्ध व्याप्त थी। मैं तेजी से हाँफ रहा था तो अमोनिया का स्वाद मेरे मुख में पहुँच रहा था। आज़ेला, जीन, तथा हेलन, वे लड़कियाँ जिनके साथ मैं काम करता था, मुझे चारों ओर से घेरकर पूछने लगीं, 'क्या हुआ था ?'

'कुछ नहीं' मैंने धीरे से निकलते हुए आँसुओं को मुश्किल से रोकते हुए कहा। तथा मुँह-हाथ धोने के बाद मैं अपनी जगह एक मेज, जिस पर एल्यूमीनियम की चादर चढ़ी हुई थी, और एक फ्रीजर के बीच में पहुँच गया। फ्रीजर से निकलने वाली ठण्डी हवा मेरी गर्दन के पिछले भाग से टकरा रही थी। आज़ेला पॉप-सिकील्स और पोलर बार इकट्ठे कर रही थी, जीन तथा हेलेन उन्हें ट्रे में रख रही थीं। तथा मैं उन्हें बक्सों में भरकर एक के ऊपर एक रख रहा था, जिससे टामी उन्हें बर्फखाने में ले जाए।

मैं चाहता था कि 'जे' मुझे या तो बर्तन धोने दे अथवा चिपकाने वाली मशीन पर काम करने दे। लेकिन नहीं, मैं अन्धा था, अतः 'जे' मुझे मेज की पीछे वाली जगह नहीं छोड़ने देना चाहता था। 'यदि तुम जख्मी हो गए,' उसने बार-बार कहा

था । 'तो कम्पनी पर मुकदमा चल सकता है ।' लेकिन आज़ेला, जीन, हेलन, टामी अथवा स्वयं 'जे' से अधिक मेरे जख्मी होने की सम्भावना कैसे थी ?

'हेलन, यहाँ आकर कृपया बक्स में रखने का कार्य आप कर लीजिए और मुझे फ्रीजर में रखी आइस क्रीम पर काम करने दें,' मैंने याचना करते हुए कहा, 'मैं यह काम कर सकता हूँ । आप विश्वास करें, मैं कर सकता हूँ ।'

हेलन ने ऐसा ही किया तथा मुझे आइस क्रीम से पापसिकिल्स और पोलर बार से लदे फ्रीजर के भीतर रखने वाले रेकों से निकालना तथा उन्हें आज़ेला के पास ले जाना बहुत अच्छा लगा । यह सप्ताह में छः दिन और हर दिन में आठ घण्टे एक जगह खड़े-खड़े आइस क्रीम बक्सों में बन्द करने से कहीं ज्यादा अच्छा था ।

'सावधान रहो, फर्श गीला है,' आज़ेला ने कहा ।

'मैं जितना गीला हूँ, इससे ज्यादा गीला अब नहीं हो सकता' मैंने प्रसन्नतापूर्वक कहा । इसके बाद मैंने दरवाजे को खुलते और 'जे' को उस बड़े कमरे में कदम रखते हुए सुना । उसने कुछ नहीं कहा, लेकिन मैं जान गया था कि वह देख रहा है । 'मैं इसे दिखला दूंगा,' मैं रैकों को आज़ेला की ट्रे में खाली करते हुए सोच रहा था । मेनहोल की घटना अब महत्व हीन-सी लग रही थी और वह स्त्रियाँ भी जो मुझे अपना स्थान देने के लिए उठ खड़ी हुई थीं, बहुत भली और मृदु भाषी मालूम पड़ रही थीं । इस प्रकार एक व्यक्ति को इन नेत्र वालों को उदाहरण प्रस्तुत करके यह बतलाना चाहिए कि वह क्या कर सकता है, तभी वे समझेंगे । कार्य हमेशा शब्दों से अधिक तेजी से बोलता है ।

मैं मेज से फ्रीजर और फ्रीजर से मेज पर घूम रहा था और आज़ेला के फुर्तीले हाथों की आवाज सुन रहा था, जो आइसक्रीम के बार ट्रे में उठाकर आवाज़ करते हुए खानों में रखता था और फिर रुक जाता था । वह मुझे देख रहे हैं, मैंने सोचा, उनमें से हर एक—सब । उसी समय अचानक मैंने ऐसा अनुभव किया जैसे मैं गली के बीच में पहुँच गया हूँ, और कोई चिल्लाया, 'ठहरो ! सम्भलो !' मेरे पैरों को गीली पतलून में जैसे पाला मार गया हो । रैक मेरे हाथ में थी और मैं दो दर्जन पापसिकिल्स को बिखेरते हुए फर्श पर गिर पड़ा । बस सब खत्म हो गया । मैं फिर मेज पर गया और आइस क्रीम को बक्सों में बन्द करना शुरू कर दिया जो मैं एक सप्ताह से कर रहा था और पॉपसिकिल्स के सिरों को कागज के बने डब्बों में भरने लगा । टामी बालटियाँ भर-भर कर पानी फर्श पर बिखेर

रहा था जब कि जीन उसे सुखा रही थी। हेलन पापसिकिल्सों को बदल रही थी। आज़ेला और 'जे' धीरे-धीरे दूसरे कमरे में बातचीत कर रहे थे।

मैंने 'जे' को कहते सुना 'इसे मेज के पास से मत हटने दो और उस पर एक नजर हमेशा रखो।' उस दिन और उसके बाद आज़ेला मेरी देखभाल करती और मैं बक्स में भली प्रकार चीजें रखना सीख गया। लेकिन जब आइसक्रीमों का काफी स्टाक हो जाता था तो मुझे बिना काम रहना पड़ता था, जब कि लड़कियों को फैक्टरी पर दूसरे कामों में लगा दिया जाता था।

कुछ दिन गुजरने के बाद काम की उत्साहहीनता ने तथा कभी इस बेकार बैठे रहने ने मुझे उदास बना दिया। लेकिन उसी गर्मी में मैंने तैरना भी सीख लिया। यद्यपि जब कभी भी मैं लड़कों के क्लब में जाता था तो मुझे चार मील की और अधिक मंजिल तय करनी पड़ती थी। तथा विभिन्न बसों में भागना पड़ता था लेकिन फिर भी तैरने का शारीरिक व्यायाम इस कठिनाई को सहन करने योग्य बना देता था। तैरने में मुझे वैसा ही आनन्द आता था जैसा बाइ-सिकल चलाने में आया था। और इसका भी एक वही बड़ा लाभदायक प्रभाव होता था कि अन्धा होने पर भी मैं स्वयं को स्वतंत्र महसूस करता था।

जहाँ तक मुझे याद है जीवन में पहली बार मैंने समवयस्क नेत्रों वाले लड़कों और लड़कियों से मित्रता की थी। उन्होंने मेरे अन्धेपन की प्राथमिक कठिनाई के बाद अब मुझे अपने ही समाज में से एक मान लिया था। वे मेरा सिर पानी में डुबो देते, ड्राइविंग बोर्ड से नीचे ढकेल देते या कभी-कभी तालाब में ही दिशाभ्रम कराने की भी कोशिश करते। 'एड' हमेशा पानी के टैंक की ओर मुख किए बैठा रहता था और तैरने वालों पर एक तेज निरीक्षण भरी निगाह रखता था। पहले तो वह उन्हें डाँटते हुए कहता, 'क्या तुम अंधे व्यक्तियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने की अपेक्षा और अच्छा व्यवहार नहीं कर सकते?' तब वे मुझसे अलग हो जाते थे और फिर मेरी तैरने की इच्छा भर जाती थी।

मैं जानता था मुझे 'एड' को मित्र बनाना पड़ेगा और उसे यह समझाना पड़ेगा कि यदि मैं अकेले तैरा तो तालाब की दीवार से टकराने का मुझे खतरा रहेगा। धीरे-धीरे मुझे पता चल गया कि 'एड' को शतरंज खेलना बहुत अच्छा लगता है, अतः जब मैं अगली बार गया तो अपना शतरंज का बोर्ड साथ ले गया।

'तुमने अपनी रानी को दाईं ओर मेरे बिशप के बिल्कुल पास रख दिया है,

इसलिए मैंने उसे मार डाला है।' एड ने मेरी एक चाल के बाद कहा।

एक लड़की ने, जो अब तक खेल देख रही थी, एक गहरी साँस ली।

'ओह' मैंने कहा, 'वह तो बिल्कुल तुम्हारी है।' अपनी रानी को खेल के प्रारम्भ में ही खोते हुए जानकर होने वाली वेदना को छुपाते हुए मैंने अपने चेहरे पर एक बनावटी मुस्कान प्रदर्शित करते हुए कहा।

'नहीं' एड बोला, 'अपनी चाल वापस करो।'

'क्यों ?' मैंने पूछा।

'तुमने यह नहीं देखा कि मेरा बिशप वहाँ है। तुमने देखा नहीं।'

'हाँ', देखने वाले दर्शक बीच में बोल उठे, 'इसे रानी को मत लेने दो।'

यद्यपि मुझे मन ही मन बड़ा क्रोध आ रहा था फिर भी मैंने अपनी चाल वापस ले ली, क्योंकि मुझे 'एड' के बोलने के ढंग से पता चल गया था कि मैं चाहे कितना ही प्रतिरोध क्यों न करूँ, वह नहीं मानेगा। और एक अन्धे व्यक्ति को हमेशा समझौते का द्वार खुला रखना पड़ता है चाहे किसी को बुरा ही क्यों न लगे। एक बार खेल के दौरान में वह बोला, 'मुझे दुःख है। मैं अपना घोड़ा वहाँ नहीं रखना चाहता था।'

'जो चाल चली गई, चली गई' मैंने सख्ती के साथ कहा और उसका घोड़ा उठा लिया। उसकी अगली गलत चाल पर मैंने फिर निर्दयता से उसका मोहरा मार दिया तथा इस प्रकार वह बाजी हार गया।

'तुम अब मुझ पर बहुत अधिक प्रहार मत करो', उसने कहा और मैंने अनुभव किया कि उसके स्वर में तीखापन है।

'मेरे विचार ऐसे नहीं हैं', मैंने साथ-साथ हर्ष और दुःख अनुभव करते हुए कहा।

इसके पश्चात् वह मेरे गलती करने की प्रतीक्षा किया करता और जब कभी भी मैं कोई गलती करता, वह दिल खोलकर हँसता और कहता, 'उस समय हमें शिक्षा मिल गई थी' तथा तभी चारों ओर से वाह, वाह, क्या खूब की उत्साह-वर्धक आवाजें आने लगती थीं। वह अब रुक भी जाता था तथा तैरने के तालाब में मुझे बचाने का प्रयास किया करता था। जब कभी भी मेरे ऊपर कोई कठिनाई होती थी तो वह मेरी ओर आनन्दपूर्वक देखता था, तथा मुझे प्रसन्नता होती थी कि मैं उसके साथ सख्ती के साथ शतरंज खेलता था।

एक दिन जब मैं बस से उतरा और लड़कों के क्लब के सामने वाली सड़क

पर गुजरने का प्रयास करने लगा; उसी समय 'जो रेड' जो डायरेक्टर थे, तुरन्त सड़क के दूसरी ओर से आये और बोले, 'मुझे खुशी है कि तुम आ गए।'

'आप जानते थे कि मैं आऊँगा।' मैंने लापरवाही से कहा, 'लेकिन इस स्वागत की क्या आवश्यकता है?'

'अन्दर आओ, फिर बतलाऊँगा', उन्होंने कहा और मैं सड़क के पार उनके दफ्तर में चला गया। 'अर्कन्सास डेमोक्रैट' पत्र के फोटोग्राफर पानी में कूदते हुए तुम्हारा चित्र लेना चाहता है।'

मेरा दिल बैठ गया। 'ओह, जो, आप जानते हैं मैं इसे कितना अधिक नापसन्द करता हूँ। वह लोग मेरे बारे में पहले ही इतना अधिक लिख चुके हैं कि मैं मुश्किल से बस में चढ़ जाता हूँ कि लोग मुझे पहचान लेते हैं और अभिवादन करना शुरू कर देते हैं। यह सभी बहुत कष्टदायक-सा प्रतीत होता है।'

'लेकिन क्लब के लिए तुम्हें इतना तो करना ही पड़ेगा और इसके अलावा जनता को इस प्रकार से अन्धों के प्रति सूचनाप्रद शिक्षा मिलती है। तुम भारत के सम्बन्ध में एक अच्छी-सी कहानी रविवारीय परिशिष्ट में दे दो।' वह कुछ क्षण रुकने के पश्चात् फिर बोले, 'मैं चाहता हूँ, तुम हमारे ऊँचे बोर्ड पर से चित्र खिचवाने के लिए कूदो।'

'लेकिन जो, मैं ऐसा नहीं कर सकता?', मैंने कहा।

'क्यों नहीं कर सकते तुम?'

'क्योंकि···' लेकिन मैं उन्हें वह नहीं बतला सका कि खाली जगह से मुझे कितना डर लगता था।

उसके आकार-प्रकार को जानने से पहले ही मैं उस ऊँचे बोर्ड पर चढ़ रहा था और काँप रहा था। तैरने के तालाब को तैरने वाले व्यक्तियों से खाली करवा दिया गया था तथा सब मुझे टकटकी लगाये देख रहे थे। मेरा विचार था कि बहुत-से व्यक्ति यह सब देख रहे होंगे, लेकिन मैं सोच रहा था कि उन्हें हर एक व्यक्ति को तालाब में से निकालने की तकलीफ नहीं उठानी चाहिए थी।

'क्या तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे साथ ऊपर आऊँ और बोर्ड का सिरा ढूँढने में तुम्हारी सहायता करूँ?' जो ने जोर से कहा।

'मैं उसे स्वयं ही ढूँढ सकता हूँ', मैंने हाँफते हुए कहा।

मेरे घुटने कमजोर हो गए थे और मैं नहीं जानता था कि और कितने समय

तक वह मुझे सम्हालने में समर्थ हो सकेंगें। मैं अब तक वहाँ पहुँच गया था और सिर की ओर को चल रहा था। मेरे पैरों के नीचे का रबड़ का बोर्ड गीला होने के कारण चिपचिपा रहा था।

'बीच में रहना' जो चिल्लाए, 'तुम्हें एक ओर से कूदकर अपने को घायल नहीं करना है।'

मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे कोई चिल्लाया हो, 'देखकर, सम्भलकर।'

लेकिन फिर भी मैं होशियारी के साथ कदम रखता हुआ सिरे की ओर चलता रहा, बिना यह जाने कि मैं अपना सन्तुलन रख सकूँगा या नहीं।

मुझे डर लग रहा था कि कहीं मैं सिरा न खो दूँ और इस प्रकार एक दूसरे मेनहोल में गिर पड़ूँ। मेरे चारों ओर बिल्कुल शान्ति थी, ऐसी शान्ति उस प्रसन्न वातावरण में पहले कभी भी नहीं रही थी। मुझे सिरा मिल गया और मैंने अपने अंगूठे मिलाए तथा हाथों को ऊँचा कर शरीर को उसी प्रकार झुकाया जैसा मुझे जो ने नीचे वाले बोर्ड पर बतलाया था।

'ठहरो', संवाददाता बैनरश चिल्लाया, 'इधर देखो। मैं पहले बोर्ड पर तुम्हारा एक चित्र लेना चाहता हूँ।' उसके यह कहने में 'अब तुम किसी भी समय कूद सकते हो' काफी समय लगा।

मैं चाहता था वहाँ कोई भी रविवारीय समाचारपत्र न रहे तथा कोई भी व्यक्ति अन्धों के अथवा भारत के बारे में शिक्षा प्राप्त करने के लिए न रहे। मैं वापस लौटना चाहता था। यदि मैं केवल अपने कदमों को भी गिनता रहता तो सम्भव था मुझे अपनी ऊँचाई का अनुमान हो जाता। अपने को स्थिति में करके तथा एक लम्बी साँस लेकर मैं कूद गया। मेरे कूदने के साथ ही स्प्रिंग के अपनी स्थिति में वापस आने की आवाज हुई, कैमरे से क्लिक की ध्वनि हुई तथा मैं नीचे गिरने लगा। ऐसा प्रतीत होता था जैसे किसी तेज चलने वाली लिफ्ट में बैठा हूँ। पानी तक पहुँचने तक का समय बहुत लम्बा हो गया था तथा पानी पर पहुँचने के साथ ही मुझे पानी ने चारों ओर से दबाना शुरू कर दिया। लेकिन मेरी यह यात्रा अभी भी जारी थी और मैं अधिक और अधिक नीचे होता चला जा रहा था। आखिर मेरे फैले हुए हाथों ने आखिरी तली को छुआ। मैं अब साँस लेना चाहता था। कभी भी अब मैं हवा में साँस नहीं ले सकूँगा, मैं सोच रहा था और अपने हाथों-पैरों से अथक प्रयास कर रहा था, यद्यपि जो ने कहा था, 'यदि तुम अपने शरीर को तनिक भी

विश्राम दो, तो ऊपर आना बहुत ही आसान है।' लेकिन मुझे तो यह सभी भयावह प्रतीत होते थे। जब से मैं कूदा था, समय मानो समाप्त ही होने में नहीं आता था। मध्य से किनारे तक पानी की लम्बी-लम्बी लहरें उठकर फिर वापस आ रही थीं। यह सब था मुझ जैसे नौसिखिए के लिए। वहाँ कोई भी स्त्री बेहोश नहीं हो रही थी लेकिन केवल 'जो' का फुर्तीले शरीर की छाया मेरी ओर आकर मेरे साथ-साथ तैर रही थी। 'बहुत परिश्रम मत करो, बस, अब तुम लगभग पहुँच ही गए हो,' उसने कहा।

'बहुत सुन्दर रहा। जब मैं वापस आकर बाहर निकल रहा था', तब रोड ने मुझसे कहा।

उस दिन रात को मैंने शतरंज का खेल बहुत खराब खेला।

जब लेख छपा तो चित्र में मैं केवल कूदने की तैयारी कर रहा था।

आने-जाने में बढ़ते हुए अनुभव के साथ-साथ अब मुझे सड़क पर ऊपर-नीचे मुख नहीं घुमाना पड़ता था; लैम्पों के खम्भे नहीं गिनने पड़ते थे और न ही उनको टटोलना पड़ता था। मैं यह सीख चुका था कि किस प्रकार आराम किया जाता है और किस प्रकार दूसरों को आराम पहुँचाया जाता है, चाहे कोई अनजान व्यक्ति ही बस में ऐसा हो। जब कभी स्त्रियाँ उठकर अपनी सीट पर बैठने के लिए मुझसे आग्रह करती थीं तो मैं कोई अच्छा-सा मजाक उनके साथ कर दिया करता था और उनके प्रस्ताव को सधन्यवाद अस्वीकार कर देता था। अब रेस्तराओं की परिचारिकाओं से भी उनके कुछ भी कहने से पहले ही कुछ कहना सीख लिया था, जिससे प्रभावित होकर वे भी नम्रता से बोलने लगी थीं। अब मैंने सड़कों को पार करने तथा बस में चढ़ने-उतरने के भी कुछ तरीके मालूम कर लिए थे, जिनके कारण विभिन्न घटनाओं के घटने की सम्भावना बहुत कम रह गई थी; ऐसी घटनाओं की जो पहले मेरे शुरू में यात्रा करने के दौरान में आमतौर पर घटित होती थीं। हालाँकि लोग अभी भी कभी-कभी चिल्ला उठते थे 'बचना, देखना, सम्भलना।' लेकिन यदि मैं खूब ध्यान से चलता था तो मैं इस प्रकार की आवाजें कभी नहीं सुन पाता था। पहला मेनहोल ही यद्यपि मेरा अन्तिम मेनहोल नहीं था। लेकिन पहली बार के बाद फिर कभी मैं उतनी तेजी से नीचे नहीं गिरा और जब गिरा भी तो मुँह लटकाने के स्थान पर खुशी-खुशी बाहर निकला।

घूमने-फिरने की इस नई आजादी को पाकर एक ऐसी आजादी जिसे भारत

में मुझे देने से इन्कार कर दिया गया था, यहाँ तक कि साइकिल पर भी घूमनेकी मुझे आजादी नहीं थी—अब मेरे जीवन की पुस्तक का एक नया अध्याय खुला था, जो मेरे लिए उतना ही उत्साहवर्धक तथा रुचिकारक था, जितना कि एक वयस्क के लिए पढ़ना-लिखना।

जब मैं दिन का एक बड़ा भाग आइस क्रीम फैक्टरी में बिताकर तथा तैरने के तालाब में मैं काफी देर तैर कर वापस घर आता तो मैं इतना थक जाता था जितना स्कूल के दिनों में पहले कभी नहीं थका था। मस्तिष्क को चैतन्य रखने के लिए सोने से पहले मैं रिकार्डों पर किताबों को सुना करता था यद्यपि मैं निराशा अनुभव करता था क्योंकि काँग्रेस की लाइब्रेरी में हल्की श्रेणी का कथा साहित्य बहुत होता था। फिर भी अपनी ज्ञान-परिधि को और अधिक विस्तृत करने के लिए मुझे काफी पुस्तकें मिल जाती थीं। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन मेरी कारगुजारियों का क्षेत्र बढ़ता गया।

अब पहली बार मुझे फ़ीलिडंग, प्रूस्त, रोलां, दस्तायवस्की तथा टालसटाय के उपन्यास पढ़ने को मिले थे। मैं उत्साह के साथ पढ़ता था तथा कभी-कभी तो सारी-सारी रात जागकर पढ़ता था और अभिनेता अलकज़ैन्डर स्कारबी की कभी भी न थकाने वाली आवाज को रिकार्ड पर सुनता रहता था। इस प्रकार से पढ़ना इतना अधिक आनन्ददायक तथा मोहित करने वाला था, कि मुझे हर पन्द्रह मिनट के पश्चात् रिकार्ड बदलना बहुत बुरा लगता था। फ़ोनोग्राफ़ गरम हो जाया करता था और उसमें से रबड़ के जलने की दुर्गन्ध आने लगती थी, लेकिन फिर भी मैं रात में पढ़ता रहता था, यह समझ कर कि आइस क्रीम फैक्टरी का काम रात भर जाग-कर भी तो मैं कर सकता था।

भाप के नल | २२

गर्मियाँ समाप्त हो गई थीं और लड़कों के क्लब में मेरा तैरने जाना रुक गया। मुझे बेसबाल का भी खेल ठीक से नहीं आता था लेकिन फिर भी मुझे लॉकर रूम के बाहर खिड़की के नीचे खड़े होकर खेल आरम्भ करने वाले 'जो' के गेंद फेंकने के बाद आर्ली, केनेथ तथा आथर के साथ अपनी पारी पर गेंद मारने में बड़ा मज़ा आता था। 'जो' बेसबाल का अच्छा खिलाड़ी था। वह कहा करता था कि यदि वह नेत्रवाला होता तो जरूर सेन्ट लुइस कार्डिनल में प्रवेश करता। अब भी वह रेडियो पर घण्टों बेसबाल के खेल के सम्बन्ध में सुनता रहता था और जब कभी उसकी पसन्द की कोई टीम हार जाती तो वह छोटे बच्चों के समान रोने लगता था। लड़के उसे चिढ़ाया करते थे। 'इस आदत को छोड़ दो, जो' वे कहते, 'अब तुम बीस वर्ष के हो गए हो तथा तुम्हारी मां ने तुम्हें अपने हाथ से खाना खिलाना वर्षों से छोड़ दिया है।' पैट कभी कहता था, 'इससे बुरी बात किसी लड़के के लिए और दूसरी क्या हो सकती है कि जीवन के बीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी वह पाँचवीं कक्षा में ही पड़ा रहे ?' एक बार उसने 'जो' को गाली देते हुए नाजायज़ सन्तान कहा तथा 'जो' बहुत देर तक रोता रहा तो मैंने और आथर ने मिलकर बड़ी कठिनाई से उसे पिच तक पहुँचाया। हम जानते थे कि किसी और तरीके की अपेक्षा वह इसी तरह अधिक शीघ्र शान्त हो सकता था।

'जो' हमसे कुछ फुट के फ़ासले पर खड़ा होकर बल्ले पर निशान लगाया करता था, उसकी आंखों में शायद ही इतनी रोशनी रही होगी कि वह बल्ले को देख सकें। और हम बारी-बारी से गेंद को हिट लगाया करते थे। आर्ली, केनेथ, आथर और मैं बिल्कुल अन्धे थे, लेकिन फिर भी गेंद की ध्वनि तथा गति से अन्दाज़ लगाकर हम उसमें हिट लगाकर पाइन्ट बनाने का प्रयास करते थे और यदि हमें गेंद नहीं मिलती थी तो 'जो' बड़े जोर से हँसता था। तथा आथर मजाक में उसे बल्ले पर ठीक निशाना न मारने के लिए बुरा-भला कहता था। कभी-कभी तो जब हम बैटिंग

करते-करते ऊब जाते थे तब भी केवल इसीलिए खेलते रहते थे कि 'जो' गेंद को फेंकता अच्छा लगता था ।

जब कभी हम गेंद नहीं खेलते थे तो जिमनाजियम के पीछे जंगल में चले जाते थे, जहाँ अब मैं अपना अधिकतर समय व्यतीत करने लगा था । वहाँ केनेथ हमेशा घूमता हुआ मिल जाता था तथा कबाब भूनने का सामान जुटाने की तलाश में रहता था । आथर के जोर-जोर से तम्बाकू चबाने और थूकते रहने की आवाजें आती थीं । और वह एक टीन के टुकड़े को पीट-पीटकर अंगीठी का रूप देने की कोशिश किया करता था और जब कभी आर्ली को कोई अच्छी जलाने वाली लकड़ी मिल जाया करती थी तो वह खुशी से चिल्ला पड़ता था । इसके बाद हम सब कबाब खाते थे और बीते हुए गर्मियों के दिन सभी को याद थे और सब अपने अनुभवों के बारे में बताया करते थे ।

केनेथ एक ऐसी स्त्री के सम्बन्ध में बतलाया करता था जिससे वह मिला था । उस स्त्री का ख्याल था कि अन्धों को कभी भी सोने की आवश्यकता ही नहीं होती क्योंकि उनकी आँखें तो हमेशा बन्द ही रहती हैं । आथर ऐसे लोगों के बारे में बतलाते हुए कभी नहीं थकता था जिनका विश्वास था कि अंधों के छुरी-काँटों का सम्बन्ध तागे द्वारा उनके दाँतों से होना चाहिए, जिससे खाना खाते समय छुरी, काँटे ठीक उनके मुँह में पहुँच सकें । और आर्ली हमेशा किसी न किसी आदमी के बारे में हास्यप्रद कथा सुनाया करता था, जो उससे गर्मियों में मिले थे जब वह पियानो का स्वर ठीक किया करता था । हमारी ग्रीष्म काल की कहानियाँ समाप्त हो जाती थीं तब भी हमारे पास धर्म, स्त्रियाँ तथा कभी-कभी राजनीति के विविध विषय समय बिताने के लिए हमेशा रहते ही थे ।

कुमारी डव्स हमारे स्कूल में इस वर्ष के प्रारम्भ में आई थीं । उनकी आवाज बड़ी मीठी थी और श्री चाइल्स कहा करते थे, यदि उनका धर्म के प्रति अनुराग न होता तो उनकी सुरीली आवाज उन्हें किसी भी बड़े नगर में ले जाती । जब वह अभ्यास करती थीं तो हममें से कुछ तो दरवाजे से कान लगाकर उनका संगीत सुना करते थे । एक दिन उन्होंने मुझे पकड़ लिया और खिड़की के पास खड़े होकर सुनने के लिए खूब डाँटा । लड़के कहते थे कि वह मन से पूर्णतावादी हैं तथा जब तक किसी गीत पर पूरी तरह अधिकार नहीं कर लेतीं, यह नहीं पसन्द करतीं कि कोई उसे सुने ।

मैं उनसे पियानो बजाना सीखा करता था। अभी मैं इस बारे में सरगम ही सीख रहा था। तथा मेट्रोनोम (एक प्रकार का वाद्ययन्त्र) के साथ-साथ जब मैं चाबियों पर ऊपर नीचे अँगुलियाँ फिराता था तो मै सोचा करता था कि वे नौसिखियों के साथ अपना समय क्यों बरबाद करती हैं ? जब कभी भी मैं बेंच गरम होने के कारण इधर-उधर सरकता, गलत तरीके से बैठता अथवा उनके बताए हुए ढंग से अँगुलियाँ न मोड़ता तो वह झुँझला उठती थीं।

स्कूल के तीसरे सप्ताह में उन्होंने एक बार मुझे पाठ के बीच में ही रोक लिया और पूछा, 'क्या तुम कभी दुखी होते हो ?'

'कभी-कभी' मैंने कहा।

'अक्सर तुम बड़े उदास दिखते हो !' वह कहती गयीं।

'मैं वैसा निश्चय ही रहना नहीं चाहता।' और इसके बाद एक कष्टप्रद नीरवता व्याप्त हो गई।

मैं फिर बजाने लगा, लेकिन उन्होंने मुझे अचानक रोककर पूछा, 'तुम्हारा धर्म क्या है ?'

'मेरा विचार है, मैं एक हिन्दू हूँ' प्रश्न के अचानक होने से तनिक भी प्रभावित न होते हुए मैंने उत्तर दिया।

'इसका क्या मतलब है ?' उन्होंने जोर देते हुए कहा।

'यह कहना बहुत कठिन है। किसी भी अन्य चीज से अधिक धर्म जीवन का एक ढंग है', मैंने कहा।

मैं और शब्दों को सोच रहा था, कि उन्होंने पूछा, 'क्या तुम ईसाई धर्म के बारे कुछ जानते हो ?'

'मैंने ईसाई धर्म के बारे में सुना है। मैं भारत में एक अमेरिकन धार्मिक स्कूल में पढ़ता था। तथा वहाँ मैं देवजी और एक नर्स से मिला था' मैंने उत्सुकतापूर्वक कहना प्रारम्भ किया।

तभी उन्होंने बीच में बोलते हुए कहा, 'वह कौन हैं ?'

'ईसाई ! भारतीय ईसाई,' मैंने कुछ संकोच के साथ कहा, 'मैं उन्हें भली प्रकार जानता हूँ' तुरन्त ही मै नाक सिकोड़ने की आवाजें सुनकर सम्हल गया।

'मुझे दुःख है, उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक कहना प्रारम्भ किया, 'तुम्हें कभी भी प्रकाश नहीं दिखलाया गया···तुम्हें, जो अपने अंधेपन और मुसीबतों के कारण

इतने अधिक संवेदनशील हो चुके हो।' मैंने उदास होकर अपनी अंगुलियों से बेंच को बजाना प्रारम्भ कर दिया। 'तुम्हें ईसाई धर्म में दीक्षित किया जाना चाहिए, नहीं तो तुम्हें हमेशा नर्क की अग्नि को भोगना पड़ेगा। अभी भी बहुत विलम्ब नहीं हुआ है। तथा मैं तुम्हारी सहायता करना चाहती हूँ, वेद। क्या तुम मुझे अपनी सहायता करने दोगे ?' उन्होंने अनुरोध के स्वर में कहा। मेरी अँगुलियाँ और भी अधिक घबराहट के साथ बेंच पर बजने लगीं।

'तुम्हें बचाना ही पड़ेगा,' वह कहती गईं, 'जिससे तुम घर जाकर और बहुतों की रक्षा करो।' जब मैंने पूछा कि यह रक्षा किस प्रकार की है तो वह फौरन बोलीं। उनके स्वर में बड़ी प्रसन्नता थी। उन्होंने मुझे बतलाया, 'पापों से बचने के लिए मुझे ईसाई धर्म को स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि मुझे बचाया नहीं गया तो हमेशा के लिए डूब जाऊँगा, हमेशा के लिए। हाँ, सारे हिन्दू और मुसलमान सदैव के लिए दण्डित हैं यद्यपि किसी ने भी उनकी आखें नहीं खोलीं। ईश्वर जिन्हें बचाना चाहता है उन्हें हमेशा प्रकाश दिखलाता है। क्या मैं यह नहीं समझूँ कि उनके रूप में मुझे बचाने के लिए ईश्वर ही कार्य कर रहा है ?

मेरी अँगुलियाँ अब लगातार आवाज कर रही थीं। 'बन्द करो'—उन्होंने जोर देते हुए कहा, 'इस आवाज से मेरी शिराएँ झंकृत हो जाती हैं।' मेरा हाथ हवा में ही रुक गया।

बराबर के संगीत के कमरों से कई बाजों की मिश्रित आवाजें आ रही थीं। कोई क्लारिनेट पर 'हेल्थ स्ट्रीट रैंग' की धुन बजा रहा था। पैंट बिगुल पर 'आई ऑलमोस्ट लास्ट माई माइण्ड' बजा रहा था। तथा कभी-कभी पिआनो के कुछ असम्बद्ध स्वर भी सुनाई पड़ जाते थे।

कुमारी डव्स ने मेरा हाथ पकड़ लिया, 'क्या तुम मुझे अपने लिए प्रार्थना करने दोगे ?' मैं सोच रहा था कि यह प्रश्न न पूछा गया होता तो कितना अच्छा होता ! लगा यह कमरा आवाज-बन्द क्यों नहीं है ? 'कुछ बोलो तो सही,' उन्होंने सक्रोध कहा, 'तुम कुछ बोलते क्यों नहीं ?' इसके बाद कुछ शान्त स्वर में कहा, 'मैं तुम्हारे लिए अभी यदि तुम चाहो, प्रार्थना कर सकती हूँ। समय निकल रहा है। आओ और मेरे साथ घुटनों के बल बैठ जाओ।'

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। लेकिन मैं बिल्कुल स्थिर रहा। पैंट अब 'व्हेन आई लास्ट माई बेबी, आई आलमोस्ट लास्ट माई माइन्ड' के दूसरे अवतरण

को दुहरा रहा था। यह मिश्रित आवाजें और अधिक तेज होती जा रही थीं। कोई अपने पैर पटक रहा था जिससे कमरा हिला-सा जा रहा था। पैट के बिगुल के ऊँचे स्वर ने कुमारी डब्स के कमरे की खिड़की में भी एक प्रकार का कम्पन उत्पन्न कर दिया था।

'नहीं' मैंने कहा और उन्होंने मेरा हाथ छोड़ दिया, 'इतना तो मेरे लिए बहुत अधिक है! मुझे सोचना पड़ेगा।'

'सोचना पड़ेगा,' उन्होंने फुसफुसाते हुए कहा 'सोचने योग्य है क्या?'

मुझे क्रोध आ गया था और उस छोटे-से कमरे का वातावरण असहनीय हो गया था। बाहर घण्टी ने बजकर दोपहर के खाने की सूचना दी। तथा पैट ने भी अपना अभ्यास बन्द कर दिया।

'मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगी,' श्रीमती डब्स ने अपना गला साफ करते हुए कहा, 'और मुझे विश्वास है कि ईश्वर तुम्हें प्रकाश दिखलायेंगे। तुम्हें भी प्रार्थना करनी चाहिए।' मेरे मस्तक से पसीने की एक मोटी-सी बूँद मेरे हाथ पर गिर गई। 'तुम्हें उसे पाने के लिए ढूँढना पड़ेगा, वेद।'

तभी दरवाजे पर एक थपकी लगी और स्यू अपने पियानो के अगले पाठ के लिए आ गई। मै तुरन्त ही घबराया हुआ-सा अभ्यास के कमरे से निकला और एक बार में तीन-तीन सीढ़ियों को फलाँगता हुआ नीचे उतरने लगा।

कुमारी डब्स से उस दिन मिलने के उपरान्त मै एक अजीब मानसिक परेशानी की अवस्था में बैठा रहा। हर बार जब मैं उनसे पाठ पढ़ने लिए जाता तभी गिरजाघर में ले जाकर ईसाई धर्म ग्रहण करने के बारे में पूछती थीं। मैं वाद्य बजाते हुए हमेशा उनकी लगातार रहने वाली दृष्टि को अपने पर अनुभव कर रहा था। मैं उनसे न मिलने का प्रयास करता पर वह मुझे कमरों में पकड़ लेतीं और स्वप्न में भी बार-बार दिखलाई देती थीं। मैं रात को देर तक कई-कई घण्टे तक जागकर धर्म के सम्बन्ध में सोचता हुआ बिता देता था। उस धर्म के सम्बन्ध में जिसमें पंडित लोगों ने आकर मेरे अन्धेपन के लिए मेरी माँ को उत्तरदायी ठहराया था, जैसे उन्हीं के द्वारा मेरे ऊपर यह अंधेपन की विपदा लाई गई हो, उस धर्म के बारे में जिसने रामसरन और कासिम अली को परस्पर एक दूसरे का गला काटने के लिए प्रेरित किया और अब जिसने कुमारी डब्स को मेरा धर्म परिवर्तन कराने के लिए एक एजेन्ट के रूप में भेजा था। मुझे आश्चर्य होता था,

आखिर यह परिवर्तन कहाँ से कहाँ होना है और सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि हर आदमी यही समझता है कि उसी का रास्ता ठीक है और उसमें कोई गलती नहीं है।

श्री चाइल्स ने 'रे' को समझाते समय विभिन्न प्रोटेस्टेन्ट नामों की उपमा एक वृत से दी थी, 'यह ठीक वैसा ही है जैसे कुछ व्यक्ति एक ही वृत की परिधि में खड़े होकर उसके केन्द्र पर पहुँचना चाहें। लेकिन उनके वहाँ पहुँचने के मार्ग अलग-अलग हों।' क्या इस प्रकार की तुलना विभिन्न धर्मों के लिए नही हो सकती ?

'रे' ने श्री चाइल्स का यह विश्लेषण स्वीकार नहीं किया, 'सभी रास्ते ठीक नहीं हो सकते। कुछ निश्चित रूप से गलत होंगे,' उसने कहा था। वह एक गिरजे में उपदेशक था।

एक दिन दोपहर के बाद, उस पियानो के पाठ के कुछ ही दिन बाद, हममें से कुछ पेयों के स्टाल के पास खड़े हुए ठण्डे पेय पी रहे थे। मोटा चार्ली कोक के डिब्बे लाने में आथर की सहायता कर रहा था।

'ईश्वर इसे गारत करे', चार्ली ने डिब्बा रखते हुए कहा, 'इसने मेरी पेंट खराब कर दी।'

'श्···श्···श्···श्' दूसरे ने फुसफुसाते हुए धीरे से कहा, 'अपना ध्यान रखो बैल ! याद रखो कि तुम लड़कियों के बीच में खड़े हो।'

चार्ली ने इसका उल्लंघन करते हुए कुछ अपशब्द कहे, लेकिन अधिक संयत भाषा में। मेरे विचार से उसके इन शब्दों को बहुत थोड़े लोगों ने ही सुना। तभी अचानक कुमारी डव्स ने काँपती हुई आवाज में कहा 'चार्ल्स' और वहाँ एकदम शान्ति छा गई, मानो लड़के आपस में लड़-झगड़ रहे हों और एकाएक मास्टर वहाँ आ गए हों।

'चार्ल्स तुम···तुमने कल ही यह वचन दिया था' उनका स्वर तेज हो गया, 'मैं यहाँ इस स्कूल में किसलिए हूँ ?'

इसके बाद मैंने कुमारी डव्स के ऊँची एड़ी के जूतों की, उनके तेज कदमों से संगीत कक्ष की ओर हाल में से होते हुए जाने की आवाज सुनी। हर एक उनके जाने की आवाज के खत्म होने के बाद भी शान्त रहा। इसके बाद अचानक ही, 'क्या हो गया ?' 'इनको क्या हो गया।' 'बैल तुमने क्या किया ?' तथा और

बहुत-सी आवाजें आने लगीं। इन सब प्रश्नों के दबाव के बाद भी चार्ली कुछ नहीं बोला और एक झटके के साथ दरवाजे को बन्द करता हुआ चला गया।

'मुझे आश्चर्य होता है इस बुढ़िया को क्या हो गया ?' विशालकाय जिम ने कहा।

'ईश्वर जानता होगा', अरनेस्ट ने उत्तर दिया तथा दूसरे लड़के बोले, 'यह स्कूल में अभी नई-नई आई है। सम्भवत: अंधे लड़कों से उन्हें अपनी सामर्थ्य से अधिक कष्ट होता हो।'

चार्ली को रात भर नींद नहीं आई।

'तुम इतने शान्त कैसे हो चार्ली ?' जिम ने जोर देकर पूछा।

'तुमने क्या वचन दिया था ?' अरनेस्ट ने कहा।

जब हाल में सब लड़के सो रहे थे तो चार्ली को दोपहर बाद की गूढ़ अर्थों वाली घटना को बताने के लिए बाध्य किया गया।

'देखो' चार्ली ने कहना प्रारम्भ किया, 'कल मेरे संगीत के पाठ के समय कुमारी डक्स ने मुझसे पूछा, क्या तुम एक अच्छा ईसाई जीवन व्यतीत करते हो तथा इस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या धारणा है ?—मैं इसका क्या उत्तर देता ?'

कुछ लड़के तो हँसे तथा दूसरों ने चार्ली को स्कूल भर में सबसे खराब ईसाई होने का उलाहना दिया। क्योंकि वह हर एक अंधे लड़के को नहीं बताता था कि उसके कपड़ों का रंग ठीक है या नहीं। कुछ देर बाद लड़कों ने चार्ली से आगे बतलाने के लिए कहा।

'मैंने उनसे कहा, नहीं। उन्होंने मुझे नर्क की अग्नि में जलने के बारे में व्याख्यान दिया और इसके बाद मुझे घुटनों पर झुकाया और मेरे साथ झुककर उन्होंने मेरी आत्मा की शान्ति तथा बुद्धि के लिए प्रार्थना की। इसके बाद कुछ देर तक शान्ति रही। 'मैं क्या कर सकता था ?' चार्ली ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा। 'काश यदि कहीं तुम उन्हें वहाँ देख सकते। उनका मुख गम्भीर और शान्त हो गया था। वह मेरे लिए निरन्तर प्रार्थना कर रही थीं।' उसने फिर से कहना आरम्भ किया, 'मैंने वचन दिया कि किसी को अपशब्द नहीं कहूँगा तथा कभी भी गलत रूप में ईश्वर का नाम नहीं लूँगा और भी बहुत कुछ। स्टैन्ड पर खड़े हुए भी मेरा तात्पर्य किसी को भी अपशब्द कहने का नहीं था, लेकिन बस शब्द मुख से अनजान ही में निकल पड़े।'

मोटे चार्ली के बड़े डीलडौल वाले शरीर के साथ कुमारी डव्स के सुन्दर-सुकोमल शरीर की कल्पना मेरे मस्तिष्क पर खिंच गई तथा चार्ली के स्थान पर अपनी कल्पना करने में भी मुझे बहुत अधिक समय नहीं लगा। एक लड़के के इस पर आश्चर्यमय ढंग से हँसने पर सब बड़े जोर से हँस पड़े। लेकिन मैं इस हँसने में उनका साथ नहीं दे सका क्योंकि मैं स्वयं भी इसी प्रकार का अनुभव प्राप्त कर चुका था। मैं सोच रहा था कि उस कमरे में उपस्थित कितने लड़के और थे जो कुमारी डव्स के साथ इसी प्रकार का अनुभव प्राप्त कर चुके थे और क्या वे लोग अब हँस रहे थे।

'लड़को।' विशालकाय जिम ने कहना शुरू किया तथा लड़कों की हँसी अब कुछ मन्द पड़ गई। 'कुमारी डव्स के धार्मिक कार्यों की अब हमारे स्कूल में इतिश्री होने वाली है, क्योंकि उनके कार्यों की सूचना श्री वूली को अवश्य मिल जाएगी।'

'उन्हें सूचना जरूर मिलेगी' अरनेस्ट ने कहा।

'लेकिन श्री वूली भी पियानो के पीछे होने वाली पवित्र प्रार्थना-सभाओं को नहीं रोक सकते', आथर ने कहा।

वसन्त ऋतु आ गई थी और घास के कोमल तन्तुओं से तथा नव प्रस्फुटित पुष्पों से एक अनोखी मनोहर भीनी-भीनी सुगन्ध निकलकर चारों ओर वायुमंडल में फैल रही थी। शायद श्री चाइल्स की कक्षा के अतिरिक्त जूनियर हाई स्कूल तथा हाई स्कूल की सारी कक्षाएँ बन्द हो चुकी थीं। क्योंकि गर्मी के कारण बाहर का तापमान एक सौ बीस डिग्री हो गया था, जैसा लाहौर में हो जाता था और इतनी गर्मी में पढ़ना असम्भव था। वास्तव में वह वसन्त बिल्कुल मामूली था और जो कुछ भी वातावरण में गर्मी थी वह राजनीति के कारण थी, स्कूली राजनीति के कारण।

चाहे तो यह इसलिए हो कि हमारा संविधान नया था, चाहे राजनीति के द्वारा बहुत-सी नवीन समस्याओं को पुरानी समस्याओं के साथ नत्थी कर दिया गया हो, जो स्कूल की सामान्यतः बातचीत का विषय होती थी। विद्यार्थी और अध्यापक सभी समान रूप से इसमें इस प्रकार भाग ले रहे थे जैसे यह कोई राष्ट्रपति का निर्वाचन हो। जो वास्तव में कुछ व्यक्तियों के लिए केवल कुछ सम्मानप्रद ही था तथा कोई इनके लिए अधिकारों का प्रदाता नहीं था। चाहे मैं लाकर रूम में जाऊँ, लान में जाऊँ, अथवा सोने के कमरे में जाऊँ सभी स्थानों पर लड़के धीरे-

धीरे कानाफूसी करते रहते थे तथा अन्दर जाने से पहले सदा ही मुझे अपना गला जोर से साफ करना पड़ता था जिसमें मैं उनकी बातें छिपकर न सुन सकूँ। अन्धे व्यक्ति अपनी बातें इस प्रकार सुना जाना घृणित समझते हैं। इस तथ्य को मैं भली भाँति जानता था। जब कभी मैं अपने गले को भली प्रकार साफ नहीं करता था तो बहुत-से असहनीय और कठोर वाक्यों की मेरे ऊपर बौछार हो जाती थी यद्यपि केनेथ ने कहा था, 'यदि तुम अपनी आलोचना नहीं सुनाना चाहते तो तुम्हें इस राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए।' ऐसा लगता था जैसे ये लोग जान-बूझकर दोनों ओर समान भार वाले मुदगर मेरे पैरों पर फेंक रहे हों।

'आह ! क्या तुम नहीं जानते कि जेन इतनी बड़ी है कि उसकी माँ के समान लगती है तथा उसके साथ घूमने का उसका तात्पर्य लड़कियों के मत प्राप्त करना है।' कमरे में प्रवेश करते हुए मैंने बिल्ली को 'जो' से यह कहते हुए सुना, 'तुम उसके पक्ष में मतदान करना नहीं चाहते?'

तथा शिष्ट और सभ्य 'जो' परेशान-सा कह रहा था, 'हे ईश्वर ! मैं नहीं समझता मैं क्या करूँ। आथर तथा वेद दोनों ही अच्छे तथा हँसमुख लड़के हैं।'

और मैं ! क्योंकि स्वयं उम्मीदवारों में से था अतः किसी की बात नहीं सुन सकता था। इसीलिए मैं अपनी जीभ दाँतों से दबाकर निराश-सा तेजी से चल दिया।

और जब से जेन के सम्बन्ध में मैंने दो बार से अधिक इस प्रकार के लांछन सुने थे, मेरी नींद हराम हो गई थी। मै अब सोच रहा था कि क्या ही अच्छा होता यदि मैं कहीं इस निर्वाचन में उम्मीदवार के रूप में खड़ा ही न होता।

जब हम स्नानघर में थे तो केनेथ ने पूछा, 'तुम्हें क्या तकलीफ है ?'

'जेन के बारे में' मैंने कहा, 'क्या ही अच्छा होता यदि वे उसे न घसीटते।'

'उसकी कितनी आयु होगी ?' उसने पूछा।

'तुम भी ऐसा मत कहो, केनेथ। यदि तुम विश्वास करो तो...'

'लेकिन मैं तुम्हारा प्रचार प्रबन्धक हूँ। तुम मुझे गुप्त बातें बतला सकते हो,' उसने कहा।

मैंने अपनी जीभ इतने जोर से काटी कि वह दर्द करने लगी। 'केनेथ', मैंने कहा, 'मैंने जेन के साथ घूमना उस समय ही शुरू कर दिया था, जिस समय मेरे मस्तिष्क में चुनाव लड़ने का विचार भी नहीं आया था। यह सब ठीक नहीं है।'

'लेकिन उसकी उम्र कितनी है ?' उसने जोर दिया।

'यह न तो उसने कभी बतलाया और न ही मैंने कभी पूछा है।' मैंने उदास होकर उत्तर दिया। उस दिन मुझे मालूम हो गया कि मुझे जेन से उसकी आयु पूछनी पड़ेगी, और मैं सोच रहा था कि कैसे उससे पूछूंगा।

जेन मेरी कक्षा में थी और उसी वर्ष के प्रारम्भ में स्कूल आई थी। वह शर्मीले और शान्त स्वभाव की थी तथा अपने सभी पाठ याद कर लेती थी और अपने से पूछे गए हर एक प्रश्न का उत्तर देती थी। लड़कों का कहना था कि उसके इतना अधिक कुशल होने का कारण यह था कि वह मोटे अक्षरों वाली छपाई पढ़ लेती थी तथा उसकी तुलना में स्वभावतः ब्रेल बहुत धीरे पढ़ी जाती थी। आथर एक बार उसे घुमाने के लिए ले गया था लेकिन फिर उसने बन्द कर दिया। कारण सम्भवतः यह था कि वह कुछ बोलती नहीं थी।

एक बार मैं अपनी अंग्रेजी की कक्षा में शीघ्र ही चला गया था तभी मैंने सुना कोई निरंतर पृष्ठ उलटे जा रहा है।

'कौन है' मैं चौंककर बोला।

'मैं हूँ' वह बोली और फिर एक-दो क्षण के लिए पूर्ण नीरवता रही। 'तुम्हारी भारत से एक चिट्ठी आयी है', वह बोली, 'कहो तो, मैं इसे पढ़कर तुम्हें सुना दूं।'

उसी समय मेरा चेहरा लाल हो गया। यह वास्तव में बड़ा भद्दा-सा लगता था कि अपने घर के पत्र दूसरों से पढ़वाये जाएं। हमेशा ही मुझे पत्र मिलते थे जिन्हें मैं कई-कई दिनों तक अपने पास ही रखा करता था। मैं हाउस-मास्टर से अपने पत्र जोर-जोर से लड़कों के सम्मुख नहीं पढ़वाना चाहता था, जैसा वह कई लड़कों के पत्र पढ़ने में करते थे।

'यदि आप चाहें तो···' मैंने कहा और उसकी ओर हिचकिचाते हुए पत्र बढ़ा दिया। यह मेरे छोटे भाई अशोक का पत्र था तथा उसने मेरी पढ़ाई के लिए रुपये बचाने के लिए नया जूता न पहनने का निश्चय किया था।

'मैंने कभी तुम्हें अपने घर तथा परिवार के सम्बन्ध में बातें करते नहीं सुना' जेन ने पूछा।

उसी समय लुइस आ गया और हमारी बातचीत बन्द हो गई। उस दिन से हमने शनिवारीय नाच में साथ-साथ जाना प्रारम्भ कर दिया। यह अच्छा ही

हुआ कि स्क्वेयर नृत्य में जिनका चुनावों से एक माह पूर्व ही आयोजन किया गया था, ले जाने के लिए एक साथी मिल गया।

'तुम सब ऊपर-नीचे कूदते हो। अपने साथी को गोलाई में घुमाओ।' मिस हारपर माईक पर बोल रही थीं। मेरे चारों ओर पैरों की निरन्तर आवाजें उठ रही थीं। कुछ ऐसे बिल्कुल अन्धों की आवाजें आ रही थीं, जिनका अपने साथियों के साथ प्रथम ही अवसर था। जोर-जोर से हाँफने तथा तेजी से साँस लेने की आवाजें आ रही थीं। मिस हारपर और अधिक तेजी से बोलती जा रही थीं।

'अब, मिस हारपर ! हम तेजी से नाच सकते हैं' केनेथ चिल्लाया। और मिस हारपर ने धीमे स्वर में कहा, जिससे संगीत की ताल में कोई विघ्न न हो, 'लड़के और लड़कियों, क्या तुम ऐसा कर सकते हो ?'

'हाँ, हम कर सकते हैं' समस्त नाचने वालों ने उत्तर दिया तथा मिस हारपर और अधिक तेजी से बोलने लगीं तथा क्रम यहाँ तक बढ़ा कि शब्दों को समझना भी कठिन हो गया। मैं अब उनकी आवाज बिल्कुल नहीं सुन रहा था तथा केवल ताल-क्रम के आधार पर स्वाभाविक रूप से विभिन्न स्थितियों में नाच रहा था। मैं चाहता था, वह स्क्वेयर नाच कभी भी समाप्त न हो तथा सारी रात, उससे अगले दिन, और उससे अगले दिन भी मैं इसी प्रकार नाचता रहूँ। मै जेन की आयु नहीं जानना चाहता था। इसका कारण मैं स्वयं नहीं जानता था। मुझे लग रहा था, मानो मै नहीं नाच रहा हूँ बल्कि मेरे नीचे का फर्श नाच रहा है।

'टैक्सास स्टार' एक आवाज आई। और जैसे ही हमने नाच समाप्त किया, केनेथ का सिर लुइस से टकरा गया तथा सबके सब तुरन्त रुक गये। ऐसा लगा जैसे वह पटरा जो जिमनाजियम को घुमा रहा था, किसी ने एकदम बिना कोई सूचना दिये रोक दिया हो। यद्यपि फर्श अभी भी घूम रहा था, क्योंकि गति इतनी अधिक थी कि उसे तुरन्त रोकना सम्भव नहीं था।

'ओह मुझे कितने चक्कर आ रहे हैं', पैट ने कहा।

'अच्छा तो अब हम तनिक विश्राम कर लें', मिस हारपर ने कहा।

तुरन्त ही पानी के फव्वारे पर भीड़ लग गई। 'आओ, जेन', मैंने कहा, और हम कमरे के पीछे पंचिग बैग की ओर चल दिए। 'तुम्हारी आयु कितनी है ?' मैंने अचानक पूछा तथा तुरन्त ही उसने मेरा हाथ छोड़ दिया जैसे उसे कोई बिजली का धक्का लग गया हो।

'क्यों' उसने पूछा।

'मै जानना चाहता हूँ' मैंने कहा।

'देखो, बहुत दिनों तक···' उसने मेरे ख्याल से टालते हुए कहना प्रारम्भ किया।

'ग्रायु, कृपाकर ग्रायु बतलाग्रो', मैंने फिर दलील दी।

'सत्ताइस वर्ष', उसने साहस बटोर कर कहा।

तभी ऐसा लगा जैसे ग्रचानक ही फर्श फिर से चलने लगा हो।

हम ग्रब तक पंचिंग बैंग के पास पहुँच गए थे। 'कोई नहीं जानता', वह कहती रही, 'मैं इसे केवल ग्रपने तक ही सीमित रखना श्रेयस्कर समझती थी।' मैं पंचिंग बैंग को जोर से दबाना चाहता था लेकिन मैंने ग्रपनी जबान दाँतों के नीचे दबा ली। 'मैं यह बात भली प्रकार हर समय जानती थी कि हमारा सम्बन्ध बहुत ग्रधिक समय तक नहीं चलेगा, लेकिन तुम कभी-कभी इतने ग्रकेले दीखते हो कि मैं तुम्हारी बहन बनना चाहती थी' उसने कहा।

मैंने धीरे से ग्रौर नम्रता से उसका हाथ दबाया ग्रौर उसको लड़कियों के कक्ष की ग्रोर ले चला।

निर्वाचन का दिन था। मैंने ग्रपना सिर तकिए में छिपाकर ग्रपने दोनों ग्रोर से ग्राने वाली ग्रावाजों को न सुनने का प्रयास किया। मैं सब कुछ भूलकर एक गहरी नींद की ग्राकांक्षा कर रहा था। मैं उससे लिपट गया जैसे उन ग्रावाजों के शोर में ग्रौर घण्टियों की ध्वनियों के तूफान में वही एकमात्र जमीन थी। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई मेरा बिस्तरा समेट रहा है तथा एक ग्रष्ट भुजा वाले जन्तु के हाथ चारों ग्रोर से साँस लेने के कारण फैलने ग्रौर संकुचित होने वाले मेरे शरीर के चारों ग्रोर से लपेट रहे हैं।

'उठो, जागो', बहुत-सी ग्रावाजों की ध्वनि हुई, 'निर्वाचन में तुम्हारी विजय निश्चित है।'

ग्रब तक बिस्तर बिल्कुल फर्श पर गिर चुका था ग्रौर 'मैंक' सारी बातें विस्तार से इस प्रकार समझा रहा था जैसे वह कोई ग्रत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना हो।

'ग्राथर तथा कुछ ग्रन्य लड़के, जिनके बारे में हम नहीं जानते' वह तेजी से बोल रहा था, 'नीचे वाली मंजिल में गए ग्रौर उन्होंने भाप के नलों को चलाना

प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने भाप के नलों को इतने जोर से चलाया, जिससे सोने के कमरे में सोने वाले सभी लोग उठ गए। आर्ली और जैक ने भाप के पाइप के शोर मचाने पर भी तुम्हारे पक्ष में लड़कों के सम्मुख व्याख्यान दिए। उन्होंने कहा, आथर प्रतिनिधित्व करने योग्य नहीं था। एक ऐसा लड़का जो सबको परेशान करने का साहस करता हो, किस प्रकार उचित प्रतिनिधित्व कर सकता था और मैं तुम्हें यह बतलाए देता हूँ कि तुम्हारी विजय निश्चित है। हर लड़का जो उस समय जाग रहा था, शत प्रतिशत तुम्हारे पक्ष में था।'

'मैं राजनीति से घृणा करता हूँ' मैंने कहा। 'भाप के नल और सारी चीजों को घृणा करता हूँ।'

'यह अमेरिका है और तुम एक जनतन्त्र देश में रहते हो। इसके अतिरिक्त मेरे विचार से तुम राजनीति को पैरों के रूप में अपनाना चाहते हो, अतः तुम्हारा मन अब से कहीं अधिक मजबूत होना आवश्यक है।' केनेथ ने कहा।

'मैं राजनीति से भर पाया!' मैं बोला।

शाम तक जब ब्रेल चुनाव पत्र गिन लिए गए, मैं दो तिहाई मत प्राप्त कर चुका था और विद्यार्थी वर्ग का नया अध्यक्ष बन चुका था। सबसे पहले आथर मेरे पास आया। अपने बालों से भरे हुए बलिष्ठ हाथ को मेरे चारों ओर लपेट कर तथा अपने मुख का तम्बाकू मेरे कन्धे के ऊपर से थूककर उसने मुझे हार्दिक बधाई दी। जैसे मैं उसका कोई बहुत दिन से खोया हुआ भाई मिल गया था।

'एक वास्तविक अर्कन्सास-वासी!' लड़के कहा करते थे, 'ओजार्क्स के समान सुदृढ़ तथा सर्वश्रेष्ठ पर्वतारोहियों के समान हँसमुख।'

'तुम्हें ही चुनाव में जीतना चाहिए था', मैंने कहा, 'यही मेरी हार्दिक इच्छा थी।'

'जीतकर हारे हुए प्रतिद्वन्द्वी के लिए पश्चात्ताप प्रकट करना जनतन्त्र का एकाधिकार तथा विशेषता है।' उसने कहा।

'लेकिन भाप के नल, आथर' मैंने कहा।

'कोई चिन्ता नहीं। वह कार्य मैंने जान-बूझकर किया था। मैं चाहता था कि तुम्हारी विजय हो।'

हम पहले से गहरे मित्र थे लेकिन उस दिन के बाद हम अभिन्न हो गये।

पंक्तियों के बीच में २३

दिन बीतने के साथ-साथ मैं अमेरिका की बोलचाल की विशेष भाषा के बहुत-से नये शब्द सीखता गया। जो कुछ मैं घर पर था तथा अब जो कुछ मैं बनता जा रहा था, उसमें अन्तर बढ़ता गया और कभी-कभी चिन्तित अवस्था में ऐसा प्रतीत होता था जैसे यह अन्तर कभी भी नहीं कम होगा। घर से हमेशा ही पत्र आया करते थे, लेकिन ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह सभी एक अल्प पारदर्शक लिफाफों में बन्द होकर आते हैं। घर पर सब यही समझते थे कि मैं प्रत्येक अवसर का पूर्ण लाभ उठा रहा हूँ। सभी लोग मुझे देखने को लालायित थे तथा मैं हमेशा उनके विचारों में रहता था। बार-बार मुझे अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने का निर्देश दिया जाता था। यदा-कदा हमारे किसी न किसी सम्बन्धी के यहाँ एक न एक नए बच्चे के जन्म की सूचना भी मिलती रहती थी। कभी-कभी किसी दूर के सम्बन्धी के विवाह का समाचार भी मिलता था। कभी कोई समाचार हमारे ही परिवार के सम्बन्ध में होता था जैसे उम्मी बहन का लेफ्टिनेंट गौतम के साथ विवाह का समाचार। उसने मुझे लिखा था कि भारत प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है क्योंकि वह श्री गौतम से सर्वप्रथम बम्बई में स्वयं ही मिली थी। तथा उसके कथनानुसार इसमें किसी सम्बन्धी ने मध्यस्थ का कार्य नहीं किया था। अम्मा ने कभी कोई पत्र प्रेषित नहीं किया क्योंकि वह अंग्रेजी नहीं जानती थीं तथा अर्कन्सास में कोई व्यक्ति हिन्दी नहीं पढ़ सकता था। जब कभी भी मुझे इस तथ्य का ध्यान आता था तभी मैं अर्कन्सास आने के लिए बहुत उदास हो जाता था। वहाँ रहने की अपनी लम्बी अवधि में मैं किसी भी भारतीय से नहीं मिला और न ही मुझे कभी अपनी मातृभाषा हिन्दी अथवा पंजाबी बोलने का सुयोग प्राप्त हो सका।

इन साधारण समाचारों के बीच में कभी-कभी कोई ऐसी भी पंक्ति आ जाती थी जिससे मुझे अमेरिका में रखने के लिए परिवार के द्वारा किए गए त्याग का

आभास होता था । अशोक ने मेरी पढ़ाई के लिए अभी तक जूता नहीं खरीदा था और उम्मी बहन के दहेज की भी पाम बहन के दहेज से कोई तुलना नहीं थी । मेरे घर छोड़ने के पश्चात् होने वाले भारतीय रुपए के अवमूल्यन ने परिवार की आर्थिक स्थिति पर बड़ा विषम प्रभाव डाला था । पिताजी ने लिखा था कि वह अपने खोए हुए घर के लिए कुछ मुआवजा पाने की कोशिश में हैं । भारतीय सेवा से अवकाश ग्रहण करने की आयु की सीमा पचपन वर्ष पूर्ववत् निश्चित थी । हाँ, अगर सरकार को किसी की सेवाओं की नितान्त आवश्यकता हुई तो एक वर्ष का समय और बढ़ाया जा सकता है । उनके इस बढ़ाए हुए कार्यकाल की समाप्ति का समय भी अब निकट ही आ गया था तथा उनकी बेकारी का प्रारम्भ भी शीघ्र ही होने वाला था । यद्यपि अभी ओम् भाई, ऊषा, अशोक तथा मैं स्कूल में ही पढ़ रहे थे ।

घर पर सभी मेरी पढ़ाई के बारे में जानना चाहते थे । मैं इन्हें यह नहीं लिख सकता था कि कभी-कभी हम कक्षा में ही ताश भी खेलते थे । जिसमें विभिन्न रंगों के लिए फ्रांसीसी शब्दों का प्रयोग करके विदेशी भाषा सीखने का बहाना करते थे । तथा कभी कक्षा में एक भी पृष्ठ पढ़े बिना कई-कई दिन व्यतीत हो जाते थे । मैं केवल श्री चाइल्स की कक्षाओं के सम्बन्ध में लिखता था, जहाँ हमें प्रतिदिन घर का काम नियमित रूप से मिलता था, तथा जहाँ घण्टा प्रत्येक व्यक्ति को दिये गये कार्य पर विचार-विमर्श करने में बीतता था ।

उन्हें अर्कन्सास के समाचारपत्रों के वे सभी अंश जिनमें मेरे कार्यों के समाचार छपते थे, मैं भेज देता था । जैसे मैं कोई ऐसा नमूना था जिसके विकास और वृद्धि की अर्कन्सासवासियों के लिए खास अहमियत थी । ये कतरनें तथा उन समितियों के बहुत-से पत्र जो मुझे भारत के सम्बन्ध में व्याख्यान देने के लिए प्रभावित करती थीं, मेरे परिवार के सदस्यों और अन्य सम्बन्धियों के द्वारा बड़े चाव से पढ़े जाते थे । यद्यपि सामान्यतया मुझे इन समाचारपत्रों द्वारा अपने कारनामों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखने पर असंतोष ही होता था । कई बार तो इन आयोजनों में बोलने से, जहाँ सभी मुझे भारत के सम्बन्ध में एक अन्तिम तथा अत्यधिक विद्वान् के रूप में देखते थे, मैं घबराया था । लेकिन मेरे परिवार के लोग इन समाचारों की कतरनों को तथा पत्रों को देखकर ही मेरी सफलता

समझ लेते थे। अपने भय को मैं दस हजार मील दूर अपने आत्मीयों से व्यक्त नहीं कर सकता था।

अपने बगल के कमरों में रहने वाले सहपाठियों तक को अपनी यह कठिनाई बतलाने में मुझे संकोच होता था। उनके लिए तो मैं एक पन्द्रह-सोलह वर्ष का लड़का था जिसका विचरण-क्षेत्र बचपन मे एक सीमित चहार दीवारी के बाहर नहीं था। मैं उनमें से ही एक बनना चाहता था जो कुछ ही सप्ताह में मैं बन भी गया। लेकिन ऐसा करके मैंने अपनी बहनों पाम, उम्मी, निम्मी, ऊषा तथा भाइयों ओम् और अशोक के सम्बन्ध में तथा भारत-पाक सीमा के आए दिन के झगड़ों के सम्बन्ध में बातें करने की सम्भावना को समाप्त कर दिया। यद्यपि घर के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का कोई उपाय मेरे पास नहीं था, फिर भी घर की मेरी याद दिन-प्रतिदिन प्रबल होती गई। उम्मी बहन का विवाह, ओम् भाई का एक हजार मील दूर तक स्कूल में पढ़ने जाना, निम्मी बहन को घर छोड़कर नौकरी करना, इन सब घटनाओं से मैं समझ गया था कि पिंडी और लाहौर का पारिवारिक जीवन क्षत-विक्षत हो रहा था। यहाँ तक कि अशोक भी एक छात्रा-वास में रहने लगा था। पिताजी ने लिखा था, 'अब वे खाने की मेज वाले स्कूल नहीं रहे तथा पहाड़ भी हमारे लिए नहीं रहे।'

रात के लम्बे घण्टों में, जब एकान्त में स्मृतियों के परदे पर अतीत की घट-नाएँ उभरती रहतीं, घर से आने वाले पत्रों में और उन्हीं जैसा हमारे परिवार की समृद्धि का यह परिवर्तन मेरे लिए उस डौरमीटरी के जीवन में असहनीय हो जाता, जहाँ स्नानागार तक में भी कोई गोपनीयता नहीं थी।

पर रात्रि के ये नीरव तथा सुनसान क्षण पर्याप्त नहीं थे। अभी भी मुझे कम से कम एक व्यक्ति का सहारा लेना ही पड़ता था। यह श्री चाइल्स थे, जिन्हें लड़के 'फादर कन्फेसर' तथा फैकल्टी में जिन्हें 'चलता-फिरता विश्वकोष' कहा जाता था। इन्हीं पर अब मेरी आशाएँ केन्द्रित थीं।

एक दिन समाज शास्त्र की कक्षा में मेरे स्कूल-प्रवेश के कुछ सप्ताह बाद मुझे श्री चाइल्स की आवाज असाधारण रूप से तेज लगी। 'क्या तुम बहरे हो गए हो वेद? तुम मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देते?' मुझे ठीक उस प्रकार लगा जैसे पिताजी ने बिना बात ही मेरे एक जोरदार तमाचा रसीद कर दिया हो।

'रे, क्या वह सो रहा है ?' श्री चाइल्स ने सक्रोध पूछा।

'नहीं श्रीमान्।' रे ने उत्तर दिया।

इसके बाद मैंने अधिक संयत स्वर में सुना यद्यपि उससे अभी भी कुछ क्रोध झलक रहा था, 'मेरे विचार से यह अच्छा रहेगा वेद, तुम चिकित्सालय में जाकर अपने कानों की परीक्षा करा लो।' उस समय, समस्त कक्षा के समक्ष अपमान के क्षणों में मैंने श्री चाइल्स के व्यहार को पसन्द नहीं किया और मेरी अवस्था उस बच्चे के समान हो गई जो दुर्व्यवहार के कारण अपने पिता से विद्रोह करने के लिए व्यग्र हो उठता है। श्री चाइल्स ने प्रश्न 'रे' से पूछ लिया तथा शेष घण्टे में मुझे अनदेखा कर दिया। उस सारे समय मै यही सोचने की कोशिश करता रहा—आखिर हो क्या गया। 'तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया?' स्वभावत: प्रश्न यह था। लेकिन वास्तव में मैंने प्रश्न सुना ही नहीं था। मैं इतना अधिक क्या सोच रहा था ? क्या मैं घर की स्मृतियों में खो गया था ? सो तो मै निश्चित रूप से नहीं रहा था। कक्षा के समाप्त होने पर मै रुककर यह प्रतीक्षा करता रहा कि श्री चाइल्स सम्भवत: खेद भी प्रकट करे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, जो मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने यह निश्चय किया कि फिर कभी उनसे नहीं बोलूँगा और भावनाओं के प्रवाह में बहता हुआ मैं वापस योग से लड़ते हुए मेहता गली में पहुँच गया। मैं सक्रोध उससे यह कह रहा था, 'कुट्टी। अब मैं तुम से कभी नहीं बोलूँगा।' मैं अब उस बच्चे के समान और भी अधिक अपमानित अनुभव कर रहा था जो अपने को पूर्ण वयस्क समझता हो किन्तु वास्तव में एक बच्चा ही हो।

बाद में 'रे' ने मुझे बतलाया कि श्री चाइल्स ने मुझसे एक प्रश्न एक बार नहीं, तीन बार पूछा था और हर बार उन्होंने मेरा नाम लेकर कहा। 'कहाँ खोए हुए हो, वयोवृद्ध ?' 'रे' ने मुझसे हँसते हुए पूछा तथा मैं 'रे' को यह विश्वास नहीं दिला सका कि न तो मैंने प्रश्न को सुना था और न ही अपने नाम का पुकारा जाना। मैं तुरन्त ही श्री चाइल्स की खोज में निकल पड़ा तथा उन्हें स्वागत-कक्ष के छोटे-से कमरे में पियानो बजाते हुए पाया। लेकिन अध्यापकों की भीड़ के कारण जो पियानो के चारों ओर एकत्र हो रहे थे, मैं उनसे मिल नहीं सका। लेकिन फिर भी मैं वहीं ठहर गया और जब उन्होंने बजाना समाप्त कर लिया, मैंने हिचकिचाते हुए उनसे क्षमा याचना की और उन्हें बतलाया कि मुझे अपनी मानसिक स्थिति को यथावत् करने का कोई अवसर नहीं मिला। मैं उनका प्रश्न सुन ही नहीं सका,

और जिस सौजन्यता तथा निष्कपटता के साथ उन्होंने मेरी क्षमा प्रार्थना को स्वीकार कर लिया तथा अपनी सख्ती पर खेद प्रकट किया उसने हमारी मित्रता के बन्धन को हमेशा के लिए मजबूत बना दिया। उस दिन से मैं उनका विश्वासपात्र बन गया और वह अमेरिकन राजनीति की जटिलता को मुझे समझाने लगे जो मेरी समझ में नहीं आती थी अथवा जिन्हें वह अमेरिका का मस्तिष्क कहते थे।

एक दिन मैंने उन्हें बतलाया कि अमेरिका में मैं जिन विद्यार्थियों से मिल रहा हूँ वे भारतीय विद्यार्थियों की तुलना में कम आयु के हैं।

'हमारा देश आयु में छोटा और आराम पसन्द है।' वह बोले, 'जहाँ जनता अपने को अधिक समय तक बचपन की स्थिति में रख सकती है। लेकिन जब एक बार उनके ऊपर उत्तरदायित्व डाल दिया जाता है तो उनका विकास बहुत शीघ्र होता है। किसी व्यक्ति को मेरे कथन की सत्यता को समझने के लिए एक अमेरिकन लड़की को विवाह के पूर्व तथा विवाह के पश्चात् देखना चाहिए। अमेरिकन यदि एक ओर खूब खेलते हैं तो दूसरी ओर परिश्रम भी खूब कड़ा करते हैं।'

विद्यार्थियों में यह बात खूब मजे से कही जाती थी कि श्री चाइल्स किस अध्यापिका के साथ विवाह करेंगे। यह एक तथ्य था कि जिस अध्यापिका का आदर लड़के श्री चाइल्स से कम करते थे, वही उनकी भावी पत्नी के रूप में गिनी जाती थी। सर्वप्रथम यह दर्जा कुमारी हारपर को मिला था, उसके पश्चात् कुमारी विल्सन तथा कुछ समय के लिए कुमारी ग्रीन का नाम भी लिया गया। लेकिन जब इन सबने अपना विवाह करके स्कूल छोड़ दिया तो दूसरी सुन्दर और लोकप्रिय अध्यापिकाओं ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया। मेरे विचार से लड़कों के इस विश्वास का कारण उनकी श्री चाइल्स को विवाहित रूप में देखने की इच्छा थी तथा आर्ली के कथनानुसार एक अन्धे व्यक्ति को विवाहित रूप में देखकर सबसे अधिक प्रसन्नता होती है। क्योंकि अन्धे व्यक्तियों के लिए विवाह नेत्रवान व्यक्तियों से कहीं अधिक आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त श्री चाइल्स के लिए विद्यार्थियों के मन में अधिक सहानुभूति तथा श्रद्धा थी। इसका कारण एक तो यह था कि वह इने-गिने अन्धे अध्यापकों में से थे तथा स्कूल के एकमात्र ग्रेजुएट अध्यापक थे। समस्त विद्यार्थी वर्ग के लिए वह एक उदाहरणस्वरूप थे तथा अपने विद्यार्थियों के प्रति बर्ते गए व्यवहार में अत्यधिक नम्र थे जिसके कारण विद्यार्थियों की नजरों में स्वभावत: उनका सम्मान

बहुत अधिक बढ़ गया था। इसके अतिरिक्त वह उन इने-गिने ग्रेजुएटों में थे जो स्कूल के प्रारम्भ से ही वहाँ थे तथा जिन्होंने अपनी शिक्षा को और आगे बढ़ाया था और एम० ए० भी किया था।

श्री चाइल्स की भावी पत्नियों की कल्पना करके ही सन्तुष्ट न रहकर विद्यार्थियों के कल्पनाशील मस्तिष्क अब उन्हें उस छोटे-से स्कूल में ही, जहाँ से वह सर्वप्रथम स्नातक बने थे, अध्यापक देखना चाहते थे। वास्तव में तो श्री चाइल्स को सर्वसाधन सम्पन्न होने के कारण पढ़ाने की भी आवश्यकता नहीं थी। वह पढ़ाते इसीलिए थे कि पढ़ाने में उन्हें विशेष रस तथा आनन्द आता था।

मेरे विचार से उन्हें विद्यार्थियों के इन हवाई किलों से भी कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि समाजशास्त्र की कक्षाओं में वह हमेशा 'अमेरिका शीर्षकों के पीछे' के बारे में बताया करते थे। वह अमेरिका को रेडियो प्रोग्रामों में तथा सनसनीखेज अखबारों के समाचारों में पाने के इच्छुक थे। जो लड़के उनके निकट सम्पर्क में थे वे जानते थे कि विवाह करने की उनकी अभिलाषा थी तथा विवाह के उपरान्त किसी छोटे-से गाँव में बसकर अपने परिवार के स्वतन्त्र विकास की वह कामना करते थे। वह शहरों के भीडभाड़ पूर्ण वातावरण से दूर रहना चाहते थे जहाँ किसी भी अच्छे कार्य का उनके लिए कोई भी अस्तित्व नहीं था। 'मैं कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं हूँ,' वह कहा करते थे, 'मैं तो केवल प्रसन्न रहना चाहता हूँ।'

मिस हारपर ने एक बार, जब हम उनसे श्री चाइल्स के सम्बन्ध में जानने का प्रयास कर रहे थे, कहा था कि तुम लड़के और लड़कियों से यह बातें सुन कर तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम लोग उनके लिए कल्पना न कर अपने ही लिए कर रहे हो। उस चलते-फिरते विश्वकोष को इससे बहुत कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा, 'मेरे विचार से तुममें से यदि कोई उनकी झिझक दूर कर दे तो सम्भवतः उनका विवाह हो जाए।'

'सभी भावुक और कुशाग्र बुद्धि अन्धे शर्मीले होते हैं' आथर ने कहा, 'यह तो इसी प्रकार है जैसे किसी से उसके अन्धेपन को दूर करने की कामना की जाए।'

'इस सुरक्षित वातावरण में दिवास्वप्न बहुत सहल है, लेकिन यह एक गहन अन्धकार में गिरने के समान है तथा उसमें से निकल न पाने के समान है।' मिस हारपर कहती गईं।

लेकिन विद्यार्थी निरन्तर यह बात सोचते ही रहे कि श्री चाइल्स अपने कालेज

के शान्तिमय वातावरण में पढ़ाते रहेंगे तथा एक दिन कोई सुन्दर कोमलांगी उनका पति के रूप में वरण कर लेगी ।

स्टेज पर सभी फुसफुसाकर बातें कर रहे थे । क्योंकि सब यही समझते थे कि लोग आडिटोरियम में आना शुरू हो गए हैं । यह अभी बिल्कुल भरा नहीं है, मैं सोच रहा था, क्योंकि बिग जिम के हँसने की आवाज स्पष्ट आ रही थी । अरनेस्ट किसी लड़की का नाम पुकार रहा था जिसे मैं नहीं जानता था । शायद वह उसके साथ बैठना चाहता है, मैंने सोचा ।

मुझे पेंगी की आवाज सुनाई पड़ रही है,' केनेथ ने कहा । मैक ने तुरन्त ही नाक सिकोड़ी ।

'वह बोल ही नहीं सकती ।'

'सोचता हूँ कि मैं उसे फिर कभी दोबारा देख भी सकूँगा या नहीं ।' इसके बाद केनेथ ने दुखपूर्वक कहा, 'इससे तो अच्छा था मैंने स्नातकीय स्तर पर अध्ययन ही न किया होता ।'

'लेकिन तुम यहाँ हमेशा तो रहोगे नहीं' मैक ने कहा । स्टेज के सामने आडिटोरियम से किसी प्रकार की आवाजें नहीं आ रही थीं तथा ऐसा प्रतीत होता था जैसे सारा हॉल सो रहा हो—पूर्ण रूपेण नीरवता का साम्राज्य था ।

'हर एक इतना उदास क्यों है,' आथर ने अचानक पूछा ।

'तुम खुश हो सकते हो क्योंकि कम से कम एक व्यापार तो जानते हो जिसे तुम कर सकते हो ,' मैक ने कहा ।

'हाँ आथर, तुम पियानो के स्वरों की मरम्मत करके काफी रुपया कमा सकते हो,' एनाबेल ने कहा ।

'हो सकता है कि मैं पेगी को फिर दोबारा कभी न देख सकूं ।' केनेथ ने कहा, 'और अगले वर्ष उसके साथ पैट नाचे ।'

'हुश···श्···श कहीं श्री वूली न सुन लें ।'

'तुम्हारी बातें सुनकर तो हम सभी पागल हो जायेंगे,' आथर ने कहा ।

'चुप रहो' केनेथ ने खीझकर कहा, 'हम सब लोगों को पियानो के स्वरों की मरम्मत करने का तुम्हारे समान काम नहीं मिल सकेगा ।'

मैं घबरा गया था । श्री वूली भी दूसरी ओर से ऊपर आ गए थे और उन्होंने कहा 'स्कूल से कभी भी पहले सात स्नातक नहीं निकले हैं ।' हमारी कक्षा ही

उनकी याद में सबसे बड़ी तथा सर्वश्रेष्ठ कक्षा थी। इसके बाद वह कुछ कदम उठाकर नारमन के पास चले गए जिससे अपना डिप्लोमा लेती बार वह लड़खड़ा न जाय। नारमन की दृष्टि बहुत आयु बीतने पर खोई थी, अतः उसे चलने-फिरने में कठिनाई होती थी।

श्री वूली के चले जाने के उपरान्त भी केनेथ, मैक, कैरोल तथा एनाबेल स्कूल छोड़ने के सम्बन्ध में खूब मनोयोग के साथ बातचीत करते रहे। आथर अब चुप हो गया था और मेरे विचार से शायद वह अपना स्वागत के समय दिया जाने वाला भाषण याद कर रहा था। अपने दिमाग में मैंने अपने भाषण को एक बार दोहराया, 'बोर्ड आफ ट्रस्टीज, श्री वूली, फैकल्टी के सदस्य तथा मित्रो! शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता कि १९५२ की कक्षा के छात्रों को स्कूल का नव वर्ष प्रारम्भ होते समय आपका स्वागत करते हुए कितना हर्ष है।'

मैं चाहता था, उन्होंने मुझे स्वागत-भाषण के लिए न चुना होता। यह जानकर कि श्री डेविस हमारे प्रथम वक्ता होंगे मुझे कुछ घबराहट भी अनुभव हो रही थी। मुझे याद था कि मेरे संयुक्त राज्य अमेरिका में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आने का उन्होंने कितना प्रबल विरोध किया था और क्योंकि वह अमेरिकन प्रिन्टिग हाउस के प्रधान थे अतः अमेरिका के अपाहिजों के शिक्षाक्षेत्र में उनका विशेष स्थान था तथा इन बड़े अधिकारों के द्वारा मेरे अमेरिका आने की सम्भावनाओं को विलम्बित करने में तथा उन्हें समाप्त तक करने में समर्थ थे। उनका सारा पत्र-व्यवहार मेरे स्मृति-पटल पर अभी तक अंकित था तथा मैं दबी हुई क्लेशात्मक स्मृतियों को फिर से नहीं उभारना चाहता था। सम्भव था मेरा दाखिला पर्किन्स में हो जाता शायद वहाँ लड़के अपनी कक्षाओं में इस प्रकार ताश न खेलते और सम्भव था वहाँ की स्नातकीय कक्षा स्कूल की रक्षा की इतनी अधिक चिन्ता न करती। लेकिन उन सब बातों को मैं अब नहीं सोचना चाहता था, विशेष रूप से जब सब कुछ अतीत के अन्धकार में विलीन हो चुका था। मुझे प्रसन्नता थी कि मैंने अपनी ग्यारहवीं तथा बारहवीं कक्षा की पढ़ाई एक ही वर्ष में समाप्त कर ली थी तथा अपनी शेष कक्षा से एक वर्ष पूर्व ही ग्रेजुएट हो रहा था।

आथर ने कहा, 'मुझे स्कूल छोड़ने पर तथा बाहर जीवन को एक नया मोड़ देने पर कोई भी दुःख नहीं हो रहा है। मुझे दुःख केवल इसी बात का है कि सम्भवतः अब मैं भविष्य में कभी अपने मित्रों और अध्यापकों से न मिल सकूँ।'

उसी समय पर्दे के छल्लों के खिसकने के कारण उसे अपनी बात रोक देनी पड़ी। शुरू से अन्त तक की सारी रस्म बिल्कुल अटपटी-सी तथा प्रभावोत्पादक से रहित थी। पूरी रस्म में केवल एक ही विशिष्टता थी और वह थी श्री डेविस का अपने भाषण में मेरे पत्र-व्यवहार की ओर संकेत करना। जब उन्होंने यह संकेत किया तो मेरे माथे से पसीना चूने लगा था। लेकिन उन्होंने, फेरल तथा दूसरे लोगों ने मुझे घर पर ही ठहरने की सलाह देने की गलती को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया। मुझे अपनी इस जीत से कोई प्रसन्नता अनुभव नहीं हुई। मैं तो उनके शब्दों में स्वाभाविक अमेरिकन ईमानदारी और सत्यनिष्ठा से विशेष रूप से प्रभावित हुआ।

जब सब कार्य सम्पन्न हो चुके तो सब स्नातकों के माता-पिता और अभिभावक छोटी-सी स्टेज पर आए। मैं वहाँ से खिसकना चाहता था लेकिन आथर का हाथ मेरे कन्धे से लिपटा हुआ था। आडिटोरियम खाली होने लगा था और यही हाल अब स्टेज का था। आथर के हाथ को दबाते हुए मैंने कहा, 'क्षमा करें' जैसे मैं कोई बच्चा हूँ और अब कक्षा से स्वयं ही इस आशा से क्षमा याचना कर रहा था कि कोई भी मुझसे कारण नहीं पूछेगा। 'तुम तो सबको अपने विचार-प्रवाह में बहा ले गए दोस्त!' जैसे ही मैं हाल में आया तो 'रे' ने कहा। 'तीन वर्ष पहले इस बात पर कि तुम हमारे साथ ग्रेजुएट नहीं बन सकते, मैं अपनी जान की भी बाजी लगा सकता था।'

मैंने इसके लिए 'रे' को कोई दोष नहीं दिया क्योंकि मुझे पाँचवीं कक्षा में गणित पढ़ना याद था। 'मेरा स्वयं भी तुमसे कुछ वर्ष पीछे ही रहने का अनुमान था।' मैंने कहा। वह बड़े जोर से हँसा। तभी लुईस आया और उसने आकर मुझे सूचित किया कि मुझे स्टेनली अवार्ड मिला है जो मेरे प्रथम वर्ष में 'रे' को मिला था।

श्री डेविस तभी आए और बोले, 'समस्त स्कूल में पढ़ाई-लिखाई में सबसे अधिक नम्बर पाना निस्सन्देह गर्व की बात है।'

'केवल लड़कों में,' 'रे' ने उनकी बात को ठीक करते हुए कहा।

मैंने सुना था, बहुत उन्मुक्त और प्रफुल्लता का वातावरण फैल जाता है, पार्टियाँ होती हैं तथा ग्रेजुएशन की प्रसन्नता में नाच होते हैं लेकिन उस दिन रात को मेरे सभी सहपाठी बहुत उदास-से थे। कोई पार्टी नहीं हुई तथा मैं भी उदासी का अनुभव कर रहा था। कक्षा के समस्त ग्रेजुएट अब हाल में मिले।

'आथर, तुम्हारे व्याख्यान से मैं तो लगभग रो देने वाली थी', एनाबेल ने कहा।

'इस दीर्घ काल में मेरे विचार से वही एक हास्यपूर्ण आशीर्वाद था।' श्री चाइल्स ने कहा।

'उसमें बस आशीर्वाद का ही भाव समन्वित था, मैंने तो उसे सुना भी नहीं' एनाबेल ने कहा, इस पर सब हंसने लगे, लेकिन कुछ अन्यमनस्क-से।

'अब क्या होना है ?' केनेथ ने निराशा के साथ कहा।

अगले दिन सारा भवन उसी प्रकार सुनसान हो गया जैसा मुझे पहले दिन आने पर मिला था। अभी भी वहाँ कुछ अध्यापक रह गए थे। लेकिन डौरमीटरियाँ तो ऐसी प्रतीत होती थीं, जैसे उनमें प्रेतों का निवास हो। एक दिन पहले अपना सारा सामान बाँधने के उपरान्त मैं अब स्कूल में बहुत-सी स्मृतियों को साथ लिए उन्मन-सा होकर घूम रहा था। कल मुझे अपने पिताजी से मिलने जाना था जो अब तक सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण कर चुके थे और अब लास ऐन्जिल्स में फुलब्राइट लैक्चरार के रूप में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे थे। उनसे घर के सभी समाचार मिलने की आशा थी तथा साथ ही पंजाबी में बातें करने का सुयोग भी। मेरी इच्छा थी कि मैं किसी प्रकार कोलम्बिया विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सकूं, जो एकमात्र विश्वविद्यालय था जहाँ मैंने प्रवेश के लिए प्रार्थना-पत्र दिया था।

मैं आडिटोरियम की खिड़की के पास से गुजरा तो श्री चाइल्स को एक छोटे-से वाद्य यन्त्र पर अभ्यास करते हुए देखा। मैं अन्दर चला गया और बैठकर जानी-पहचानी संगीत की ध्वनियों को सुनने लगा। जब वह रुके तो हम दोनों खाली आडिटोरियम की सीढ़ियों पर बैठकर बातें करने लगे। वह मुझे अपने छोटे-से कालेज में भर्ती कराना चाहते थे और यदि मैंने यह दाखिला ले लिया तो एक बड़े भाई के समान मेरी देख-भाल करने का वचन दिया। कोलम्बिया में मेरे प्रार्थना-पत्र के साथ जो व्यवहार किया गया, उससे उन्हें दुःख पहुँचा था। वह कहने लगे, 'बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में ऐसा ही हुआ करता है।' शायद ऐसा ही होता हो लेकिन मैं अपने पिताजी से क्या कहूँगा।

श्री चाइल्स ने मुझे उदास न होने के लिए समझाया, क्योंकि कुछ विश्वविद्यालय अन्धे लोगों को दाखिल करने में कठिनाई उपस्थित करते हैं, इस स्कूल ने अभी तक अपने विद्यार्थियों को पूर्व की ओर नहीं भेजा था। वास्तव में इसके अधिकतर

विद्यार्थी तो कालेज में पढ़े ही नहीं। स्कूल के जो भी सम्बन्ध थे वह अर्कन्सास तक ही सीमित थे। उन्होंने मुझे अपने कालेज में जाने की सलाह दी जिसका इतिहास अच्छा था और फिर···

इस प्रश्न का, कि उसके बाद क्या करेंगे, कोई उत्तर नहीं था। श्री चाइल्स की आकृति, उनके हाथ मिलाने का ढंग, उनके बोलने का शिष्टाचार तथा उनकी बैठी हुई छाया जो मैंने अपनी कल्पना के द्वारा अनुभव की थी, सब मेरी आँखों के सामने नाचने लगीं। यह बताना तो वास्तव में बहुत कठिन था कि मेरी काल्पनिक आकृति उनकी वास्तविक शक्ल से कहाँ तक समानता रखती थी लेकिन न जाने क्यों उनकी जूते पहने हुए आकृति मेरे नेत्रों के सम्मुख खिच जाती थी। उनके भीतर की चिन्तित हो उठने की भावना भी (जैसा मिस हारपर ने कहा था) मुझे दिखलाई पड़ी थी। उन्होंने बिलकुल ठीक कहा था कि प्रत्येक व्यक्ति के प्रभाव की सीमा होती है लेकिन उस स्कूल में रहकर तो यह सीमा और भी अधिक संकुचित होती जा रही थी। और सीमा ऐसी प्रतीत होती थी, जिसकी परिधि स्वयं ही निर्मित की गई हो। 'यह मेरे लिए नहीं थी,' मैंने कहा,'यदि कोलम्बिया मुझे अपने उपयुक्त नहीं समझती तो मुझे और कहीं प्रयास करना पड़ेगा।'

हम कुछ देर स्कूल के सम्बन्ध में और वहाँ के अध्ययन काल के बारे में बातें करते रहे। लेकिन यह सब कुछ उपन्यास के उस अन्तिम पैराग्राफ के समान था जिसकी सामग्री की कल्पना पहले ही कर ली गई हो। कुछ ही बन्धन और शेष रह गए थे जैसे वह संरक्षिका जो नायक को उस स्थान तक लाती है।

उस दिन सायंकालीन भोजन मैंने श्री वूली के साथ किया। उन्होंने मुझे टाई पर लगाने का एक क्लिप दिया जिस पर 'ए, एस, वी' खुदा हुआ था।

'बेटा, मैं चाहता हूँ तुम इसे अपने पास रखो जिससे जब कभी भी तुम इसे पहनो तो देखने वालों को यह पता चल जाए कि तुम अर्कन्सास स्कूल में पढ़ने के लिए गए थे। तुम और श्री चाइल्स हमारे अब तक के स्नातकों में सर्वश्रेष्ठ रहे हो।'

मैंने वह टाई-क्लिप ले लिया जो एक लम्बे चिकने डंडे के समान था। दोनों ओर झुकी हुई जंजीर थी। तथा उसके बीच में एक झूलते हुए आकार का आभूषण था। श्री वूली ने उसके उभरे हुए आकार पर मेरी अंगुलियाँ 'ए, एस, वी', की मोहर पर फिराई।

'तुम हमें कभी नहीं भूलोगे। क्यों, कभी भूलोगे तो नहीं ?' श्री वूली ने अपना हाथ टाई पर रखते हुए कहा।

'यह भूल कैसे सकते है ?' श्रीमती वूली बोली, 'इनके सारे व्यक्तित्व पर हमारी छाप जो है।'

'मैं आपका बहुत आभारी हूँ', मैंने कहा, 'यदि आपने प्रयत्न न किया होता तो मेरा अमेरिका आना ही असम्भव था।'

श्री वूली तथा विद्यार्थी हमारे साथ कार के पास तक गए जहाँ अध्यापक मण्डल के सदस्य खड़े हुए थे। मैंने उनमें से कुछ को विदा के रूप में अभिवादन किया। आर्थर ने जोर देकर कहा, वे सब हवाई अड्डे तक जाना चाहते हैं। मैं अब उन गलियों से अन्तिम रूप से जा रहा था। मैं जब सर्वप्रथम लिटिल राक में आया था तो मेरे लिए कार में बैठे हुए दिशाओं का पता लगाना असम्भव था लेकिन अब मैं ऐसा कर सकता था। मै इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता था कि अर्कन्सास स्कूल से जो मैंने सर्वाधिक मूल्यवान शिक्षा ग्रहण की थी, वह थी स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने-फिरने की आदत। भले ही मेरी आँखें न हों लेकिन अब मुझे घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता थी, जो नेत्रों वाले व्यक्तियों के लगभग समान ही थी।

हवाई अड्डे पर श्री वूली ने कहा, 'कौन जानता है कि तुम कुछ दिन के बाद गर्मियों में वापस आकर हमारे ही कालेज में शिक्षा ग्रहण करो।'

श्री वूली, जिन्होंने स्वयं उसी कालेज में शिक्षा ग्रहण की थी, मेरे वापस लौटने के बारे मैं अत्यधिक उत्सुकता से बातें करते रहे।

उस समय मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था कि मेरा अगला कदम क्या होगा। यद्यपि फिर कभी उन गलियों में घूमने का मुझे अवसर नहीं मिला, लेकिन वहाँ के मेरे गहरे मित्रता-सम्बन्ध अब भी कायम हैं।

अन्ततः कालेज २४

वायुयान की परिचारिका ने हमसे अपनी पेटी कसने के लिए कहा। तेज झटकों, खड़े कानों और नीचे गिरने के आभास (जैसा एक बार ऊंचे फुटपाथ से गिर पड़ने पर हुआ था) से मैं समझ गया कुछ ही मिनटों में हम लास एन्जिल्स हवाई अड्डे पर उतर जाएँगे और मैं पिताजी से मिल सकूँगा।

मैं अपनी विदेश में रहने की तीन वर्ष की अवधि में भारत में होने वाली घटनाओं को जानने के लिए बहुत उत्सुक था। मैं जब विदेश यात्रा पर चला था तो स्वतंत्र भारत कुल दो वर्ष का बच्चा था। अब तक सम्भवतः उसे भली प्रकार चलना आ गया होगा। मैंने स्वतन्त्रता रूपी शिशु के जन्म पर होने वाले सभी कष्टों को सहा था, स्वतन्त्रता की खुशियों को देखा था तथा विभाजन के कारण होने वाली ग्लानि में भी भाग लिया था। अर्कन्सास में केवल तीन वर्ष रहने पर मैं एक कूप मंडूक हो गया था। अमेरिका आकर मैं एक ऐसे स्थान से, जहाँ से मैं एक राष्ट्र के हृदय की आवाज सुन सकता था, एक अन्धों की अलग ही दुनियाँ में आ गया था जहाँ समाचार-पत्र तक पढ़ने को नहीं मिलते थे। बहुत-से ऐसे स्कूलों में जहाँ विद्यार्थी वहीं रहते थे, उनको पढ़ने वाले ही नहीं मिलते थे। तथा उनमें भारत के सम्बन्ध में ब्रेल अथवा वार्ता की पुस्तकें तो बहुत ही कम थीं।

वायुयान अब पृथ्वी तल पर उतर चुका था और मैं अपने पिताजी से जो मुझे लेने आए थे, मिला। लेकिन जब तक हम दोनों उनके व्यक्तिगत छोटे-से निवास स्थान में नहीं पहुँच गए तथा सभी मित्र जो हमें छोड़ने के लिए आए थे, चले नहीं गए मैं उनके साथ खुलकर घुलमिल नहीं सका। लेकिन पंजाबी की मधुर ध्वनि में चहुँ ओर व्याप्त बेतुकापन गायब हो गया।

मैं कभी भी वायलिन का विशेषज्ञ नहीं रहा लेकिन मुझे हमेशा इसकी ध्वनि बहुत अच्छी लगती थी। जब कभी मैं बहुत अधिक समय तक वायलिन नहीं सुन पाता था तो इसके सुनने की आकांक्षा करने लग जाता था। लेकिन इस एकाकीपन

की कल्पना बहुत कठिन थी जब तक उसे सुन न लिया जाए। इसी प्रकार जब मैंने पंजाबी को सुना तो तुरन्त ही मेरे मन में भारत वापस जाने की आकांक्षा उत्पन्न हुई।

मेरे पिताजी धीरे से अपने हाथ मेरे कन्धे पर रखकर मुझे देखने लगे। यह अनुभव मुझे बहुत दिन बाद हुआ था। 'बेटा, पिछले तीन वर्षों में तो तुम काफी बड़े हो गये हो।' उन्होंने मेरे अधिक पुष्ट तथा मांसल हाथों पर अपने हाथ ऊपर-नीचे फेरते हुए कहा, 'देखो तो, जब तुमने भारत छोड़ा था तो तुम्हारा वजन नब्बे पौन्ड था।"

'अब पच्चीस पौंड और बढ़ गया है', मैंने कहा।

'तुम काफी हृष्ट-पुष्ट प्रतीत होते हो तथा निश्चित रूप से एक इंच लम्बे भी हो गए हो। क्या ही अच्छा होता यदि तुम्हारी माँ भी तुम्हारे परिवर्तन को देखने के लिए यहाँ होतीं।'

लेकिन मेरे शारीरिक विकास से भी अधिक वह एक और चीज़ को देखकर चकित रह गए। 'कितने विश्वास से तुम नीचे आए और उन दो स्त्रियों का अनुगमन करते हुए गन्तव्य स्थान पर पचहुँ गए।' उन्होंने एक विचारक के समान कहा, 'और तुम अपना सिर बिल्कुल सीधा रखे थे।'

लेकिन शीघ्र ही मेरे परिवार के कुशल-मंगल के प्रश्न ने सब अन्य बातों को गौण कर दिया।

जब मैं परिवार के सम्बन्ध में अपने पिताजी की बातें सुन रहा था तो एपार्टमेन्ट में इधर-उधर, ऊपर-नीचे चल रहा था तथा उस अवधि में मैंने उसके काफी छोटे होने का अनुमान लगा लिया। पिताजी ने कोच को उठाकर दो बिस्तर जमीन पर बिछा दिये थे, एक गद्दे पर तथा दूसरा स्प्रिंग पर। कागजात और किताबें एक ओर संग्रहीत कर दिये गए थे, तथा उन्हें हटाकर एक छोटा-सा निकलने के लिए रास्ता बना दिया गया था। जहाँ मैं चल रहा था, वहाँ कठिनाई से ही इधर-उधर घूमने के लिए स्थान बचा था। मेरे स्मृति-पटल पर बड़ा तीन मंजिला मकान घूम गया तथा पिताजी की कठिनाई को देखकर मन द्रवित हो उठा। पश्चिमी लास एन्जिल्स में हमें यही छोटा-सा एपार्टमेंट मिला था जहाँ उनके पास न तो कोई नौकर था तथा न ही बटलर मिला था जो उनके कागजातों को संग्रहीत कर दे। लेकिन अतीत के गौरव की यह सभी स्मृतियाँ उस समय विस्मृत हो गईं जब पिताजी ने मुझे प्रतिदिन एक के बाद एक पुराना समाचारपत्र सुनाना प्रारम्भ किया तथा पुस्तकों

के अंश सुनाए। मैं एक बार फिर वैसा ही अनुभव करने लगा जैसा विभाजन के दिनों में करता था। अब वर्तमान को याद रखने का मैं प्रयास कर रहा था।

वर्तमान, जिसका सम्बन्ध कोलम्बिया से था, एक बिल्कुल दूसरा मामला था। पिताजी को मेरे वहाँ दाखिले की ही आशा नहीं थी किन्तु उनका विचार था, मुझे वहाँ छात्रवृत्ति भी मिल जाएगी तथा मैंने मरे से मन से उन्हें अपनी इस कार्य में असफलता की बात सुनाई। मुझे स्थिति की गम्भीरता को सोचना ही पड़ा। श्री डेविस के कथन पर चाहे मुझे कितनी ही अधिक प्रसन्नता हुई हो तथा अर्कन्सास में चाहे मैंने कितना ही अच्छा कार्य किया हो फिर भी अब मुझे घर वापस जाने का विकल्प सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा। आने-जाने और परिवहन के खर्चे को मिलाकर पाँच हजार डालर अब तक खर्च किए जा चुके थे, जो पच्चीस हजार रुपयों के मूल्य के बराबर होते थे। इतना धन भारत में परिवार के तीन-चार सदस्यों की पूर्ण शिक्षा के लिए काफी है तथा पिताजी यद्यपि भारत सरकार में सर्वाधिक वेतन पाने वाले पदाधिकारियों में से थे फिर भी उनकी यह रकम एक वर्ष की पूरी आय के बराबर थी। प्रश्न यह था कि इतने खर्चे के उपरान्त भी क्या मैं भारत में अब स्वतन्त्र रूप से रहने में समर्थ था जो मैं पहले घर पर रहकर नहीं रह सकता था। इस प्रश्न का उत्तर मुझे स्पष्ट रूप से 'नहीं' में प्रतीत हो रहा था।

पिताजी ने मुझे याद दिलाई कि अर्कन्सास का प्रशिक्षण भारत के लिए पूर्ण रूपेण निरर्थक रहेगा तथा इसके अतिरिक्त घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता भी जिसे मैं वर्षों से मन में पाल रहा था, त्यागनी पड़ेगी। क्योंकि भारत में कहीं भी लाल तथा हरी रोशनी यातायात के नियंत्रण के लिए नहीं थीं। तथा यातायात के नियम भी पूर्ण रूपेण स्थायी नहीं हो पाए थे, जैसे अमेरिका में थे। टाँगे वालों और बैल ठेले वालों से पैदल चलने वालों के हितों का ध्यान रखने की कल्पना नहीं की जा सकती थी। विशेष रूप से अन्धों के हित की। न ही वहाँ पूर्व आयोजित ब्लाक इत्यादि भवनों में होते हैं। यदि बहुत सरल होता तो इसे भी एक पाठ के रूप में सीखने का प्रयास करता। लेकिन यह था बहुत कठिन।

एक विद्यार्थी के रूप में पारपत्र लेने के कारण अमेरिका में भी मुझे नौकरी नहीं मिल सकती थी और जब हमने एक व्यक्ति से कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय का एक वर्ष का खर्चा पूछा तो उसने तुरन्त स्पष्ट शब्दों में तीन हजार डालर बतला दिया। यह खर्चा खाने का, कमरे का किराया, तथा ट्यूशन फीस के रूप में देना

था। इसके अतिरिक्त मुझे एक हजार डालर किताबें पढ़कर सुनाने वालों को, कक्षा के कार्यों को मुझे पढ़कर सुनाने के लिए, और देने थे। बी० ए० की डिग्री अब केवल चार वर्ष की ही बात नहीं रही किन्तु बारह हजार डालर का खर्चा अभी होना था तथा पिताजी ने मुझे बतलाया कि जब उन्हें पेन्शन मिलेगी तो वह पाँच सौ रुपया अथवा सौ डालर प्रतिमास होगी जो भारत में तीन-चार व्यक्तियों के परिवार को चलाने के लिए पर्याप्त थी तथा उसमें से कुछ भी बचने की सम्भावना नहीं थी।

'भारत में पाँच सौ रुपये अमेरिका में पाँच सौ डालर के बराबर थे, लेकिन उन्हें डालरों में परिवर्तन के लिए देते समय लगभग उनके ४/५ भाग से हाथ धोना पड़ता है।' उन्होंने मुझे बतलाया।

जहाँ तक भारत सरकार से तथा किसी भारतीय फाउण्डेशन से सहायता का प्रश्न था, इसकी लेशमात्र भी आशा नहीं थी। क्योंकि भारत की अन्धों के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी महत्वपूर्ण समस्याएँ थीं। किसी भी फाउण्डेशन की दृष्टि में मेरे अर्कन्सास के डिप्लोमे का कोई महत्व नहीं था।

लेकिन इस पर भी मेरे पिताजी ने कहा, 'मेरा वापस भारत जाना उचित नहीं तथा रुपया कर्ज लेकर मुझे पढ़ायेंगे।'

'लेकिन आप उसे लौटायेंगे कैसे ?' मैंने पूछा।

'मैं भारत में अपनी प्रेक्टिस करना प्रारम्भ कर दूँगा।'

'लेकिन उसमें तो बहुत-सा रुपया लग जायगा।' मैंने कहा।

'मैं यहाँ अमेरिका में कोई नौकरी कर लूँगा।' उन्होंने कहा।

लेकिन मैं जानता था यह असम्भव था क्योंकि एशिया के निवासियों को अमेरिका का नागरिक बनने में लगभग दस वर्ष लग जाते थे और इस पर भी उन्हें कुछ रुपया अपने साथ लाना पड़ता था जिससे यह सिद्ध हो सके कि वह जन-कोष पर भार नहीं बनेंगे।

'इसकी चिन्ता तुम मत करो, इसका प्रबन्ध मैं कर लूंगा' वह बोले।

रात को हम दोनों रोज सोने का बहाना करते थे। मैं जानता था वह किस समय जगते थे। वह ज्यादा समय तक जगे ही रहते थे। एक बार हमने रात के दस बजे एक दूसरे को 'गुड नाइट' कहा। मैंने बिल्कुल भी हिलने-डुलने का प्रयास नहीं किया तथा लम्बी-लम्बी साँसें लेने का उपक्रम करने लगा जैसे कोई बहुत गहरी नींद सो रहा होऊँ। दो बजे पिताजी मुझे किसी भी प्रकार की चेतावनी दिए बिना

बोले, 'तुम्हें इस समस्या पर दूसरे ढंग से विचार करना चाहिए। मैंने यहाँ अमेरिका में तुम्हारे पास रहने का प्रबन्ध कर लिया है। तीन वर्ष पहले मैं इस दिन की कल्पना भी नहीं कर सकता था। मेरा तात्पर्य है, पाकिस्तान बनने के बाद मेरे लिए भारत छोड़ना सम्भव नहीं था।'

'हाँ,' मैंने कहा। मैं जानता था कि फुलब्राइट वालों ने तो केवल उनका रास्ते का किराया दिया था। वास्तव में उनके आने का तात्पर्य केवल मुझे देखना ही था। अमेरिका में कुछ भी कमाने पर उन पर पाबन्दी लग गई थी।

'मैंने कुछ थोड़े, से समय रिटायर होने पर वर्ल्ड हेल्थ आरग्नाइजेशन के लिए जो कार्य किया था, उससे कुछ बचा लिया है। वह सब रुपया तुम्हारा है।'

'हाँ', मैंने कहा, और अशोक की शिक्षा के बारे में सोचने लगा जो अभी सारी की सारी पड़ी थी तथा ऊषा, जिसने अभी अपनी हाई स्कूल तक की शिक्षा भी पूरी नहीं की थी, का ध्यान भी आया। निम्मी बहन की शादी अभी होनी थी जिसका दहेज खरीदना था। तथा ओम् भाई जिन्हें अभी अपना इंजीनियरिंग का कोर्स समाप्त करने के लिए दो वर्ष तक और पढ़ना था। मुझे उस समय अपने पिताजी पर रोना आ रहा था।

यदि रात को नींद नहीं आती थी तो दिन में हम एक फाउण्डेशन के दफ्तर से दूसरे फाउण्डेशन के दफ्तर तथा एक परोपकारी व्यक्ति से दूसरे के पास घूमते रहते थे। इन परोपकारी व्यक्तियों की वहाँ कोई कमी नहीं थी, इनकी संख्या रोकड़-बहियों के समान ही अनन्त थी। इन रोकड़-बहियों तक अपना नाम पहुँचाना भी बहुत कठिन नहीं था यद्यपि इनमें से तरकीब से कुछ रुपया निकालना दूसरी बात थी। अपने मित्रों से हमें प्रतिदिन ही पत्र तथा टेलीफोन के द्वारा अमुक-अमुक व्यक्तियों से मिलने की सूचना मिलती थी। हम उनसे मिलते थे तथा वे लोग उदार भी होते थे किन्तु वे या तो इसी बात पर विश्वास नहीं करते थे कि अन्धे भी पढ़ सकते हैं या किसी दूसरे कार्य को सम्पन्न करने के लिए रुपये खर्च करना चाहते थे जो निश्चित रूप से मेरी शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण होते थे। अन्तर्राष्ट्रीय रोटरी संघ जैसे प्रख्यात संगठन भी उन विदेशी विद्यार्थियों की शिक्षा को जो पहले ही संयुक्त राज्य अमेरिका में थे, अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझते थे या स्नातक परीक्षाओं में रुचि नहीं रखते थे।

इन असफल और निरर्थक प्रयत्नों को करते समय कभी-कभी कोई मनोरंजक

घटना भी हो जाती थी। जैसे एक करोड़पति ने एक डालर का नोट मेरी जेब में लौटती बार डाल दिया, जिससे मैं टैक्सी कर सकूं। इसी प्रकार की घटना उस बूढ़ी स्त्री के साथ की थी, जिसने पूरे दो घण्टे तक अपने वंश के सम्बन्ध में बतलाते हुए साबित कर दिया कि उसका सम्बन्ध १५ वीं शताब्दी के एक हिन्दू पंडित से है। मैं यदि पहले अर्कन्सास स्कूल रूपी जेल में रहा था तो अब उच्च वर्ग में उठ-बैठ रहा था तथा ऐसे ठाटवाले रईसों के सम्पर्क में आ रहा था जो हर प्रकार सम्पन्न होने के साथ ही दूसरों के विचारों को सुनने तथा समझने की भावना रखते थे, लेकिन किसी न किसी कारण हमारी मदद नहीं कर सकते थे।

एक दिन जब हम दिन प्रतिदिन की असफलताओं से इतने निराश हो गए थे कि कोशिश ही छोड़ने वाले थे कि तभी एक धनिक परिवार के वचन ने मानो डूबते को सहारा प्रदान किया। 'मेरा विचार है वह तुम्हारे वचन को पूरा ही नहीं करना चाहते बल्कि तुम्हारी स्वतन्त्रता से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं तथा तुम्हारी अन्धेपन को जीतने की इच्छा ने भी उन पर अपनी एक विशेष छाप छोड़ी है।' मेरे पिता जी ने कहा। निस्सन्देह उनके फाउण्डेशन ने बहुत-से स्नातकों को अपनी पढ़ाई आगे चलाने के लिए वजीफे दिए थे। यद्यपि यह सब केवल ग्रेजुएटों को ही दिए गए थे, फिर भी मेरे मामले पर वह एक अपवाद रूप में विचार करने के लिए तैयार थे।

इसके पश्चात् मैं कभी भी इनके सम्मुख नहीं भूल सका कि मैं अन्धा हूँ। कुछ-कुछ याद है, जब मेरी सहायता की बात तय नहीं हुई थी, इनमें से एक ने मुझे सायंकालीन भोजन में स्क्वैब दिया। एक स्वच्छ मेजपोश पर कलफ लगे हुए नैपकिन्स रखे हुए थे। बहुत अच्छी-अच्छी चीजें खाने के सुन्दर चावलों समेत रखी हुई थीं तथा उनके अत्यधिक अन्तरंग मित्रों की नजरें मुझपर गड़ी हुई थीं। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे कह रहे हों 'यदि तुम अपना स्क्वैब छुरी काँटे से नहीं खा सके तो तुम कभी भी कालेज में नहीं दाखिल हो सकोगे। तुम्हें कभी कोई वृत्ति अथवा सहायता नहीं मिलेगी।'

जब मैं एक मेजबान के साथ धीरे से बैठकर खाने से पहले जान-बूझ कर एक गिलास पानी पीने लगा तो मेरे तथा कालेज के मध्य कुछ छोटे-छोटे हड्डियों के टुकड़े ही एक खाल जैसे पतले मांस के आवरण से ढके रखे हुए प्रतीत होते थे। मैं आत्मनिर्भर तो अवश्य था, किन्तु इतना नहीं कि स्क्वैब को भी स्वयं ही ठीक कर

लेता। बहुत दिन पहले श्री बाल्डविन के साथ हुई भेंट तुरन्त ही मन में ताजी हो उठी। मैं अपने पिताजी को एक बार फिर निराश नहीं करना चाहता था। मैंने अपना फार्क उठाया और धीरे से चावलों तथा तरबूज के गूदे में चलाना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन स्क्वैब की प्लेट को कुशलतापूर्वक बचा गया। मेरे दाईं ओर वाले अतिथि ने मुझे स्क्वैब भेंट करने का प्रयास भी किया पर मैं शर्म के कारण लाल होकर चुपचाप बैठा रहा। आखिर मुझे अपना हठ छोड़ना पड़ा। पन्द्रह मिनट तक वह स्क्वैब बनाती रही तथा अन्त में जब प्लेट मेरी ओर बढ़ाई गई तो उसमें कुछ ग्रास गोश्त को छोड़कर और कुछ नहीं था। मैंने उन्हें अपने मुख में ऐसे डाल लिया जैसे कोई ऐसी सब्जी खा रहा हूँ जो मुझे अच्छी न लगती हो यद्यपि उसका जायका अतुलनीय रूप से सुन्दर था।

सायंकालीन भोजन समाप्त हो गया लेकिन मुझे एक बार प्रदर्शनकर्ता के रूप में उपस्थित होना पड़ा क्योंकि ड्राइंग रूम में मुझे प्रत्येक अतिथि को अपने अर्कन्सास के अनुभव के बारे में बताना पड़ा। काफी बोलने के अभ्यास के उपरान्त भी मेरी अंग्रेजी दोषयुक्त थी। मैं बीच-बीच में, अटकता था तथा विचारों में, निरन्तर स्क्वैब की घटना मस्तिष्क में रहने के कारण, परस्पर सम्बद्धता नहीं थी।

'तुम इन बातों के बारे में आवश्यकता से अधिक ध्यान रखते हो', पिताजी ने घर वापस आती बार कहा। 'तुमने उन पर आवश्यकता से अधिक प्रभाव डालने का प्रयास किया।'

सम्भव है मैंने ऐसा ही किया हो, लेकिन मेरी अवस्था उस सरजन के समान हो रही थी जिसने बहुत-से आपरेशन सफलतापूर्वक किए हों लेकिन आपरेशन के थियेटर में ऐन मौके पर एक का कलंक लग गया हो। यदि उपस्थित दर्शकों को उसकी पिछली अनेक सफलताओं का ज्ञान न हो तो क्या उसकी योग्यता का निर्णय केवल उसी आपरेशन के आधार पर नहीं कर दिया जाएगा?

कुछ ही दिन के बाद डेढ़ हजार डालर की सहायता दो वर्ष के लिए मुझे दे दी गई और अब मैं अपनी कालेज की पढ़ाई कर सकता था। यद्यपि मैं संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक नहीं था फिर भी मुझे कुछ विशेष प्रबन्ध करके कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय ने मेरे पढ़कर सुनाने वालों को देने के लिए सात सौ पचास डालर का इन्तजाम कर दिया बशर्ते कि मैं स्कूल में दाखिला ले लूँ। अब मेरे सम्मुख कैलीफोर्निया, स्टैनफोर्ड तथा पोमोना कालेजों में से एक को छाँटने का प्रश्न था।

मैंने पोमोना कालेज में ही दाखिल होने का निर्णय किया क्योंकि मुझे कुछ ऐसा विश्वास हो गया कि वहां विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के सम्बन्ध अधिक निकट के हो सकते थे। जो अन्य दो बड़े विश्वविद्यालयों में सम्भव नहीं प्रतीत होता था।

जब पिताजी वापस भारत चले गए तो मैंने कालेज में कुछ उद्वेग के साथ प्रवेश किया। मेरा दाखिला होने के उपरान्त स्टैनफोर्ड के तथा पोमोना स्कूल के डीन ने भी यही विचार प्रकट किया। 'हमारे प्राइवेट स्कूल में कड़ी प्रतियोगिता रहती है और यदि मैं 'सी' स्तर पर पास कर लूं तो मुझे शुक्रगुजार होना चाहिए।'

चाहे मैं इस प्रकार के विचार प्रदर्शन तथा आलोचना के लिए धन्यवाद दूं या नहीं, लेकिन एक ऐसे स्थान में रहने की सम्भावना से, जो कभी सीमा (सरहद) रही थी, प्रसन्नता अवश्य होती थी। वहाँ की अनौपचारिकता तथा स्वतन्त्रता के उसी पुराने वातावरण ने मुझमें फिर से एक नई आशा का संचार कर दिया तथा मुझे कालेज तथा प्रतियोगिता दोनों ही अवसरों को प्राप्त करने से प्रसन्नता अवश्य हुई।

यद्यपि क्लेयरमान्ट सुन्दर पहाड़ियों के समीप स्थित था और मैं कभी-कभी रात को एक घण्टे तक नीचे गलियों में बिना किसी कार से टकराने की सम्भावना के घूम सकता था फिर भी कुछ अंशों में इसमें तथा लिटिल रौक और आइस क्रीम फैक्टरी में समानता थी। वास्तव में क्लेयरमान्ट में चार सम्बद्ध कालेजों के विद्यार्थीगण रहते थे, लेकिन फिर भी वही भ्रम जिसका अनुभव मुझे लिटिलरौक की बसों में तथा आइस क्रीम प्लान्ट में हुआ था, यहाँ भी मेरे साथियों तथा कुछ अध्यापकों में यहाँ तक कि डीन में भी विद्यमान था।

मेरे इंगलिश के प्रोफेसर बहुत योग्य थे तथा दूसरों को प्रभावित करने की कला में पूर्ण दक्ष थे। अपनी कक्षा में दूसरे दिन अन्य लड़कों के चले जाने के उपरान्त उन्होंने मुझसे रुकने के लिए कहा।

'तुम्हें कालेज के रास्ते को बिना बेंत के पार नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से तुम मारे जाओगे,' उन्होंने कहा।

'बहुत अच्छा श्रीमान्' मैं शर्माते हुए कहकर वहाँ से चला गया।

तीन-चार घण्टे बीतने के उपरान्त उन्होंने मुझसे फिर कहा, 'तुम अभी भी बेंत का प्रयोग नहीं कर रहे हो।'

मैं जानता था कि मैं कभी भी बेंत अपने पास नहीं रखूंगा, लेकिन इस बात को

उन्हें समझाने में मैं अत्यधिक कठिनाई अनुभव कर रहा था। 'किसी बेंत को मिलने पर मैं तुरन्त ही उसका प्रयोग प्रारम्भ कर दूंगा श्रीमान्। मैं उस समय की कल्पना कर रहा था, जब लोग-बाग मुझे सड़क को सफलतापूर्वक पार करते हुए देखकर इस सम्बन्ध में शंकित होकर प्रश्न पूछने बन्द कर देंगे।

एक सप्ताह बाद उन्होंने मुझे फिर रोक लिया। 'डीन ने मुझे बुलाया था', वह बोले, 'उन्होंने कहा है तुम मारे जाओगे। मैं बार-बार इस विषय पर बात करना पसन्द नहीं करता। लेकिन तुम्हारी बेंत अभी भी...'

उन दो सप्ताहों में मैंने कालेज के रास्ते को कम से कम चार बार प्रतिदिन की औसत से बिना बेंत की सहायता के पार किया था। लेकिन यह बेंत का प्रश्न अब तक मेरे सम्मुख उपस्थित था।

'मैं इसका प्रयोग नहीं करूँगा, श्रीमान्' मैं बोला।

'यदि तुम्हें इसके प्रयोग से शर्म लगती है तो सड़कों को पार करती बार इसका प्रयोग कर लिया करो और कक्षा में आने के पूर्व इसे किसी झाड़ी में छिपा दिया करो।' उन्होंने धैर्यपूर्वक कहा।

'मुझे अन्धा होने लिए शर्माने की आवश्यकता नहीं है', मैंने उनकी संवेदन-शीलता से व्यथित होकर कहा। 'यह बात मेरे माथे पर इतनी साफ लिखी है जितनी कोई भी बेंत नहीं कर सकती। वास्तव में मुझे बेंत की कोई आवश्यकता ही नहीं है।'

चाहे यह मेरा चेहरे का भाव रहा हो अथवा उनकी स्वयं की समझ रही हो, उन्होंने फिर कभी मुझसे इस बारे में कुछ नहीं कहा। लेकिन एक दिन डीन ने अवश्य मुझे चौराहे पर रोक लिया।

'तुम बेंत का प्रयोग क्यों नहीं करना चाहते ? तुम मारे जाओगे', वह बोले।

विषय को मजाक के साथ समाप्त करने के उद्देश्य से मैंने कहा, 'मृत्यु तो एक बार ही आती है श्रीमान्, और मुझे इससे डर नहीं लगता।'

'सम्भव है यह एक बार ही आए लेकिन एक बार में ही यह मुझे मारने के लिए पर्याप्त है', उन्होंने सक्रोध कहा। 'तुम्हारे बारे में क्या बात है ?'

कैफेटीरिया लाइन्स में जैसे हजारों डीनों का सामना करना पड़ता था, मैं जैसे ही दरवाजे में घुसता था उस समय मेरे स्वयं ही अपनी लाइन ढूंढ़ने में समर्थ होने पर भी बहुत-से व्यक्ति तुरन्त उठकर मुझे रास्ता दिखाना प्रारम्भ कर देते

थे और एक बार तो मेरे लिए ट्रे, चाँदी के बर्तन और खाना भी काउंटर पर मुझे तैयार करके दे दिया। जब वे मेरा दूध अपनी ट्रे में रख लेते थे तो मेरे लिए उसे स्वयं ही पी जाते थे। यदि कभी मैं इन छान-बीन करने वाली आँखों से बचकर अथवा उनकी उपेक्षा करके निकलकर काउण्टर पर पहुँचकर अपने ट्रे का खाना स्वयं ले लेता था तथा एक मेज पर बैठ जाता था तो अचानक ही बातचीत का शोर बन्द हो जाता था तथा कुछ देर के पश्चात् मैं उनकी उत्सुकता का कारण भारतीय होने के कारण न होकर अन्धा होने के कारण होता था। कुछ समय पश्चात् लोग मेरी उपस्थिति को बिल्कुल अनदेखा करके आपस में बातचीत करने लगते थे। मुझे इस प्रकार का बहाना अच्छा लगता था। कभी-कभी मैं सोचा करता था, 'काश! यदि मैं कहीं आथर होता। तब मैं भी मजाक कर सकता और स्वयं पहल करके बातचीत भी प्रारम्भ कर सकता! उस समय तो मैं भी उनकी उपस्थिति को अनदेखा कर देता तथा उनके प्रति अत्यधिक कठोरता का रुख अपना लेता।'

कक्षा में लड़कियाँ भी मुझसे बातचीत करते शर्माती थीं। जैसे मुझे कोई छूत की बीमारी लगी हुई हो। एक बार उनमें से एक ने मुझे इसका कारण बतलाया, क्योंकि मैं उसे ऐसे आदमी के समान लगता था जो वास्तविकता से अलग रहता हो। लेकिन मैंने उसे यह बताने का कोई प्रयास नहीं किया कि वह वास्तविकता की परिधि के बाहर थी। मैं यह भली प्रकार जानता था कि अगर मैं यहाँ पढ़ना चाहता हूँ तो इन लोगों को अंधों की सामर्थ्य के बारे में बताना ही होगा।

अपने कालेज के पहले ही दिन मैं समझ गया कि मुझे दिया जाने वाला प्रत्येक कार्य मुझे जोर-जोर से पढ़कर सुनाया जायेगा। पढ़ाई की पुस्तकें भी वास्तव में बहुत कम थीं। वहाँ ब्रेल अथवा कोर्स की पुस्तकों पर बहुत अधिक बल नहीं दिया जाता था। पहले मैंने कभी भी पढ़कर सुनाने वालों का प्रयोग नहीं किया था। केवल पिताजी ने गर्मियों में कुछ थोड़ा-बहुत पढ़कर सुनाया था। लेकिन मैं जानता था कि सभी प्रकार की पुस्तकों का, चाहे वे कठिन हों अथवा आसान, चाहे वे हीगल के लेख हों अथवा हास्य-व्यंग हों, सभी समान रूप से तथा एक ही गति से पढ़े जाते थे। मेरा अत्यधिक तेज पढ़ने वाला वाचक भी एक घन्टे में बीस पूरे साइज के पृष्ठों से अधिक नहीं पढ़ता था। इन सब अपवादों और कठिनाइयों का मुझे ध्यान था अतः मैंने अधिक पढ़ने वाले और मननशील लड़कों में अच्छे

वाँचने वाले को खोजना आरम्भ कर दिया। यद्यपि एक नया आदमी होने के कारण उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी उपलब्ध करना सम्भव नहीं था।

मेरे कुछ वाँचने वाले बहुत खराब थे तथा बिना किसी पूर्व सूचना के निश्चित समय पर नहीं आते थे। तथा जो अधिकतर समय में पढ़ने के स्थान पर बातें बनाया करते थे अथवा काफी समय स्थलों के उद्गम ढूँढने में ही लगा देते थे। मेरे समय के पूर्वार्ध में जब मुझे सहायता की अत्यधिक आवश्यकता थी तो उनमें कुछ तो मुझे बिल्कुल निश्चेष्ट-सा बना देते थे। कालेज का पहला कार्यकाल (टर्म) समाप्त होने तक मैं अन्य विद्यार्थियों से लगभग चार सौ पृष्ठ पीछे रह गया था जो कम से कम बीस घण्टे की पढ़ाई थी। पहले डेढ़ महीने तक मैं लगातार पिछ-ड़ता ही गया।

कक्षा में मैं ब्रेल के नोट्स लेने में कठिनाई अनुभव करता था क्योंकि प्रोफेसर महोदय बहुत तेज बोलते थे। इसके अलावा ब्रेल टाइपराइटर की आवाज मुझे बताने लगती थी कि मैं अन्धा हूँ। मैं ब्रेल काफी तेज लिख सकता था, लेकिन पेंसिल से लिखने के मुकाबले में इसकी गति तीन-चार गुनी मन्दी हो जाती थी। अर्कन्सास स्कूल से आने के कारण, जहाँ मुझे दो-तीन महीने में कहीं मुश्किल से दो पृष्ठ लिखने पड़ते थे, कक्षा के लिए निबन्ध लिखना तथा उनका संकलन करना वास्तव में काफी कठिन कार्य था। इन सब कठिनाइयों के उपरान्त भी मैं किसी प्रोफेसर के पास जाकर अपने वाँचने वालों की कठिनाई के सम्बन्ध में नहीं बतला सका तथा न ही अपनी पिछली कमजोरी के कारण निम्नस्तर के कार्य के लिए क्षमा याचना कर सका। मैं अपनी किसी भी कठिनाई को अपने अन्धेपन से सम्बद्ध नहीं कर सकता था। संक्षेप में मैं अपने साथ एक सामान्य व्यक्ति के समान व्यव-हार होते देखना चाहता था।

अपने कमरे में मुझे नींद नहीं आती थी। अतः मैं अपना फोनोग्राफ पूरी रफ्तार से चला देता था और अस्पष्ट-सा संगीत सुनता था। मैं उस समय सोचता रहता था कि अगले वर्ष मुझे सहायता मिलेगी अथवा नहीं। कहीं ऐसा न हो मुझे वापस घर लौटना पड़े। कभी-कभी मैं आधी रात को जाग जाता था तथा बिना ताले की जो साइकिल पहले मिलती, उसी पर चढ़कर अपनी जानी-पहचानी खाली सड़कों पर इधर-उधर चक्कर लगाता था, क्योंकि मैं एकान्त चाहता था। इसके उपरान्त भी मुझे हमेशा नींद नहीं आ पाती थी।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया अपने काम के कारण मेरी नींद की मात्रा घटती चली गई। क्योंकि मुझे अपने कालेज की पढ़ाई के लिए काफी आर्थिक सहायता का वचन मिल गया, अतः मैंने आन्तरिक शान्ति और आराम के लिए चिन्ता करना छोड़ दिया तथा मैंने वाँचने वालों के चयन करने के अपने ढंग में भी सुधार कर दिया। प्रोफेसर मुझे अपने सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों के सम्बन्ध में निर्देश दे देते थे। तथा मैं या तो सायंकालीन भोजन के समय अथवा स्टूडेण्ट यूनियन में उनके साथ संगठित रूप में कार्य करने के प्रयास करता था। इससे मुझे पता चला कि कालेज के द्वारा कार्य करने वाले विद्यार्थी अधिक विश्वासप्रद होते थे। मैं कभी-कभी पुराने वाँचने वालों से भी मिलने का प्रयास करता था, जैसे डीन भी जो अब तक मेरे एक अच्छे मित्र तथा परामर्शदाता बन चुके थे, मुझे कभी-कभी निर्देश देते थे।

पहली छमाही के पूर्ण होने पर भी मेरा प्रतिदिन अध्ययन की औसत दस घण्टे प्रतिदिन थी तथा इतना पढ़ने के उपरान्त भी मैं थकता नहीं था तथा घर आकर बोलती किताबों पर जो कुछ भी साहित्य उपलब्ध होता था, उसे पढ़ता था। धीरे-धीरे मैंने नौ घण्टे (जो अर्कन्सास में सोता था) से घटा कर छः घंटे ही सोना आरम्भ कर दिया था तथा कभी-कभी तो पाँच ही घण्टे सोता था।

अच्छे तथा होशियार विद्यार्थियों से अपनी जान-पहचान के कारण मुझे अपनी कमजोरियों का पता चलता था। ऐसे विद्यार्थियों की शिक्षा की पृष्ठभूमि काफी अच्छी होती थी। लेकिन इससे मैं हीनता की भावना से प्रभावित न होकर और अधिक कार्य करने की ओर ही प्रेरित होता था। मेरे शिक्षक पानी गरम करने की मशीन से मेरी उपमा देते थे लेकिन मैं जानता था कि इसके अलावा कोई चारा नहीं है।

कक्षा का कार्य भी अब आसान लगने लगा था क्योंकि मैं अब नोट्स न लेकर शिक्षक के वक्तव्य पर ही अधिक निर्भर करता था यद्यपि परीक्षाओं में मैं अधिकतर वाँचने वालों के नोट्स पर ही पढ़ता था। परीक्षा के लिए मैं टाइपराइटर पर ठीक-ठीक लिखना सीख गया था और जब कभी कोई लम्बा लेख लिखना होता था तो ब्रेल पर भी कराता था। परीक्षाओं से पूर्व वाँचने वाले मुझे पढ़ाना बन्द कर देते थे। लेकिन यदि मैं छमाही भर अपना कार्य नियमित रूप से कर लेता था तो इससे मुझे कोई विशेष बाधा नहीं होती थी। सबसे अधिक आराम का सप्ताह

परीक्षा से पूर्व का सप्ताह होता था। जब मुझे सुनाने के लिए नौ में से कुल दो वाँचने वाले ही रह जाते थे।

अब मैं अन्य विद्यार्थी मित्रों से भी अपने सम्बन्ध अच्छे बनाए रखता था। पहले की हिचकिचाहट पर अब मुझे स्वयं ही आश्चर्य होता था तथा विद्यार्थी मुझसे आकर पूछा करते थे, 'तुम्हें इस बात का ज्ञान कब हुआ कि तुमने यह कदम उठाया ?' या 'मैंने तुम्हें यहाँ कार पार्क के पास इस प्रकार टहलते हुए देखा जैसे तुम उसे देख सकते हो।' मेरे आश्चर्य का उस समय कोई ठिकाना न रहा जब मुझे मालूम हुआ कि मेरे अधिकतर मित्रों को भ्रम है कि मैं कदमों को गिना करता हूँ तथा मैंने वहाँ पहुँचने पर सबसे पहले क्लेयरमान्ट का छोटा-सा नगर पूरे का पूरा अपने कदमों से नाप डाला था। अतः मुझे प्रत्येक मोड़ या गड्ढे की स्थिति का ज्ञान था। कल्पना शक्ति के सम्बन्ध में चाहे मैं किसी को कितना ही क्यों न समझा दूं फिर भी उससे उन्हें संतुष्टि नहीं होती थी।

मेरे विचार से मेरी इसी असफलता के कारण ही मेरे एक मित्र ने एक कहानी बनाई जिसे मुझे इस प्रकार समझाया गया :

'जिस दिन मैंने तुम्हारे पत्र को डाक द्वारा प्रेषित किया तो मैं दौड़कर एक डाफिन में चला गया तथा वहाँ ऊपर उसके यहाँ हम कुछ हँसी-मजाक करते रहे। किसी कारणवश उसे इस बात का विश्वास नहीं हुआ कि तुम बिल्कुल अन्धे हो। इस पर बड़ी देर तक हमारा वाद-विवाद होता रहा। मेरा विचार है कि डाफिन जान-बूझकर बातों को रहस्यमय बना देता है।'

हमने अपने इस मित्र का नाम (जो अब हारवर्ड में है) डाफिन ही रख छोड़ा था। ऐसा उसके हकलबरी फिन के प्रमुख पात्र के समान प्रभावशील व्यक्तित्व के कारण रखा गया था। केवल डाफिन की राय की अहमियत अधिक नहीं थी, अगर उससे मेरे बारे में यह गलत धारणा न फैल गई होती कि मुझे कुछ-कुछ दिखलाई पड़ता है या मेरे भीतर कोई अलौकिक शक्ति अथवा संवेदनशीलता है जो अक्सर आदमियों में पाई जाती है।

दृष्टि की खोज में २५

पौराणिक कथाओं से पता चलता है कि एक विशेष प्रकार का ऐसा पक्षी होता है जिसको यदि पिंजरे में एक लम्बे समय तक बन्द कर दिया जाए तो वह उड़ना भूल जाता है। यद्यपि इस कथन की सत्यता की परीक्षा अपना तोता उड़ाकर मैंने स्वयं कभी नहीं की। यही बात अन्धे लोगों के सम्बन्ध में भी कही गई है, अर्थात् यदि उन्हें एक विशेष स्थान पर रखकर एक विशेष वातावरण की परिधि में रख दिया जाता है तो वे अत्यधिक सुस्त और सावधान हो जाते है। अधिक अनुभवी न रहने के कारण वे अपनी यात्रा करने की शक्ति को खो देते हैं। तथा कूप-मण्डूक और लकीर के फकीर हो जाते हैं।

कबूतरों तथा उनके दड़बों से किसी प्रकार की दिलचस्पी न होने के कारण मैं छुट्टियों में खूब घूमा करता था। मैं सर्वदा गहन पर्यटन नहीं कर पाता था क्योंकि यह लम्बे फासले के लिए सम्भव नहीं था। विशेष रूप से उस समय जब मुझे सानफ्रांसिसको से न्यूयार्क तक जाना होता था, सानडीगो से सीटल अथवा मिआमी से कैम्ब्रिज तक जाना होता था। मैंने १९२८ के माडल की मोटर गाड़ियों में हिचकोले खाते हुए सफर किया है और इन्जनों से धुआँ उगलती बसों में भी बैठा हूँ। खड़खड़ाती हुई दूध की गाड़ियों में भी मैंने सफर किया है। कभी-कभी मैं सुन्दर कैडिलाक कारों में भी, जिनकी खिड़कियों को खोलने के लिए बटनों का प्रयोग होता है, बैठा हूँ। सितारों के प्रकाश में मैं कमरों की छतों पर भी बैठा हूँ और वायुयान में भी जिसमें आधा खाली होने के कारण हर एक सीट पर बैठने वाले के पास एक खिड़की आ जाती थी। कुल मिलाकर मैंने संयुक्त राज्य अमेरिका का चौदह बार पर्यटन किया है तथा कुल अड़तालीस राज्यों में से सैंतीस में घूमा हूँ।

इसमें सन्देह नहीं, अन्धा व्यक्ति यात्रा में आने वाले विभिन्न दृश्यों की सुन्दरता से वंचित हो जाता है। अर्थात् वह बर्फ से पटे पहाड़ों की चोटियों का आनन्द नहीं ले सकता। आकाश में पंक्तिबद्ध होकर उड़ते पक्षियों को वह नहीं देख सकता।

बड़े-बड़े मैदानों में गायों को चरते हुए देखने का आनन्द वह नहीं ले सकता। तथा वायुयान में उड़ते हुए कोई नगर कैसा लगता है इसका उसे ज्ञान नहीं होता, विशेष रूप से जब वायुयान बादलों की पतली चादर में छिप जाता है। वह सुगन्ध की ओर अधिक ध्यान देने लगता है। बोलने के ढंग पर उसका विशेष ध्यान लगा रहता है तथा विभिन्न नगरों की गलियों के सामान्य तौर पर प्रयुक्त होने वाले नाम भी उसे याद रहते हैं। लेकिन इससे भी अधिक जो याद रहते हैं वह हैं उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति, जो मस्तिष्क पर एक स्थायी छाप छोड़ जाते हैं। वह एक व्यक्ति चाहे गली के मोड़ पर आपसे मिल जाए अथवा किसी दुकान के काउण्टर पर बैठा हो अथवा वह कोई ड्राइवर हो जो आपके पास से चुपचाप तेजी से निकल जाए या उनमें से कोई हो जो कहते हैं 'अरे पथिक ! ऊपर सवारी में चढ़ना चाहते हो क्या ?' वह उन क्षणों को भी याद रखता है जब कोई कार धीरे से रुक जाती है तथा उसमें से आवाज आती है, 'आप कहाँ जा रहे हैं ? क्या मैं आपको सवारी प्रदान कर सकता हूँ ?' और जब आप अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं तो चालक (ड्राइवर) जो अब तक आपका मित्र हो जाता है बाहर आता है और आपको उतरने में सहायता प्रदान करता है तथा आपके दरवाजे तक छोड़कर आने का अनुरोध करता है।

कभी-कभी तो मेरी यह सैर अत्यधिक मनोरंजक घटनाओं में परिवर्तित हो जाती थी। मुझे याद है, एक बार एक दयावती स्त्री को मेरे माता-पिता पर बड़ा दुःख हुआ जिन्होंने मुझे सड़कों पर आवारा घूमने के लिए छोड़ दिया था। वह मुझे एक पुलिस के सहायक अधिकारी के पास ले गई और उसे एक जोरदार प्रतारणा देती हुई बोली कि यदि कहीं डैमोक्रैटों का शासन होता तो मेरा सारा खर्चा सरकार देती तथा मेरी सुरक्षा का अधिक अच्छा प्रबन्ध होता। मुझे उस समय तक बड़ा क्रोध आता रहा जब तक वह चली नहीं गई। बाद में पुलिस अधिकारी ने मुझे बतलाया, वह मेरे वाशिंगटन तक जाने का रेल का किराया छोड़ गई थी। हमारे बीच इस किराए का क्या किया जाए, इस विषय पर एक अत्यधिक रोचक बातचीत हुई तथा अन्त में हमने यह निश्चय किया कि उसे डैमोक्रैटिक पार्टी के प्रचार-कोष में जमा करा दिया जाए। इसके पश्चात् वह अधिकारी मुझे एक पैट्रोल पम्प के पास ले गया, जहां मुझे अगली सवारी मिल गई।

एक स्थान पर मुझे एक कटलरी सेल्समैन ने भी अपना कार्ड दिया, जिसका

विचार था कि उनके व्यापार में मेरा अन्धापन अत्यधिक सहायक होगा। 'यदि कभी तुम किसी मुसीबत में पड़ जाओ तो मेरे पास आ जाना! वह मुझे दो सौ मील तक साथ-साथ ले गए तथा दक्षिण के बहुत-से निवासियों में घुमाया, जिनसे मिलकर मुझे कई नए अनुभव हुए। उसका कार्ड मैंने बहुत समय तक अपने पास स्मृति स्वरूप रखा। जिन समितियों और एसोसिएशनों में मैं घूमा वे कभी कष्ट-प्रद होती थीं तथा कभी उन अपने समान बहुत-से अन्धों के लिए मन में सहानुभूति उत्पन्न होती थी।

कालेज में अपने प्रथम वर्ष की ग्रीष्म के दिनों को मैंने बर्कले, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में बिताया। मुझे अन्तर्राष्ट्रीय भवन के वातावरण के अनुकूल बनने में और उसकी स्थिति समझने में कुल दो दिन ही लगे। उसी ग्रीष्म में ही मुझे साइमन से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वह दक्षिण अमेरिकन था तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में बस गया था। और कभी भी वह सीधा खड़ा हुआ हो ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। उसका शरीर हमेशा हिलता ही रहता था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह 'परिहयुम्ल' 'सलबा' तथा यहाँ तक कि 'चार्ल्सटन' तक कर रहा हो। स्नानागार ही केवल एक ऐसा स्थान नहीं था जहाँ वह गाता था किन्तु चलते हुए तथा उछलते-कूदते भी उसके गीत सुने जा सकते थे।

गंजे सैम ने मुझे बतलाया था कि उसके बाल चिकने थे और आँखें गहरी काली थीं तथा लान में सोफे पर बैठा हुआ वह बहुत सुन्दर लगता था। अंतर्राष्ट्रीय भवन चारों ओर से लान से घिरा हुआ था। वह अपने आसपास की लड़कियों को आकर्षित करने का प्रयास करता था तथा कभी-कभी उनकी ओर को आँख भी मिचकाता था। सैम, जो ईरान का निवासी था, तीस वर्ष का था तथा किसी अमेरिकन लड़की से विवाह करने की उसकी बड़ी प्रबल अभिलाषा थी। वह साइमन को दक्षिण अमेरिका का रोमियो कहा करता था।

मेरे लिए इस प्रकार के रोमियो से अथवा प्रसिद्ध खिलाड़ियों से मिलना सम्भव नहीं था लेकिन मेरा परिचय साइमन को उसके अर्थशास्त्र के कार्य में एक बार सहायता पहुँचाने के कारण हुआ। इसी कारण अब वह मेरा मित्र बन गया था। एक दिन ग्रीष्म के कार्य कालके प्रारम्भ में मैंने उससे कहा, 'साइमन, तुम बहुत अधिक बाहर जाते हो। तुम मुझे किसी लड़की से क्यों नहीं मिला देते?' मैंने संकोच के साथ कहा तथा अपने कथन को समझाते हुए कहा, 'तुम जानते ही

हो, कालेज में मेरा समय प्रातःकाल आठ बजे से रात के दस बजे तक पढ़नेवालों के साथ इतना अधिक व्यस्त रहता है कि मुझे लड़कियों के साथ मित्रता करने का समय नहीं मिलता।' मेरा चेहरा लाल होता जा रहा था और मैं अपने पर से नियंत्रण खोता जा रहा था 'लड़कियाँ भी पढ़ने आती हैं जो बहुत होशियार तथा सुन्दर भी हैं, लेकिन मैं कार्य तथा मनोरंजन को एक साथ नहीं मिलाना चाहता। तुम मेरे कथन का तात्पर्य समझते हो। मेरा तात्पर्य है कि जब कभी मैं अपने पढ़ने वालों की खोज करता हूँ तो मेरा ध्येय यह होता है, वह यह भली प्रकार समझ जाएं कि उन्हें केवल वही कार्य करना है।' इसके बाद मैंने कुछ मजाक करते हुए कहा, 'मैं उन्हें यह नहीं सोचने देना चाहता कि मै किसी पत्नी की तलाश कर रहा हूँ। मैं लड़कियों को अपने साथ बाहर भी ले गया हूँ लेकिन उसका तात्पर्य कभी भी उनसे बातें करने के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं रहा। मेरा मतलब नेत्रवती लड़कियों से है।'

मैं अभी कुछ और कहता लेकिन साइमन मेरे ऊपर हँस रहा था, उपहासपूर्वक नहीं किन्तु सामान्य हास्य के साथ। 'सुनो, सुनो', मैंने कहा, 'इन गर्मियों में मैं मनोरंजन करना चाहता हूँ तथा जब तक व्यक्तियों से जान-पहचान न हो जाए उनसे मिलना सम्भव नहीं है। क्या तुम इस सम्बन्ध में मेरी कुछ सहायता कर सकते हो ?'

'लेकिन तुम्हारी कल्पना शक्ति...' वह हँसता रहा।

मैंने एक चोट अनुभव की, लेकिन मैं उसे प्रदर्शित नहीं करना चाहता था क्योंकि मैं जानता था, अन्धे व्यक्ति को बहुत अधिक समझौते का रुख अपनाना पड़ता है। मैंने यथाशक्ति परिहास के साथ कहा, 'कृपा कर तनिक गम्भीर हो जाओ, साइमन।'

'यदि मै तुम्हें एक मजाक बताऊँ तो तुम्हें कोई ऐतराज तो नहीं ?' वह बोला।

मैं बड़ा निराश हुआ। लेकिन इसके अतिरिक्त और किया ही क्या जा सकता था।

'एक बार एक विकलांग या कहो आलसी आदमी था जो एक अन्य व्यक्ति के साथ बैठा था। दूसरा आदमी टायलेट में जा रहा था। सुस्त आदमी ने उससे अपने लिए भी जाने को कहा और दयावान होने के नाते उसने स्वीकृति दे दी। जब वापस आया तो सुस्त आदमी ने पूछा, कि क्या उसने वह कार्य किया ? देखो भाई, वह व्यक्ति जो टायलेट गया था, बोला—मैं वहाँ एक बार जा चुका हूँ, अतः

अब तुम्हें वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।' वह अपने ही मजाक पर हँस पड़ा तथा मेरे तो काटो तो खून नहीं।

'देखो ना! इस खेल में क्या है। हर आदमी अपना कार्य खुद करे।'

बड़ी गलत चाल रही, मैं सोच रहा था।

'तुम मुझे सैम की याद दिलाते हो', उसने निश्चयात्मक रूप से कहा।

लेकिन सैम जो स्वयं सुन रहा था, कुछ नहीं बोला। मैं इतने पर भी नहीं छोड़ना चाहता था। मैंने पहले भी अपने अन्तर की आवाज को कुशलतापूर्वक छिपा लिया था, 'ईरानी तथा भारतीय प्राचीन ऐतिहासिक समय से ही मित्र रहे हैं' मैं बोला।

'धन्यवाद' सैम ने कहा तथा उसी समय मुझे खुशी हुई कि मेरी उससे दोस्ती हो गई।

'साइमन, तुम बड़े निर्दयी हो', सैम ने फिर से प्रयास करते हुए कहा।

'मैं प्रयत्न करूँगा', साइमन बोला, 'लेकिन सुना है ना, कि किसी को बैंगन बावले किसी को बैंगन पथ्य। वेद के साथ एक कठिनाई यह है कि यह एक चलती-फिरती विश्वकोप-सा लगता है।'

अब मैं और अधिक चुप नहीं रह सका, 'हाँ, लगता हूँ, तो ?' मैंने कहा।

विश्वविद्यालय में एक नया विद्यार्थी होने के कारण मैं वहाँ किसी को नहीं जानता था। अतः मुझे वाँचने वालों के मिलने में बडी कठिनाई हो रही थी। मैंने अपने प्रोफेसर से कहा कि वह कक्षा में (जो पामोना की किसी भी कक्षा से चार-पाँच गुनी बड़ी थी) इसकी घोषणा कर दें कि एक अन्धा विद्यार्थी अपने लिए वाँचने-वाला चाहता है तथा वह पचहत्तर सेन्ट प्रति घण्टा दे सकता है। लेकिन उन्होंने कुछ ऐसे ढंग से घोषणा की कि मेरे हर घण्टे के अन्त में प्रतीक्षा करने पर भी कोई मेरे पास नहीं आया।

मै अत्यधिक विचलित-सा रहने लगा और बहुत गम्भीरता के साथ किसी और तरीके की बात सोचने लगा। लेकिन चौथे दिन मैं अकस्मात् सिल के पास बैठा था तो उससे बातें करने लगा। वह बहुत विनम्रता से तथा कुछ झिझकते हुए बोल रही थी। तथा पहले तो लगातार वार्तालाप बनाये रखना ही बड़ा मुश्किल मालूम पड़ा। मुझे पता चला कि वह कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की निम्न कक्षाओं में थी तथा सोशियोलाजी में आगे थी लेकिन संगीत तथा साहित्य से

उसे बहुत अनुराग था। 'क्या तुम्हें अभी तक कोई वाँचने वाला मिला ?' उसने शर्माते हुए पूछा।

'नहीं' मैंने कहा।

उसने हिचकिचाते हुए कहा, 'मै यह कार्य करना चाहती थी लेकिन मेरे दाँतों का उपकरण अगले सप्ताह तक नहीं उतरेगा। मैंने सोचा कहीं इससे तुम्हें कठिनाई न हो।'

'ओह! नहीं,' मैंने कहा तथा उस दिन से उसने मुझे वाँचकर सुनाना आरम्भ कर दिया।

सप्ताह के समाप्त होने से पूर्व ही मुझे पता चल गया कि उसका परिवार अमेरिका के सामान्य परिवारों से कहीं अधिक बड़ा है। वह सात सदस्य थे तथा उनमें वह अकेली ही लड़की थी। पिता ने अपने सभी बच्चों के नाम अमेरिका के बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के नाम पर रखे थे। उनके परिवार में हार्वड, येल, प्रिंसटन तथा स्टैनफोर्ड सभी मौज़ूद थे।

सिल ने बतलाया, 'पिताजी मेरा नाम वेलेजली रखना चाहते थे, लेकिन मेरी माता ने मेरे मामले में इस क्रम को खत्म कर दिया।'

यद्यपि उसके पिताजी की एक छोटी-सी बिसातखाने की दुकान ही थी, फिर भी उनका प्रत्येक बच्चा राज्य के विश्वविद्यालय तक की शिक्षा पूर्ण कर चुका था तथा कानून तथा ग्रेजुएट स्कूल भी पूर्ण कर चुका था। 'उन्हें शिक्षा का एक मैनिया-सा था,' सिल ने मुझे बतलाया।

जब सिल छोटी ही थी, तभी उसकी माँ मर गई थी तथा अपने पिताजी के पुनर्विवाह करने तक घर का सारा काम-काज सिल को ही करना पड़ता था। 'मैं बहुत परिश्रम करती थी', वह बोली, 'क्योंकि मुझे घर का ही सारा काम-काज नहीं करना पड़ता था परन्तु दुकान का प्रबन्ध भी करना पड़ता था। जब हमारे समान छोटा-सा व्यापार होता है तो सारे परिवार को काम करना पड़ता है।' लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि परिवार में अकेली लड़की होने के कारण उसकी आदत भी बिगाड़ दी गई थी।

कभी-कभी बीच-बीच में वह रुक जाती थी और कहती थी, 'ओह ! मेरी आवाज बड़ी खराब हो गई है। सच कहती हूँ यह इन उपकरणों के कारण ही है।' मैं इसका प्रतिरोध करता तो वह कहती, 'ओह ! आप बहुत अच्छे हैं। आप देखिये

न, मुझे इन उपकरणों को बहुत समय पहले ही हटा देना चाहिए था। कालेज काल में इन्हें पहनना अच्छा नहीं लगता।'

'आप इस बारे में बहुत अधिक सोचती हैं,' मैंने उससे कहा।

जब उसे दोनों कार्यक्रमों में मेरे अन्य लड़कों से बहुत अधिक पिछड़ जाने का पता चला तो उसने कहा कि उनकी बराबरी पर आने में वह मेरी मदद करेगी।

'मैं ऐसा नहीं चाहता,' मैंने उसे बताया, 'इतने बहुत अधिक आदमी नहीं हैं जो एक-दो घण्टे प्रतिदिन से अधिक बोलकर पढ़ सकें और इसके अतिरिक्त तुम्हें अपना रविवार का समय अपनी दुकान में भी लगाना पड़ता है', मैंने कहा।

वह मेरी इस बात की ओर ध्यान नहीं देती थी तथा एक-दो बार जब कभी वह रात में मेरे लिए देर तक वाँचती थी तो मैं उसे उसकी डोरमीटरी तक छोड़ने जाता था। यहीं से हमारी घनिष्ठ मित्रता का प्रारम्भ होता है।

उसके बाल घने थे तथा शरीर हल्का और सुडौल था। उसकी आवाज बहुत कोमल और मीठी थी जो हमेशा ताजापन लिए रहती थी तथा जो उसकी संवेदनशीलता को बिल्कुल ठीक व्यक्त करती थी। उसकी हँसी धीमी किन्तु स्पष्ट होती थी और वह इस प्रकार चलती थी जैसे उसमें कुछ वजन ही न हो। चाहे हम कन्सर्ट में हों या थियेटर में, सिनेमा में हों अथवा रैस्टोरेन्ट में, वह मुझे बिना किसी झिझक के अपने साथ रखती थी। एक अंधे व्यक्ति का निर्देशन कठिन नहीं होता। क्योंकि मैं ले जाता था उसे न कि वह मुझे। उसे केवल अपना हाथ मेरे हाथ में रखना पड़ता था। तथा भीड़भाड़ से पूर्ण सड़कों पर भी वह कभी विचलित नहीं होती थी। वह मुझे अपने लिए रेस्तराओं में आर्डर पेश करने देती, अपने लिए मुझे द्वार खोलने देती, बस से उतरने में सहायता लेती तथा अपने घर किसी भी अन्य व्यक्ति के समान ही पहुँचाने देती थी।

जब हम कभी पूरे दिन के लिए बाहर रहते और रेस्तराँ में ही दोपहर तथा शाम का खाना खाते थे तो वह अत्यधिक मधुरता से कहती, 'हाथ धोने का समय!' तथा मेज पर बैठकर विभिन्न मोड़ों को इतनी सुन्दरता के साथ बतलाती कि मैं बिना कोई गड़बड़ किये स्वयं ही हाथ धोने के कमरे तक पहुँच जाता था।

'क्या यह अचम्भे की बात नहीं है, मैं यह बिल्कुल ही भूल गई कि तुम्हारे आँखें नहीं हैं।' एक बार वह बोली।

कभी-कभी ऐसी घटनाएँ हो जाती थीं। जिनसे उसे मेरे अंधेपन की बात याद

आ जाती थी। उसके घर पहुँचकर मैं जिस तरह उसकी घण्टी बजाता और उसकी प्रतीक्षा करता उससे उसके साथ रहने वाली लड़कियाँ आश्चर्य में पड़ जातीं। या वह किसी रेस्तराँ में औरतों को बातें करते सुनती कि किसी अन्धे आदमी के साथ सुन्दर युवती को देखकर कितनी खुशी होती है। ऐसी बातें सुनकर वह उन्हें मजाक में उड़ा दिया करती, जैसे कैनेथ या आथर किया करते थे। यदि वह अपने उपकरणों की बहुत चिन्ता करती थी तो मेरे साथ होने पर उतना ही आराम अनुभव करती थी, जिसके कारण ही हमारी मित्रता को एक प्राकृतिक रूप मिलता था जिसमें हमारे कभी-कभी परस्पर होने वाले भद्देपन की स्मृतियाँ पूर्णतया नष्ट हो जाती थीं।

कालेज के समान ही अब भी मेरा पढ़ने का समय बहुत अधिक होता था। लेकिन अन्तर इतना ही था कि प्रति सप्ताह रात में दस बजे मैं उससे मिलता था, जो उस समय के अतिरिक्त होता था जब वह मेरे लिए वाँचती थी। उस समय हम बहुत अधिक पढ़ते थे। इतना कठिन परिश्रम मैंने पहले कभी नहीं किया था। मैं दिन भर पुस्तकालय में बन्द रहता था तथा यह आशा करता रहता था कि शाम को अपने शरीर से सुगन्ध छोड़ती सिल मेरे पास बैठी होगी। तथा उसका कोमल किन्तु स्थिर हाथ मेरे हाथ में होगा। यह सम्बन्ध ऐसा ही था मानो मैंने अपनी दृष्टि फिर पा ली हो और बदले में मुझे अनन्त और अत्यधिक विशाल देश घूमने के लिए मिला हो। और तब पढ़ने का सारा कार्यक्रम भूल जाता था।

सैम के किसी लड़की को अपने साथ ले जाने में उसकी किस्मत उसका साथ नहीं देती थीं। वह भी साइमन के समान ही लान में बैठा रहा करता था। खाने के कमरे में वह किसी सुन्दर लड़की के साथ बैठने की तलाश में रहता था लेकिन जहाँ तक उसका सम्बन्ध है वे उसकी ओर एक जड़ चित्र के समान भी आकर्षित नहीं होती थीं। कुछ क्षणों की जान-पहचान के पश्चात् ही वह उनके पास ऊपर जाकर उनसे मिलने का प्रयास करता था तथा उनसे मिलने के लिए तिथियों का निश्चय करने का प्रयास करता था लेकिन वे उसका निमन्त्रण अस्वीकार कर देती थीं।

'इन अमेरिकन लड़कियों को समझने में मैं असमर्थ हूं।' उसने एक बार मुझ-से कहा, 'मैं इलैक्ट्रिक इन्जीनियरिंग के डाक्ट्रेट की डिग्री के लिए पढ़ रहा हूँ। तथा एक इंसट्रक्टर के बराबर वेतन ले रहा हूं। मेरे पास अपनी कार भी है तथा

इसके अतिरिक्त इन लड़कियों को जहाँ ये चाहें वहाँ घुमाने के लिए काफी पैसा है। लेकिन फिर भी···शायद क्या वह सब कुछ इसलिए है कि मैं एक विदेशी हूँ।'

वह मुझसे अपने कथन की पुष्टि करवाने के लिए रुका लेकिन मैं केवल सुनता रहा। 'मेरी यह बहुत प्रबल इच्छा है,' उसने कहा, 'कि मैं एक अमेरिकन लड़की से विवाह करके यहीं रहूँ। और मुझे करना क्या पड़ता है ? प्रत्येक शनिवार की रात को घर रहकर रेडियो सुनता हूँ या बाहर जाकर शराब पीता हूँ।'

'काश ! मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकता, सैम।' मैंने कहा, 'मैं सिल से कहूँगा लेकिन वह बहुत शर्मीली है। और इसके अलावा ग्रीष्म के कार्यकाल के बहुत-से विद्यार्थियों को वह नहीं जानती। सम्भव है इस सम्बन्ध में वह कुछ कर सके।'

उस दिन रात को सिल से मैंने इसका जिक्र किया और पूछा कि क्या वह उसके लिए कुछ कर सकती हैं ? 'सम्भव है,' उसने कहना प्रारम्भ किया, 'मैं अपनी साथ वाली लड़की से यह प्रबन्ध करा सकती हूँ।' उसके साथ कुछ ही समय पहले से एक लड़की ने रहना शुरू कर दिया था। 'लेकिन वह अत्यधिक भावुक तथा सुन्दर है और मुझे नहीं मालूम सैम कैसा लगता है।' वह बोली।

'इसे गोली मारो जी,' मैंने कहा, 'तुम्हें यह सब जानने की कोई जरूरत नहीं है, बस उसके लिए तारीख निश्चित करा दो।'

उसके साथ की लड़की ने स्वीकृति दे दी तथा सैम ने मुझे और सिल को अपने साथ चलने का हठ किया। पहले हमें विश्वविद्यायल में एक नाटक देखने के लिए जाना था और फिर सैम की कार में बैठकर कुछ खरीदारी करने जाना था।

सारे हफ्ते सैम मुझसे लड़की की एक झलक दिखाने का अनुरोध करता रहा जिसे वह बाहर ले जाने वाला था। वह बहुत घबराया हुआ था। यह घबराहट प्रथम बार मिलने के लिए नितान्त अनुपयुक्त थी, किन्तु एक दूल्हे के लिए उपयुक्त थी। अब उसने डाइनिंग रूम में लड़कियों का पीछा करना छोड़ दिया था और आभार प्रदर्शन करने के लिए मेरे पास ही बैठना प्रारम्भ कर दिया था। मैं सोचा करता था कि ऐसा करके मैंने ठीक किया है या नहीं, क्योंकि सैम की ओर से मुझे शान्ति नहीं मिल रही थी। उधर साइमन बार-बार यह कह रहा था कि वह भी सैम की मंगेतर को देखना चाहता है। उसको जरा उभारने के लिए वह बोला कि सैम उसके समान विद्वान् नहीं है। उसने कहा कि वह उस लड़की को खेल दिखाने

भी तो ले जाएगा जिससे सैम का क्रोध कुछ बढ़े।

रात आई तो सब कुछ ठीक-ठीक होता रहा। सैम और मैं लड़कियों को लेने पहुँच गए तथा मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था, वह लड़की सैम को भी ठीक प्रतीत हो रही थी क्योंकि वह दोनों बड़े आराम से बातें कर रहे थे। जब साइमन उसे लेने के लिए आया तो वह अपने होठों में ही कुछ फुसफुसाया शायद सैम को अपना निर्णय बतलाया हो। इसके उपरान्त स्थिति बिगड़ती चली गई। कार में एक अजीब कष्टदायक शान्ति फैल गई। स्थिति को सुधारने के लिए मैं और सिल कुछ नहीं कर सके। मुझे सैम के साथ एक क्षण भी बैठने से डर लगा रहा था, इसलिए जब सारा कार्यक्रम समाप्त हो गया तो सिल के पास कुछ देर अधिक ठहरा।

अगले दिन प्रातःकालीन नाश्ते पर बेचारे सैम पर ही यह सब मुसीबत आई। 'वह बिल्कुल एक भेड़ के समान मालूम होती है,' साइमन बोला तथा साइमन की लड़की-मित्र सिल के कमरे में रहने वाली लड़की का वर्णन सुनकर हँस रही थी।

'वह भी कोई एक बकरे से अच्छा प्रतीत नहीं होता,' उसने मुझे धीरे से कहा, 'तुमने वास्तव में उन दोनों का बड़ा अच्छा जोड़ा मिलाया है।'

'किसी को बैंगन बावले, किसी को बैंगन पथ्य ! वेद।' और फिर साइमन ने सैम से कहा, 'तुम्हें किसी अन्धे व्यक्ति से किसी लड़की से मुलाकात कराने के लिए नहीं कहना चाहिए था।'

मेरे विचार से यद्यपि सैम उस लड़की को फिर बाहर ले जाना चाहता था लेकिन साइमन के कारण उसने ऐसा नहीं किया। समर स्कूल के उन छः सप्ताहों में मैं इतने थियेटरों में गया जितना पहले कभी, जब से अमेरिका में आया था, नहीं गया था। सिल और मैं साथ-साथ जाते रहे। ऐसे परस्पर एक दूसरे के निकट आते चले गए। यह क्रम उस कार्य-काल की अन्तिम रात तक रहा जब आरेगन से सिल के मित्र आ गए।

खूब बोलने वाली दो लड़कियाँ और एक लड़का था। हम सब साथ मिलकर सिनेमा देखने गये। चलने की पटरी तंग होने के कारण लड़कियाँ आगे-आगे चल रही थीं तथा मैं और जौन उनके पीछे-पीछे। मुझे चलते हुए जौन के साथ बात-चीत न होने का बड़ा दुःख हो रहा था और वह अभी मेरे अन्धेपन के कारण बड़ी कठिनाई-सी अनुभव कर रहा था। मुझे इस सबके कारण बड़ी घबराहट-सी हो रही थी। मुझे उसका हाथ पकड़ लेना चाहिए था, क्योंकि मैं घबराने पर यही

करता हूँ। इस प्रकार दूसरे आदमी को भी सहूलियत होती है। लेकिन मैं कुछ अभिमान-सा अनुभव कर रहा था अथवा हो सकता है मैंने अत्यधिक सुस्त होने के कारण ही कुछ न कहा हो।

हमें सिनेमा के लिए विलम्ब हो गया था अतः अब हम तेजी से चल रहे थे। मैं सड़क की ओर चल रहा था और होशियारी से लैम्प पोस्टों को बचाने का प्रयास कर रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सड़कों पर लैम्प पोस्ट गलत स्थानों पर लगे हुए हैं।

'जल्दी चलो। लड़कियाँ हमें पीछे छोड़े जा रही हैं।' वह बोला। तथा हमने तेज कदमों से चलना प्रारम्भ कर दिया। जब हम एक चौराहा पार कर रह थे तो मैंने एक मोटर ट्रक के आने की आवाज सुनी जिसने बाकी सारी आवाजों को दबा-कर मेरी कल्पना-शक्ति को अव्यवस्थित कर दिया। मैं सीधा दौड़ा और जब मेरा सिर लैम्पपोस्ट से टकराया तो मेरी सारी रीढ़ की हड्डियों में झनझनाहट पैदा हो गई।

लौह स्तम्भों से मैं पहले भी बहुत बार टकरा चुका था लेकिन इस बुरी तरह कभी नहीं। मैं सोच रहा था कहीं माथे से खून न निकलने लगा हो लेकिन वह केवल सुन्न हो गया था और मैंने दुखी होकर अपना हाथ वहाँ लगाया। मुझे अन्दरूनी कष्ट की तो कोई चिन्ता नहीं थी लेकिन बाहर की ओर चिन्ह हो जाना एक दूसरी बात थी। मैं वहाँ, ट्रक, ड्राइवर तथा मैकैनिक से ऐसी मोटर के लिए घृणा करता हुआ चुपचाप मूर्ख बना-सा खड़ा रहा। तभी किसी ने कोहनी से मुझे आधा कदम आगे सरका दिया। कोहनी की चोट प्रबल नहीं थी लेकिन यह उस माँ के समान थी जो दुखी होकर अपने बच्चे को अपना प्रियपात्र तोड़ने के लिए सब अतिथियों के सामने ही धक्का दे देती है। मुझे इस बात का निश्चय नहीं था कि यह सिल ही थी क्योंकि सभी अब तक मेरे चारों ओर इकट्ठे हो गए थे और मैं चुपचाप सीधा खड़ा हुआ था।

'यह कुछ नहीं है। चलो चलें।' मैंने कहा।

लेकिन सिल का हाथ रूमाल लिए हुए ऊपर उठ चुका था जिसमें से उसके हाथों के लोशन की सुगन्ध आ रही थी। ट्रक का इंजन अभी भी चल रहा था। मैंने एक झटके के साथ उसका हाथ हटा दिया और अकेले ही सड़क पार करने लगा।

'यह बहुत खराब हुआ' सिल बोली ।

'मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है,' इस कथन के साथ हम सब थियेटर में चले गए।

अन्धेरे में मैंने अपना रूमाल निकाला और माथे को दबाना शुरू कर दिया लेकिन उसमें तकलीफ हो रही थी। सिल के अगल-बगल दूसरी लड़कियाँ थीं। मैं बीच की सीट पर बैठा हुआ था। चलचित्र मेरी बिल्कुल भी समझ में नहीं आया। जब खेल समाप्त हुआ तो मैं सिल के पास हो गया और उससे बातें करने का प्रयास करने लगा। लेकिन उसकी मित्र उससे चित्र के सम्बन्ध में बातें कर रही थीं और एक बार फिर लड़कियों को आगे करके हम डौरमीटरी की ओर चल पड़े। इस बार जौन सड़क की ओर चल रहा था और उसने मुझे मजबूती से पकड़ लिया था।

किसी को मेरी चोट के बारे में कुछ भी न पूछने का कारण मेरे विचार से यह था कि एक लड़की ने अपने होठों पर अँगुली रखकर मना कर दिया था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था जैसे मैं उन सबसे अलग कर दिया गया हूँ तथा वे आपस में बातें भी इशारों मे कर रहे हों, चाहे कोई हाथों के इशारों को समझने में कितने ही कुशल क्यों न हो और घूमने फिरने के चाहे वे कितना ही अभ्यस्त क्यों न हो, फिर भी बिजली के खम्भों की गिनती में चूक हो ही जाती है।

मेरी यह इच्छा थी कि वे अपनी बातचीत का सिलसिला सिनेमा के सम्बन्ध में छोड़कर किसी और बारे में करें। जिससे मैं अपने को डाँटे गये बच्चे के समान समझना बन्द कर दूं। लेकिन मैंने एक रोते हुए बच्चे के समान मानसिक कल्पना की उस मोहावस्था के सन्मुख घुटने टेक दिए। जिस प्रकार खाई में पड़ा हुआ व्यक्ति कठिनाइयों से पराजित होकर अपने में ही खो जाता है।

जब मैंने उनके निकट आकर उनकी बातचीत में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया तो ऐसा प्रतीत होता था जैसे जौन ने सब लड़कियों को अपने साथ सैर के लिए चलने पर राजी कर लिया था। उन सबको सिल की डौरमीटरी में अपनी उप-स्थिति अंकित कर खिड़की में से खिसक जाना था। यह सभी कुछ सिल ने पहले कभी नहीं किया था।

'जब तुम सब यह करो तब तक मैं वेद को अन्तर्राष्ट्रीय भवन तक पहुँचा आऊँगा।' जौन बोला।

'वह हमारे साथ आएगा,' सिल ने कहा। लेकिन उसकी किसी मित्र ने भी उसके प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया।

'मेरी तबियत ठीक नहीं है' मैंने कहा। मेरा गला बिल्कुल खुश्क हो गया था।

'सिल ! उस पर सैर करने के लिए दबाव मत डालो।' उसके दाईं ओर वाली लड़की ने कहा। इसके बाद मेरीउपस्थिति को डौरमीटरी से निकलने के प्रबन्ध पर विचार-विमर्श में भुला दिया गया।

लड़कियाँ अब कमरे के अंदर चली गई। और मुझे उस कमरे के द्वार पर चहलकदमी करते हुए छोड़ दिया। जैसे ही मैं उसकी दृष्टि से ओझल हुआ, मैं जान-बूझकर धीरे-धीरे टेलीग्राफ एवन्यू की ओर चल दिया। कल सिल को सान-फ्रांसिसको के दूसरी ओर घर चले जाना था। मुझे वर्कले में एक बार और ग्रीष्म के कार्यकाल में ठहरना था लेकिन पहले की तुलना में यह अत्यधिक शुष्क तथा नीरस होगा। सिल से निश्चय ही मुझे फिर भी मिलना था लेकिन अब उस रूप में नहीं।

मैं सैम तथा उसके गंजे सिर के बारे में विचार कर रहा था। वह अब तीस वर्ष का हो गया था और अकेलापन अनुभव करता था। घर से बहुत दूर होने के कारण कोई भी उससे प्यार करने वाला नहीं था और न ही कोई ऐसा था जिसे वह प्यार करता। साइमन भी अपने घर से बहुत दूर था तथा उसी के समान वह भी वापस नहीं लौटना चाहता था। लेकिन मेरी स्थिति उन दोनों से ही भिन्न थी। क्योंकि मैं वापस स्वदेश लौटना चाहता था। मुझे आश्चर्य होता था यह सोचकर कि न मालूम और कितने सैम वहाँ थे जो गलतियाँ कर रहे थे, जिनके सिर गंजे थे—अथवा जो बकरों के समान दिखलाई देते थे अथवा जो सीधे होकर चलने में भी असमर्थ थे क्योंकि वे अपने एकान्त को मदिरा के नशे में भुला देना चाहते थे।

जब मैं टेलीग्राफ ऐवन्यू के पास पहुँचा तो मैंने धीरे-धीरे आते हुए वायलिन के संगीत के स्वर सुने। वह दूर से आ रहे थे तथा अस्पष्ट थे, लेकिन फिर भी अत्यधिक मधुर और आकर्षक थे, ठीक उन बाँसुरियों की तानों के समान जो मैं मरी हिल्स पर सुना करता था। उन पहाड़ियों के वह स्वर वायलिन के इन सधे हुए तथा संतुलित स्वरों की अपेक्षा अधिक निष्कपट होते थे। मैं कैफे के दरवाजे पर पहुँच गया। कुछ थोड़े-से लोग दरवाजे पर इकट्ठे हो रहे थे तथा इसमें कोई भी सन्देह नहीं था कि वायलिन बजाने वाला अन्दर था।

संगीत से आन्दोलित होकर मैंने पूछा, 'कौन बजा रहा है ?'

'एक सुन्दर लड़की वायलिन बजा रही है,' किसी ने कुछ देर के पश्चात् उत्तर दिया।

एक दूसरे आदमी ने भी टिप्पणी करते हुए कहा, 'वह कैफे के बन्द होने पर प्रतिदिन अभ्यास करती है।'

'कोई अन्दर नहीं जा सकता क्या ?' मैंने पूछा।

'दरवाजा बन्द है', उत्तर मिला।

मैं उन लोगों के समूह से एक ओर को हो गया। धीरे-धीरे वे लोग चले गए लेकिन वायलिन अभी भी बज रहा था। मैंने सोचा, सम्भव है वे मुझे अन्दर जाने दें। क्योंकि अब मैं अकेला था अतः मैंने दरवाजे पर थपकी दी। पहले धीरे से लेकिन बाद में तनिक जोर से तथा अन्त में बहुत जोर से लेकिन उसका इससे अधिक कोई असर नहीं हुआ कि मेरे संगीत सुनने में कुछ विघ्न हुआ। उस समय सिल से भी मिलना उसी प्रकार असम्भव-सा प्रतीत होता था, जैसे इस वायलिन बजाने वाली से मिलना दुष्कर हो रहा था। मैं अगले दिन और उससे अगले दिन भी आकर उसका संगीत उसी प्रकार सुन सकता था लेकिन सिल का और मेरा 'कल' जा चुका था। इसका उचित उत्तर मुझे उस समय नहीं मिल रहा था। लकिन मैं जानता था, उसके मित्रों के आने से एक अनोखा परिवर्तन आ गया था, यह परिवर्तन लैम्प पोस्टों के समान ही दृढ़ तथा ठोस था।

मैं वहीं द्वार पर लगभग एक घण्टा और खड़ा रहा। ठीक उस समय तक, जब तक कि वायलिन एक ओर नहीं रख दी गई, और फिर मेरी घड़ी की सुइयों ने प्रातःकाल के प्रारम्भ की सूचना दी तथा मैं सीधा सिर झुकाए अन्तर्राष्ट्रीय भवन की ओर चल दिया। अब मुझे अपने चारों ओर की घटनाओं का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था।

'ऐ ! कौन है ?' मैंने अपने पीछे से सुना, लेकिन मैं उसी प्रकार आगे चलता रहा।

'ठहरो !' एक आदमी फिर चिल्लाया। मैं बिना पीछे मुड़े हुए आगन्तुक की प्रतीक्षा करने लगा।

'तुमने शराब पी है', उस आवाज ने आज्ञा भरे स्वर में कहा।

'आपको इससे क्या मतलब ?' मैंने पुनः चलने का उपक्रम करते हुए उत्तर दिया।

आगन्तुक ने मेरा हाथ सख्ती के साथ पकड़ लिया तथा मैं इतना दब-सा गया कि मैं प्रतिरोध अथवा क्रोध भी प्रदर्शित नहीं कर सका। एक क्षण बाद ही पुलिस-

मैन क्षमा माँगने लगा, 'श्रीमन्, मेरा विचार था कि आपने शराब पी हुई है। मुझे मालूम नहीं था···हमें ऐसा नहीं करना चाहिए···लेकिन मैं आपसे सवारी में बैठने का आग्रह करूँगा।'

मैं अब इतनी अधिक कमजोरी अनुभव कर रहा था कि इन्कार भी नहीं कर सका तथा वह मुझे अपनी पुलिस की कार में बैठाकर अन्तर्राष्ट्रीय भवन की ओर चल पड़ा।

'के' और प्रामीथियस २६

ग्रीष्म ऋतु समाप्त हो चुकी थी तथा मैं कालेज के जाने-पहचाने वातावरण में लौट आया था, जहाँ पुरानी जान-पहचान को फिर से ताजा करना था और पुराने मित्रों से फिर मिलना था। इनमें प्रामीथियस का व्यक्तित्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण था जिसने मेरे कालेज के पहले दिन ही अपने व्यक्तित्व की मेरे मस्तिष्क पर एक अमिट छाप लगा दी थी। मुझे 'फ्रैशमैन डिनर' की खूब अच्छी तरह याद है।

खाने के दौरान सारी बातचीत उस समय तक निराशाजनक तथा अनियमित-सी रही, जब तक हमारे एक सहपाठी ने सामने वाली दीवार पर बनी प्रामीथियस की ओर सबका ध्यान आकर्षित नहीं किया। उस क्षण भर के मौन में मैंने यह भली प्रकार जान लिया था कि सबकी आँखें दीवार पर बने चित्र की ओर लगी हैं। तब उसने उस चित्र की कथा बतलानी शुरू की।

'ऐसा प्रतीत होता है, जब औरोजको दीवार के इस चित्र में रंग भर रहा था तो मेरे विचार से संरक्षक मंडल प्रामीथियस के इस नंगे चित्र से सबसे अधिक घबराया होगा। उन्होंने इस चित्र की तीव्र निंदा की थी और वह इस पर प्लास्टर करवा देना चाहते थे। यदि विद्यार्थियों का तीव्र प्रतिरोध न होता तो औरोजको इस दीवार के अपने चित्र को कभी भी पूर्ण नहीं कर सकता था।'

लेकिन विद्यार्थियों की दिलचस्पी चाहे कितनी ही अधिक क्यों न रही हो फिर औरोजको को डाइनिंग रूम की समस्त दीवार पर चित्र बनाने की अपनी योजना को छोड़ना पड़ा। औरोजको ने जब क्लेयरमान्ट छोड़ा तो उसकी आर्थिक स्थिति अत्यधिक विकट थी और केवल डार्टमाउथ ने उसे अपनी कला को प्रकट करने का अवसर प्रदान किया। यही कारण है कि उसके बनाये गए दीवारों पर जो रंगीन चित्र पामोना की शान हो सकते थे, आज हैनोवर की शोभा बढ़ा रहे हैं।

'यद्यपि दीवार के इस चित्र को नियमित रूप से साफ किया जाता है क्योंकि कालेज अब इसे अपनी एक अमूल्य थाती समझता है परन्तु फिर भी संरक्षक मण्डल

औरोजको के प्रामीथियस के प्रति उचित सम्मान नहीं प्रकट कर रहा है।' यह विद्यार्थी कहता रहा।

हम सभी विल्कुल शान्त थे और मैं सोच रहा था, काश ! कहीं मैं उसे देख सकता। किसी ने तभी प्रामीथियस की प्रचलित कथा के बारे में पूछा तथा उसके महत्व को मालूम करना चाहा तथा उसी विषय पर एक मनोरंजक विचार-विमर्श प्रारम्भ हो गया।

कुछ माह पश्चात् मैं एक बार उस दीवार के चित्र के पास वाले दरवाजे से निकल रहा था, 'के' के कन्धे से मेरी कोहनी छू गई तथा उसे रोककर क्षमा माँगने लगा तो हमारी बातों का सिलसिला शुरू हो गया। वह पूर्ण मनोयोग के साथ उस चित्र की व्याख्या कर रहा था। उस चित्र की ओर देखते हुए वह अपने मस्तिष्क के अनुसार उस चित्र तथा मशाल का अर्थ समझा रहा था। यद्यपि मेरे लिए अपने मस्तिष्क में चित्र की रूप-रेखा निर्धारित करना अत्यधिक कठिन था फिर भी 'के' अपने विचार इस ढंग से व्यक्त कर रहा था जिसके कारण मेरे मन पर एक स्थायी प्रभाव पड़ रहा था तथा जिस प्रकार पहले किसी भी विद्यार्थी ने व्यक्त नहीं किये थे। अन्त में प्रामीथियस, जो ज्ञानरूपी मशाल को लाया था तथा जिसने मिट्टी से मनुष्यों का निर्माण किया था, की मूर्ति मेरे सम्मुख सजीव हो उठी। इस प्रकार 'के' से मेरा परिचय हुआ जिसके साथ जैसे-जैसे समय बीतता गया मेरी मित्रता बढ़ती गई तथा अन्त में वह मेरा पक्का मित्र हो गया।

यद्यपि 'के' की पृष्ठभूमि में मुझे कोई एक सम्बद्ध कथा नहीं मिली। लेकिन खण्ड रूप में कभी उससे तथा कभी उसके जापानी मित्र काज से सुनकर मैंने उसके सम्बन्ध में पता लगा ही लिया। वह एक निसी था तथा समय पर उसे जापानी तथा अमेरिकन सभ्यता प्रभावित करती रही थी। यद्यपि अपनी माँ के द्वारा बौद्ध मत की प्रबल तथा गहन शिक्षा अपनी महान सभ्यता के सिद्धान्तों में उसे मिली थी। वह जापान को भली भाँति जान चुका था तथा वह जीवन भर एक ऐसे सम्प्रदाय में रहा था जो अमेरिकनों से अलग कर दिया गया था। वह कहा करता था, 'मेरी जाति जापान को आदर्श बनाने का प्रयत्न करती है।' वह कभी उन वर्षों के बारे में बात नहीं करना चाहता था जब उसे पर्ल हार्बर की घटना के बाद एक अरुचिकर कैम्प में रहने के लिए बाध्य होना पड़ा था। वह केवल अपनी शिक्षा के अन्तराल के बारे में बताता था। 'निस्संदेह हमारी कक्षाएँ होती थीं,' उसने एक बार बतलाया,

'जो बाहर खुली हवा में लगती थीं, लेकिन वहाँ हमने कोई विशेष कार्य कभी नहीं किया। हम ऐसा नहीं कर सकते थे। मैं बच्चा तो अवश्य था और सोचा करता था कि अमेरिकन मुझे मार डालेंगे। लेकिन फिर भी मैं उनकी विजय की कामना किया करता था।

'जहाँ तक मुझे याद था कैम्प में एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसे दुःख हुआ है। अथवा जिसकी आन्तरिक भावनाएँ जापानी उद्देश्यों के साथ हों। फिर भी', वह बोला, 'जब तक हमारे शरीर में जापानी खून है हम सभी शंका के पात्र थे।'

कैम्प से छूटने के पश्चात् वह एक अमेरिकन महिला का घरेलू काम-काज करने वाला नौकर हो गया। 'नहीं तो मैं भूखा मर गया होता', वह बोला। वह इस महिला के बारे में इस प्रकार बातें करता था जैसे वह एक दूसरी मां हो जिसके प्रति वह उतना ही अहसानमन्द था जितना उसके प्रति जिसे उसको इस दुनिया में लाने का श्रेय प्राप्त हो।

'क्या आप सोच सकते हैं' उसने एक बार मुझसे कौतूहलमय आश्चर्य के साथ कहा, 'वह मेरी शिक्षा में उतनी ही अधिक रुचि लेती थी जितनी मेरी मां लेती और यद्यपि मैं उसके घर एक घरेलू नौकर के रूप में आया था। वह मुझे कालेज में पढ़ाना चाहती थी तथा सम्भव है इसके बाद की पढ़ाई भी वह करातीं। यह आश्चर्यजनक है, जब मुझे अपनी मां के बारे में स्वप्न आते हैं और इसके बाद सब कुछ गड़-बड़ हो जाता है।'

'दो माताओं के साथ किसी की भी यही हालत होती है।' और इस बारे में मैंने मजाक करते हुए कहा, 'तुम उनमें से एक को अपनी जापानी मां कह सकते हो और दूसरी को अमेरिकन मां।'

'यह सत्य हैं', उसने दृढ़ता के साथ कहा, 'ठीक इसी ढंग से मैं भी उनके बारे में सोचता हूँ। लेकिन···' वह आगे नहीं बोल सका।

अपनी दोनों माताओं के द्वारा की गई आर्थिक सहायता से उसने अपनी हाई स्कूल तक की पढ़ाई समाप्त कर ली थी और एक जूनियर कालेज में प्रवेश किया था। इसमें कोई शक नहीं कि वर्ष भर उसे कई अरुचिकर स्थानों पर कार्य करना पड़ा था। गर्मियो में वह टमाटर तोड़ा करता था और अगले वर्ष के खर्च के लिए पर्याप्त धन कमा लेता था। 'मेरा भाग्य बहुत अच्छा था', वह मुझसे कहने लगा

'कि जूनियर कालेज में इतिहास के प्रोफेसर मुझमें रुचि लेने लगे और उन्होंने मुझे पामोना में दाखिल होने में मदद की।'

'मैं पामोना में अट्ठारह वर्ष की अवस्था में एक बिल्कुल अनजान आदमी के रूप में आया था तथा उसी वर्ष एक जूनियर के रूप में मुझे यहाँ दाखिला मिल गया।' यद्यपि वह मुझसे दो वर्ष छोटा था फिर भी वह मुझसे दो वर्ष आगे था। फिर भी वह मुझसे कहा करता था, 'वास्तव में मैं तुमसे दो वर्ष पीछे हूँ। यह सब उसी कैम्प के कारण है। यदि वह बीच में बाधक के रूप में न आया होता तो मैंने अब तक ग्रेजुएशन कर लिया होता।'

उसकी आयु उसके लिए अक्सर चिन्ता का विषय बनी रहती थी। 'क्योंकि अपने बड़े परिवार को पालने के लिए मेरी माँ को अपने पति की मृत्यु के पश्चात् स्वयं काम करना पड़ता था। वह बहुत कमजोर और दुबली-पतली स्त्री है। मुझे उन्हें कार्य करते देखकर शर्म आती है लेकिन मैं कर ही क्या सकता हूँ ?' यह कहते समय 'के' की आँखों में आँसू छलछला आए थे। और फिर कुछ समय पश्चात् कहता, 'मैं उन्हें एक सेंट भी नहीं दे पा रहा हूँ। मेरी माँ कालेज की पढ़ाई में मेरी सहायता करती हैं तथा मेरी बहनों को भी कार्य करना पड़ता है। वास्तव में मुझे उनकी सहायता करनी चाहिए।'

'के' को यह याद नहीं था कि उसने सिगरेट पीना कब आरम्भ किया था। लेकिन अब बार-बार प्रयास करने पर भी वह इस आदत को नहीं छोड़ सकता था और इसे न छोड़ सकने के कारण उसे चिन्ता बनी रहती थी। उसे अक्सर अपनी बहन के पास आर्थिक सहायता के लिए जाना पड़ता था जो लास एन्जिल्स में सेक्रेटरी का काम करती थी जिससे वह यदा-कदा खर्च करने को पैसे पा सके। 'वह मेरी माँग के सम्बन्ध में इतनी अभ्यस्त हो गई है कि जब कभी भी मैं उनके पास जाता हूँ वह चुपचाप मेरी जेब में कुछ खिसका देती है, जिससे मुझे मांगने का दुःख न हो। जापान में हम कभी भी इस प्रकार बहन से रुपया नहीं ले सकते थे।'

इन विरोधी प्रभावों के कारण अथवा अत्यधिक कठिनाइयों और विपत्तियों के कारण वह बहुत एकान्त प्रेमी व्यक्ति हो गया था। ये विपत्तियाँ सम्भवतः उस पर कैम्प-काल में आई थीं जिनके बारे में वह कुछ भी नहीं बतलाना चाहता था। काज तथा मैं—हम दो उसके मित्र थे तथा हमें भी वह अपने अन्तर की बात नहीं बतलाता था। जब कभी वह किसी लड़की को बाहर बुलाना चाहता था और

वह उसके साथ नहीं जाती थी तो हम किसी न किसी प्रकार इसका पता लगा ही लिया करते थे।

मैंने एक बार उससे पूछा कि वह अक्सर लड़कियों को बाहर क्यों नहीं बुलाता। 'इस प्रकार तो,' मैं बोला, 'औसत का नियम तुम्हारे पक्ष में हो जायगा।'

'मैं स्वयं नहीं जानता क्यों', उसने सज्जनता के साथ उत्तर दिया, 'किसी कारणवश जब कभी मैं अपनी खिड़की के पास बैठता हूँ तथा नीचे हँसती हुई लड़कियों को देखता हूँ अथवा तैरने के तालाब से उन्हें हँसते हुए सुनता हूँ तो उन्हें अपने से बहुत दूर पाता हूँ।'

'के' को अमेरिका बहुत पसंद था और उसे इस बात का विश्वास हो गया था कि यदि वह जापान में होता तो अपने परिवार के साधनों को देखते हुए कभी भी कालेज तक की पढ़ाई नहीं कर सकता था। इस देश में काम भी कर सकता था और साथ ही कालेज भी जा सकता था। 'यहाँ लोग श्रम को घृणा से देखने के बजाय उसका सम्मान करते हैं और इसका मूल्य जानते हैं।' वह कहता कि यद्यपि यदा-कदा यह चिन्ता होती है कि उसे वह नौकरी नहीं मिल सकती जिसे वह चाहता है और जापानी होने के कारण कभी-कभी तो रहने के लिए एक कमरा भी मिलना कठिन है। ऐसे विचार थे यहाँ जापानियों के बारे में, फिर भी अमेरिका से उसे कोई शिकायत नहीं थी। उसका कथन था, 'यदि जापानी अमेरिका के स्थान पर होते तो सम्भवतः वह गैरजापानियों के प्रति अधिक अत्याचारी होते।'

एक बार घर आती बार मुझे इस कारण काफी प्रसन्नता हुई, क्योंकि मैंने एक पाकिस्तानी की काफी सहायता की थी। मैंने अपने उस पाकिस्तानी मित्र के लिए विशेष कटौती पर एक टाइप की मशीन खरीदवाई थी जो उस समय तक इस देश में कालेज में पढ़ रहा था तथा उसके भुगतान में भी सहायता की थी।

'तुम जानते हो', मैंने 'के' से कहा, 'पहली बार मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि मैं उनमें से ही एक हूँ। तथा अपना घर और सब कुछ लुट जाने की भी मुझे उनसे कोई शिकायत नहीं है।'

वह मेरे बिस्तर से उठ गया तथा खूब कसकर मुझसे हाथ मिलाया तथा मुझे इस बात की प्रसन्नता थी कि हम एक दूसरे को अधिक समझ रहे थे।

'के' ने कालेज में इतिहास में विशेषता प्राप्त की थी क्योंकि वह कहता था, 'इस प्रकार समय तथा स्थान विशेष की परिधि के बाहर जाया जा सकता है।'

'हाँ, इस प्रकार सभी प्रतिबन्धों तथा सीमाओं को समाप्त किया जा सकता है।'

वह अमेरिकन-जापानी सम्बन्धों को सुधारने के लिए कार्य करना चाहता था। 'केवल यदि मेरे मस्तिष्क में इतना कार्य करने की क्षमता होती' वह अत्यधिक शिष्टता के साथ कहा करता था। उसमें कभी भी अपने अन्दर आवश्यकता से अधिक विश्वास नहीं होता था। शायद इसलिए कि वह अपने व्यक्तित्व के बारे में भी काफी कुछ अनिश्चित-सा था। 'मेरी पृष्ठभूमि जापानी है, लेकिन शिक्षा अमेरिकन है', उसने मुझे याद दिलाया। अमेरिकन इसलिए क्योंकि उसने कभी जापानी अथवा बौद्ध सभ्यता के बारे में विषय नहीं चुने थे, बल्कि उसने केवल पश्चिमी सभ्यता को पढ़ा था।

इतिहास के अपने समस्त अध्यापकों में वह डा० मेयर को सबसे अधिक पसंद करता था। श्री मेयर वर्तमान जर्मनी तथा मध्य योरप के इतिहास के विशेषज्ञ थे। तथा इस विशेषता ने उन्हें अल्प मत के लिए असाधारण रूप से भावुक बना दिया था।

'के' ने एक बार मुझे बतलाया, 'उन्हें इस बात का ज्ञान है कि कब जापानी-अमेरिकन समस्या के प्रश्न को उठाना चाहिए और कब नहीं तथा कैसे ?'

अपने अन्तिम वर्ष में 'के' ने ग्रेजुएट स्कूल के लिए बहुत परिश्रम किया था। उस बार उसके विभाग में बहुत कम सीनियर थे। उनमें से दो को विदेश अथवा पूर्व की ओर जाने के लिए फैलोशिप मिल गया, लेकिन 'के' को नहीं मिला। केवल क्लेयरमाण्ट स्कूल से ही उसे अवसर मिला, जहाँ उसकी ट्यूशन फीस स्कूल ने अपनी ओर से देने का वायदा किया था। लेकिन आवास और खाने की व्यवस्था अब भी उसके लिए समस्या बनी हुई थी। उसने डीन के सम्मुख सहायक रेजिडेंट-शिप के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। 'मैं उनसे बातचीत नहीं कर सका। शब्द मुख में आकर भी बाहर नहीं आ सके। मुझे उनके दफ्तर में नहीं जाना था।'

'सभी इंटरव्यू इसी प्रकार खराब होते हैं', मैंने 'के' से कहा, 'कोई चिन्ता मत करो, वह तुम्हें मिल जायगी।'

लेकिन उसे अपनी नौकरी मिलने में मेयर की प्रबल सहायता मिल गई तथा वह अगले वर्ष की पढ़ाई के लिए बिल्कुल तैयार हो गया।

वह घर गया और वहाँ जाकर उसने अपनी माँ को बताया, 'एक वर्ष की बात और है जब मैं स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होने में समर्थ हो जाऊँगा। इसके बाद मैं स्कूल में पढ़ाने लगूँगा और तुम्हारी देख-भाल भी करूँगा माँ।' लेकिन जब उसने

शिक्षकों के स्थानों के लिए खोज करनी प्रारम्भ की तो कुछ शिक्षकों ने उसे हतोत्साहित किया। उनका कहना था, एक जापानी अमेरिकन को स्कूल में रखना बहुत कठिन है। भले उसको पढ़ाने का अनुभव हो और उसका रिकार्ड भी चाहे अच्छा रहा हो। इससे 'के' के मन में फिर चिन्ता ने घर कर लिया।

'मेरी माँ अब एक वर्ष से अधिक किसी भी प्रकार काम नहीं कर सकती', 'के' ने कहा।

मेयर ने एक बार फिर उसका उत्साहवर्द्धन किया। ' 'के' तुम्हारा दिमाग बहुत अच्छा है', वह बोले, 'तुम कालेज में पढ़ाओ तथा वहाँ तुम्हारे साथ कोई भेद-भाव नहीं किया जायगा। तथा मैं तुम्हें वहाँ की पढ़ाई के लिए फैलोशिप दिलवा दूँगा।'

वह मेरे घर आया और बोला, 'मेयर बहुत अच्छा व्यक्ति है। यदि उनका मुझमें इतना अधिक विश्वास है तो मैं भी उन्हें निराश नहीं करूँगा', वह बोला।

'के' १९५४ में ग्रेजुएट हो गया तथा उस समय उसे यह जानकर कि मेयर अगले वर्ष छुट्टियाँ ले रहे थे बड़ा दुःख हुआ। उसने उन्हें बतलाया कि वह पहले ही चौबीस वर्ष का हो गया है तथा अब पी. एच. डी. एक बड़ा भारी जुआ था यद्यपि फैलोशिप उसे सम्भवतः स्वतन्त्र बना देता लेकिन उसमें इतना अधिक समय लग जाता कि वह अपनी माँ की सहायता नहीं कर सकता था। लेकिन यह सभी भय उसके ग्रेजुएट बनने की खुशी में सारे परिवार ने विस्मृत कर दिये थे। उसकी माँ को अपने लड़के के एक अमेरिकन कालेज से डिग्री लेने का अत्यधिक प्रसन्नता थी तथा उसकी बहनों को भी इस बात का गर्व था कि उन्होंने 'के' की स्कूल की पढ़ाई के लिए कार्य किया था। उसकी अमेरिकन माँ ने लिखा था कि 'के' में उनका समस्त विश्वास सर्वथा उचित ही था।

अगले वर्ष जब वह स्कूल वापस आया तो वह पी. एच. डी. की तैयारी करे अथवा पढ़ाने का सार्टिफिकेट ले, इस बात का उसके मन में द्वन्द्व चलता रहा। वह मेयर के प्रति अनुगृहीत था लेकिन अपनी माँ के प्रति भी उसका उत्तरदायित्व था। उस वर्ष उसने छुट्टियों से पूर्व बताया, 'मैंने बहुत गलती की है। मैंने अपनी माँ को यह नहीं बतलाया कि मेरे अगले वर्ष भी पढ़ने की सम्भावना है और शायद मैं अपनी पी.एच.डी. की पढ़ाई भी करूँ। वह यह आशा कर रही हैं कि मैं अगले वर्ष पढ़ाई समाप्त कर लूँगा। मेरी समझ में नहीं आता कि उनको कैसे बतलाया जाए।'

कुछ समय पश्चात् उसने अपनी बहनों को इस बारे में बतलाया। 'उनमें से एक अपनी कालेज की पढ़ाई 'के' की पढ़ाई समाप्त होने पर प्रारम्भ करने की योजना बना रही थी। उसने मुझसे कहा, 'के', कोई चिन्ता नहीं। मैं कभी कालेज नहीं जाऊंगी। यदि कहीं तुम्हें पी. एच. डी. मिल गई तो तुम परिवार में सर्व प्रथम पी. एच. डी कहलाओगे, हमारे पूर्वजों में से किसी ने भी आज तक पी. एच. डी. नहीं किया।'

दूसरी छमाही तक भी उसने कोई निश्चय नहीं किया था अतः उसने कुछ शिक्षा का कार्य करने के लिए ले लिया और अपनी पी. एच. डी. की तैयारी करता रहा। जब दूसरी छमाही में यह घोषित किया गया कि मेरा स्थान पामोना कालेज में पुरुषों में सर्वोच्च रहा है तो 'के' ने मुझसे अपने लिए डिनर तथा शैम्पेन खरीदने का आग्रह किया। मैंने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया और क्योंकि भुगतान मुझे करना था, इसलिए हमने खूब खाया लेकिन अन्त में 'के' ने ही बिल का भुगतान किया। 'मैं यह जानता था कि यदि तुम्हें यह विदित हो जाता कि मुझे भुगतान करना है तो तुम इतनी अच्छी दावत कभी भी स्वीकार नहीं करते,' वह बोला। मैंने बहुत विरोध किया तथा वाद-प्रतिवाद भी किया, लेकिन अन्त में जीत 'के' की ही हुई।

'के' ने अपनी एम. ए. की थीसिस लिखनी शुरू कर दी थी क्योंकि वह अपनी माँ को सर्टिफिकेट के स्थान पर कुछ न कुछ अवश्य दिखलाना चाहता था। उसकी इच्छा अल्प मत की समस्या पर कार्य करने की थी। लेकिन मेयर के विलग होने के कारण उसने 'उन्नति का विचार' विषय चुना। अपनी थीसिस में वह उन्नति की धारणा पर अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में हुए परिवर्तन पर अपने विचार व्यक्त करना चाहता था। उसने जिस सामग्री का अध्ययन किया था उससे वह अत्यधिक प्रसन्न था। उसने मुझे बतलाया, 'पुस्तकालय एक जंगल के समान है जहाँ मुझे यह नहीं मालूम कहाँ से अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिए। मैं यदि अपने सारे जीवन तक भी पढ़ता रहूँ तो भी अध्ययन पूरा नहीं हो सकता।'

जैसे ही उसने लिखना प्रारम्भ किया तभी उसने प्रबल परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया। उसे मैं अक्सर पुरानी डौरमीटरी में छोटी-सी टाइप की मशीन पर कार्य करते हुए पाता था, जहाँ अपनी एसिस्टैन्टशिप के कारण उसे रहना ही पड़ता था, तथा जहाँ बैठा हुआ वह पृष्ठ पर पृष्ठ टाइप करता रहता था। पहले वह एक

पृष्ठ टाइप करता था और फिर उससे असन्तुष्ट होकर एक ओर फाड़कर फेंक देता था। एक ही पृष्ठ को वह कम से कम बीस बार लिखता था और इस पर भी उससे उसे सन्तुष्टि नहीं होती थी।

'छोड़ो इसे 'के' कुछ दिन के लिए किसी बाँध पर अथवा पहाड़ पर चले जाओ। कुछ दिन के लिए ईश्वर के लिए इस कमरे तथा टाइप की मशीन का पीछा छोड़ दो।' मैंने उससे कहा।

लेकिन वह उसी से चिपटा ही रहा। 'मैं मूर्ख हूँ, मैं किसी भी कार्य के योग्य नहीं हूँ,' वह कहने लगा।

आखिर उसकी थीसिस का पहला लेखन पूर्ण हो गया। एक प्रोफेसर ने कहा कि उसका संगठन तथा चयन सन्तोषजनक नहीं है। सम्भवतः इसका कारण उसका दीर्घकाल तक परिश्रम करना था। एक दूसरे ने कहा, ' 'के' को गम्भीरता के साथ हाई स्कूल की कक्षाओं को पढ़ाने की बात सोचनी चाहिए।' मैंने उसका समस्त निबन्ध शुरू से आखीर तक सुना और कहीं-कहीं उसमें सुधार करने का प्रयास किया। उसकी अन्तिम तिथि दो मई थी।

' 'के' तुम अपना कार्य-काल बढ़वा क्यों नहीं लेते,' मैं बोला।

मेरे सुझाव पर वह एकदम उबल पड़ा, 'तुम्हें मेरे मस्तिष्क का भी बहुत अधिक भरोसा नहीं है, क्यों, ऐसी ही बात है ना ?'

'बिल्कुल यही बात तो मेरे मन में भी थी। मैं चाहता था, तुम कुछ और अधिक समय इसके बारे में विचार करो,' मैं बोला।

वह तुरन्त ही मेरे कमरे से बाहर चला गया लेकिन कुछ ही मिनट के उपरान्त वापस आ गया और खेद प्रकट करने लगा।

जब वसन्त कालीन अवकाश प्रारम्भ हुआ तो मैंने 'के' से स्पष्टरूप से यह बात बतलाई जिसकी ओर मैं उसका कई बार ध्यान आकर्षित कर चुका था। 'मुझे तुम्हारे द्वारा तुम्हारी माँ तथा बहनों का पूर्ण परिचय प्राप्त हो चुका है। क्या कारण है मुझे तुमने उनसे अभी तक मिलाया भी नहीं ?'

'क्योंकि हम लोगों के रहने के ढंग पर मुझे शर्म आती है' वह बोला। 'मैं तुम्हें अपना मकान नहीं दिखा सकता। इसके अतिरिक्त हम बहुत गरीब हैं। मेरी माँ ···मेरी माँ···

मैंने प्रतिरोध करते हुए कहा, 'क्या तुम समझते हो इस कारण का कोई विशेष

महत्व है ?' मैंने उसे अपने माता-पिता के बारे में भी बतलाया और कहा कि किस प्रकार हमें विभाजन के पश्चात् रहना पड़ा था । लेकिन मैं किसी भी प्रकार उसे उसके निश्चय से नहीं हटा सका । और वह अपने घर आने का प्रसन्नतापूर्वक निमंत्रण नहीं दे सका ।

मेरा विचार था, वह छुट्टियों के पश्चात् तरोताजा होकर आएगा, लेकिन जब वह वापस आया तो और भी अधिक परेशान था । 'जिस दिन मैं घर गया तो मैंने अपनी माँ को खेत से प्याज बीनते हुए देखा । जरा सोचो तो, आठ घण्टे प्रतिदिन प्याज तोड़ने का काम और एक यहाँ मैं हूँ कि अपने परिवार के लिए कोई भी कार्य नहीं करता ।'

'शायद वे तुम्हारे लिए त्याग करने में आनन्द अनुभव करते हैं 'के' ' मैं बोला, लेकिन उसने इस बात से सहमति प्रकट नहीं की ।

'मेरे मन में आगे पढ़ाई करने के अपने कर्तव्य तथा अपनी माँ के प्रति अपने कर्तव्य में निरन्तर संघर्ष छिड़ा करता है ।' उसने कहा ।

तथा मैं पहले ही जान गया था, उनमें से कौन-से भाव की विजय हुई है ।

अगले दिन 'के' को विसकौन्सिन विश्वविद्यालय में पी. एच. डी. करने के लिए एक हजार डालर का सुझाव आया । लेकिन अन्य कई सुझावों के कारण उसने उसे रद्द कर दिया । उसने स्वयं ही अपने निर्णय का प्रयोग किया । अपनी डिग्री के लिए कार्य न करना उसके जीवन की ज्ञान की पिपासा के मार्ग में पहला गतिरोध था ।

अगली बार जब मैं 'के' से मिला तब भी उसे परेशान तथा उन्मन पाया, 'मैंने ग्रेजुएट स्कूल के डीन से बातें की थीं' उसने मुझे बतलाया, 'उन्होने कहा—चाहे मैं कुछ भी करूँ लेकिन मैं किसी भी अवस्था में वर्ष के अन्त तक अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता । इस छमाही के पश्चात् मुझे और भी पढ़ाई के विभिन्न कोर्स करने पड़ेंगे । तुम जानते हो इसका क्या अर्थ है ?'

'क्यों' मैं बोला, अन्त में तुम्हें फिर क्लेयरमाण्ट ग्रेजुएट स्कूल में आना पड़ेगा । लेकिन तुम प्रथम कार्यकाल में ही अपना सार्टिफिकेट उपलब्ध कर सकोगे। इससे अधिक की तुम आशा भी नहीं कर रहे थे । क्यों ठीक है न ?'

'मैंने भी यही सोचा था,' उसने कहा, 'मुझे अगले वर्ष तक के लिए बिना अपनी शिक्षा का कोर्स समाप्त किये भी कोई अस्थाई नौकरी मिल जायगी । आखिर वह कोर्स केवल एक टेक्नीकैलिटी (परिभाषिकता) ही तो है। लेकिन यदि कोई

नौकरी हुई भी तो वह एक निसी को नहीं देंगे। मेरी मां जून के, जब मैं अपनी पढ़ाई समाप्त कर लूंगा, दिन गिन रही है। यदि मैंने अब उनकी देख-भाल नहीं की तो फिर कभी भी अपने जीवन में नहीं कर सकूंगा। मैंने अपनी माँ के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण नहीं किया है। मैं खूब ठीक से कार्य करना चाहता हूँ।'

'तुम बहुत अधिक चिन्ता करते हो,' मैं बोला।

हमने कुछ समय और बातचीत की और मेरे विचार से अन्त में उसे काफी शान्ति तथा सान्त्वना मिली थी। हम एक दूसरे से इतना अधिक मिलते थे कि कभी मिलने पर आपस में हाथ भी नहीं मिलाते थे। लेकिन उस दिन शाम को उसने ऐसा किया तथा आश्चर्यजनक रूप से शर्माते हुए कहा, 'मैं तुम्हें यह बतलाना चाहता हूँ कि तुम मेरे सर्वश्रेष्ठ मित्र हो।'

जब वह द्वार के बाहर गया तो मैं इस सम्बन्ध में आश्चर्य कर रहा था कि पामोना के कितने विद्यार्थी अपनी शिक्षा पर इतनी गम्भीरता से विचार करते हैं जितना वह करता था। चाहे तथ्य कुछ भी रहे हों लेकिन वहाँ उसके समान गंभीर और अध्ययनशील व्यक्ति अधिक नहीं थे। तथा न ही उसके समान गंभीर एकान्त-प्रेमी ही अधिक विद्यार्थी वहाँ थे।

मेरे पिताजी को भारत से एक मेडिकल कान्फ्रेंस में एक निबन्ध प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किया गया था। उनसे एक बार फिर मिलने की सम्भावना से मैं अत्यधिक प्रफुल्लित हो उठा था तथा मई तक की पढ़ाई पहले ही पूर्ण करना चाहता था जिससे उनके आने पर कुछ दिन की छुट्टियाँ भी ले सकूँ। मैं अपना प्रातः कालीन नाश्ता तथा दोपहर का खाना भी कभी-कभी छोड़कर बचा हुआ समय अपनी पढ़ाई में लगाता था। अतः कई दिन तक मैं 'के' से नहीं मिल सका। जब अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में पिताजी आए, मैं उनसे मिलने लास एन्जिल्स गया तथा उनके साथ प्रथम मई तक क्लेयरमाण्ट वापस नहीं आया। पिताजी की मीटिंग के पश्चात् मुझे याद आया कि 'के' की थीसिस की अन्तिम तिथि दो मई है। अतः मैंने उसे तुरन्त ही फोन पर बुलाया। जब उसने 'हैलो' कहा तो उसकी आवाज भारी-भारी-सी प्रतीत हुई, जैसे वह मुझसे अपनी अत्यधिक शक्ति के साथ जोर से बोल रहा हो।

'क्या हाल है 'के' ?' मैंने पूछा।

'बहुत बुरा ?' उसने बुझे मन से जवाब दिया।

मैंने प्रतीक्षा की कि वह कुछ और कहे। 'तुम बढ़ाकर कह रहे हो।'

'मैं कल प्रातःकाल तक इसे पूर्ण नहीं कर सकता', उसने उदासी से कहा।

'गोली मारो उसे', मैंने कहा, 'उसे उपस्थित करने की तिथि अभी और पाँच सप्ताह तक नहीं आयेगी। तुम्हें केवल अपने परामर्शदाता से अवधि की सीमा बढ़ाने के लिए कहना है।'

'वह मुझसे कल ही उपस्थित करने पर बल दे रहे हैं।' वह बोला।

'ग्लीसन परिस्थितियों को समझ जायेंगे', मैंने उसे विश्वास दिलाते हुए कहा, 'वह दूसरे की कठिनाई को खूब समझने वाले व्यक्ति हैं। कुछ देर तक उसकी ओर इस पर नीरवता रही। 'के' तुम मुझे वचन दो कि तुम ग्लीसन से तुरन्त ही टेलीफोन रखने के पश्चात् बातचीत करोगे और अन्तिम तिथि बढ़वा लोगे।' वह हिचकिचाया। 'वचन दो' मैंने फिर जोर दिया।

'यदि तुम कहते हो तो कर लूंगा।' उसने कहा, 'मैं तुमसे अत्यधिक आवश्यक कार्य के लिए मिलना चाहता हूँ। क्या मैं वहीं आ जाऊँ ?'

बिना सोचे मैंने कहा, 'मेरे पिताजी यहाँ हैं। मेरी तुम्हें उनसे मिलाने की प्रबल इच्छा है। यहाँ सब सायंकालीन भोजन साथ-साथ ही खाएँगे।' मैं कुछ देर ठहरा रहा, ' 'के' क्या तुम सुन रहे हो ?'

'हाँ' उसने कुछ कांपते स्वर में कहा। मैं अपनी इस गलती के लिए दुःख अनुभव करने लगा। 'मेरा विचार है कि बातचीत अब समाप्त हो चुकी।' मैंने उसे अन्तिम तिथि की याद दिलवाई उसने निश्चय के साथ कहा।

'मैं कल तक आ जाऊँगा', मैं बोला, 'तथा फिर हम साथ-साथ खाने का प्रबन्ध करेंगे।' और मैंने उसे अन्तिम तिथि को बढ़वाने के वचन की याद दिलवाई। इसके बाद हमने टेलीफोन रख दिया।

अगले दिन मैं दो बार उसके कमरे में गया लेकिन वह वहाँ नहीं मिला। उसका बिस्तर कागजों से भरा हुआ था तथा रद्दी कागजों की टोकरी भी पूरी भरी हुई थी। यह फिर बहुत चिन्ता कर रहा है, मैं सोचने लगा। मैंने रद्दी कागजों की टोकरी से एक कागज लेकर उस पर, 'वापस आते ही तुरन्त अपने पास आने के लिए' टाइप करना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन मशीन में पहले ही एक कागज लगा हुआ था। अतः मैंने नोट को वहीं छोड़ दिया।

उस दिन रात को मैं अपने पिताजी को छात्रावास में छोडकर कालेज कछ

कपड़े लेने के लिए तथा 'के' से मिलने गया। यह ग्रीष्म और क्रिसमस की छुट्टियों को छोड़कर प्रथम अवसर था, जब हम दोनों इतने लम्बे समय तक परस्पर नहीं मिले थे।

जैसे ही मैं कमरे में घुसा मेरा टेलीफोन बज उठा। 'वेद, वेद ! 'के' मर गया!' यह हमारे एक अन्तरंग मित्र की आवाज थी, 'उसने पाँच मिनट पूर्व स्वयं को गोली मार ली।'

'गोली !' मेरे मुख से आश्चर्य के साथ निकला और मैं थककर वहीं बैठ गया।

उस दिन रात को मैं सराय में पिताजी के पास ही सोया। मुझे प्रसन्नता थी कि मेरे पिताजी ने परिस्थितियों के झमेले में मुझे अपना मार्ग बनाने दिया, जिन्होंने 'के' को आत्महत्या के लिए विवश किया था। मैंने 'के' की जीवित आकृति को बनाने का प्रयास किया लेकिन असफल रहा। मुझे उसकी केवल कोमल आवाज याद थी, उसके छोटे-छोटे कोमल हाथ, तथा छोटे-से शरीर की छाया मेरी कल्पना में नाच गई। उसकी ओर से मैंने एक आवाज सुनी जो मुझे कुछ समय पूर्व उसके कमरे में न जाने के लिए धिक्कार रही थी। वह नोट न लिखने के लिए और उस मानवी सम्बन्ध की, जिसे मैं इतना अधिक महत्व देता था, उपेक्षा करने पर प्रतारणा दे रही थी। मैं तुरन्त ही उसके कमरे की ओर जाने की बात सोचने लगा, लेकिन मैं उसे देख तो सकता नहीं था और अनुभव भी नहीं कर सकता था क्योंकि वह वस्तु, जो बात उसे मेरे लिए वास्तविक बनानी थी, थी उसकी अच्छाई, उसकी आवाज की गम्भीरता और छूकर देखने पर उसकी अच्छाई का अनुमान तथा उसकी रचना भी; इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था।

एक बार फिर टेलीफोन बज उठा। इस बार उस कमरे में जहाँ पिताजी भी मेरे पास ही थे, उसकी शान्त और पिता तुल्य आवाज आई, 'चूंकि तुम उसके गहरे दोस्त हो, इसलिए मैं तुम्हें यह बतलाना चाहता हूँ कि उसकी माँ को सूचित कर दिया गया है। उसने पूर्वी देशों के ढंग से पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास किया था। वह बहुत भावुक था। शायद आवश्यकता से अधिक विचारशील भी !'

एक ऐसा विश्व जो इन गुणों को सहन नहीं कर सकता, एक निम्नस्तर का बनावटी विश्व था तथा मैं टेलीफोन रखकर कल के बारे में सोचने लगा। अभी उसके शरीर का पोस्टमार्टम होगा। एक ऐसे शरीर का जो अभी हाल में ही मरा

था। मैं इस विचार को नहीं रोक सका कि कुछ लोग केवल इतना ही कहेंगे 'मस्तिष्क का असंतुलन।' और छः वर्ष पूर्व कहा गया यही शब्द स्मृति-पटल पर फिर ताजा हो उठा। मैं सोच रहा था, कैसी समता है कि जिस दिन 'के' ने एक निसी के रूप में स्कूल में प्रवेश किया था, ठीक उसी दिन उसके शरीर का पोस्टमार्टम होना था। मैं सोच रहा था कि किस सीमा तक 'के' ने विश्व के गुणों को अपने अन्दर मिलाया था और क्या जिस वस्तु ने सीने में लगकर उसकी हत्या की है वह केवल एक गोली ही है। अथवा आत्म सम्मान की प्राप्ति के लिए संघर्ष है। एक ऐसा आत्म सम्मान, जिसे रखना वह मनुष्य की मिश्रित परम्पराओं की विषम स्थिति के सम्बन्ध में विचारों के मामूली परिवर्तन की तुलना में अधिक श्रेयस्कर समझता था।

कल कार्य पूर्ण होने पर यदि उसकी मृत्यु का अपराध उसी पर अथवा हम पर रहा तो भी निश्चय ही लोग उसे कायर बतायेंगे और कहेंगे अपनी माँ की सहायता करने का अथवा जापानी-अमेरिकन सम्बन्धों को सुधारने का यह कोई अच्छा तरीका नहीं था। रोग के कीटाणुओं को उस समय बढ़ने देना, जब वह समाप्त किए जा सकते थे, यह एक स्वार्थपूर्ण तरीका था। कोई भी अपने को 'के' के परिस्थितियों पर नियंत्रण को समाप्त होने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहरायेगा ; उसे एक ऐसे जंगल में छोड़ने के लिए, जहाँ रोगों के कीटाणु तीव्र गति से उसके चारों ओर बढ़ रहे हों और एक ऐसी दलदल बना रहे हों जिससे बचने का जीवन के अन्त को छोड़कर कोई अन्य मार्ग ही न हो, अपने को उत्तरदायी ठहराने की आवश्यकता का अनुभव नहीं करेगा।

'के' मेरे लिए एक प्रकाश-स्तम्भ के समान था और इस प्रकाश-स्तम्भ की रोशनी पर, अब मुझे ज्ञान हुआ, आवरण पड़ गया था। एक ऐसा अन्धकारमय काला आवरण जिसने उसके प्रकाश को हमेशा के लिए बन्द कर दिया था। जीवन का लक्ष्य कुछ अर्थपूर्ण तथा महत्वपूर्ण मानवी सम्बन्धों की स्थापना करना होता है लेकिन कितने इस गहन आवरण को हटाकर प्रकाश के दर्शन करने में समर्थ होते हैं। लोग इस विश्व में रहते हैं तथा अपने मित्रों को थियेटर के उन दर्शकों के समान समझते हैं जिन्हें देखने के लिए उन सभी के पास टिकट होते हैं। लेकिन मैं इससे कुछ अधिक चाहता था, कुछ अन्धी आँखों के प्रकाश की गति से भागनेवाली वस्तु, लेकिन जो साथ ही सूर्य की गरमी के समान उष्णता लिए हुए हो।

'वेद' पिताजी बोले, 'यदि तुम पूर्ण गति से चलना चाहते हो', और मैं उन्हें सुनने लगा 'तो एक बात का वचन दो।'

उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे, लेकिन मेरे मुख से 'क्या' भी नहीं निकल सका।

'वचन दो, तुम जो कुछ मुझे लिखोगे अपने हृदय को टटोलकर लिखोगे और कोई भी कार्य मेरे उत्तर को पाए बिना अन्तिम रूप से नहीं करोगे।'

मेरे लिए इस बात का वचन देना बहुत बड़ी बात थी, लेकिन अपने पिताजी के लिए नहीं। 'मै वचन देता हूँ' मैंने कहा और इसके बाद उठनेवाली लम्बी साँस की ध्वनि से मैं समझ गया कि पिताजी प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गए हैं। लेकिन मैं अभी भी यह सोच रहा था कि वह मेरे पत्र को प्राप्त करने के लिए कितने समय तक वहाँ रहेंगे। तथा उसके पश्चात् क्या होगा।

अगले दिन प्रातःकाल ही 'के' की माँ और बहनें उसके शरीर को लेने के लिए आ गईं। मेरी उनके दर्शन करने की प्रबल इच्छा थी। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया क्योंकि मैं उसकी मृत्यु के बाद भी उसके निर्णय का आदर करना चाहता था।

एक सप्ताह पश्चात् पिताजी योरप के लिए रवाना हो गए और मैं फिर अपने उसी पुराने चक्कर में आगया। लोग-बाग मेरे पास आए और अपना दुःख प्रकट करके चले गए जैसे 'के' के साथ मेरा कोई सगा, एक ही खून का सम्बन्ध हो। एक ने तो 'के' की स्मृति में एक कविता लिखने की इच्छा व्यक्त की। और एक अन्य व्यक्ति ने कहा, 'इसका शिकार हममें से कोई भी हो सकता था।' एक और तीसरे ने मुझसे यह बताया कि 'के' ने रात में कैसे गोली मार ली। डाइनिंग रूम से जब सारे लोग बाहर चले गए तो वह उस घृणित प्रामीथियस के चित्र की ओर कुछ अर्थ भरी दृष्टि से देखता रहा और तब स्वयं को गोली मार ली।

मेरी | २७

यद्यपि मैं यह भली प्रकार जानता था कि विश्व के विशाल गतिचक्र में जो निरन्तर कितनों ही को कुचलता हुआ अपनी परिधि में अनवरत रूप से घूमता रहता है, एक तीली का कम हो जाना कोई विशेष महत्व नहीं रखता। फिर भी १९५५ में जिस वर्ष 'के' ने गोली मारकर आत्महत्या की थी, मैंने पामोना छोड़ देने का निश्चय कर लिया। कक्षा जाने का मेरा मन नहीं करता था क्योंकि मुख्य मार्ग 'के' के खाली कमरे की खिड़की के नीचे से होकर जाता था। हमेशा मैं खिड़की को अपने ऊपर झूलते हुए अनुभव करता था। जब कभी मैं वहाँ से गुजरता था तो कुछ क्षणों के लिए ठिठक जाता था और इस बात की प्रतीक्षा करने लगता था कि शायद वह ऊपर खिड़की में से मुझे बुलाने लगे।

न मालूम क्यों समस्त साप्ताहिक पत्रों तथा एक के बाद एक आने वाली परीक्षा में भी कोई रुचि नहीं रह गई थी। अपने कालेज की पढ़ाई के पिछले तीन वर्षों में मैं पढ़ने वालों के पीछे पड़ा रहता था। शुरू से अपने परचों में मैंने ७५ प्रतिशत तक नम्बर प्राप्त करके अपनी कक्षा के विद्यार्थियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था तथा पहली जूनियर टर्म में पुरुष वर्ग में अग्रगण्य था। तथा मेरे परामर्श-दाता ने कहा था कि मैं 'फाई-बीटा-कप' के लिए जूनियर वर्ष के निर्वाचन में चुना जाऊँगा। ये सभी प्रतिष्ठित पद, जो कुछ ही महीने पूर्व मेरे मन में उमंग का संचार कर रहे थे, अब धुंधले-से तथा महत्वहीन प्रतीत होने लगे थे। और सफलता के गलत सिद्धान्तों पर आधारित मालूम पड़ने लगे थे। यह उन व्यक्तियों के लिए महत्वपूर्ण नहीं थे जो शिक्षा को वास्तविक अर्थों में लेते थे किन्तु इनका महत्व केवल उन व्यक्तियों के लिए था जो इस घृणित प्रतियोगिता को ही सफलता समझते थे।

मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि शिक्षा के उस सिद्धान्त ने जिसका मैंने कालेज-काल में अध्ययन किया था, मस्तिष्क रूपी भंडारघर में तथ्यों रूपी टिनों

की जाँच पड़ताल करने के लिए मुझे प्रेरित किया था। इन टिनों पर स्वच्छतापूर्वक लेबिल लगाकर उन्हें परीक्षा अथवा प्रभावोत्पादक बातचीत के स्थल में लाना था—इन नामों तथा तथ्यहीन सिद्धान्तों में जो निर्देशन तथा ज्ञान की ओर संकेत करते थे, मुझे अपूर्णता प्रतीत होती थी। इससे मस्तिष्क के विभिन्न अवयवों को स्वतन्त्रतापूर्वक किए गये विचारों के द्वारा प्रखर होने का अवसर मिलता था, जससे एक विशिष्ट ढंग से भावों को व्यक्त करने तथा विचारों के आदान-प्रदान का ढंग सीखने की सम्भावना नहीं थी।

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की कमियों पर से इस अन्धकार का आवरण हटना मेरे लिए वास्तविक समस्या पर केवल मुल्लमा चढ़ाना था। यह समस्या थी समय की उपलब्धि की, जिसका प्रयोग विचार और मनन के लिए तथा इससे भी अधिक तो मानव भावनाओं के विकास के लिए किया जा सके। किसी भी रूप में इसके कारण मेरे शिक्षा की उपलब्धि के लिए किए गए प्रयासों में कोई कमी नहीं आई तथा न ही मैंने अध्यनन छोड़ा। इतिहास, साहित्य तथा दर्शन शास्त्र के लिए मेरा प्रेम यथावत् था। मैं इन विषयों का अध्ययन केवल अपनी इच्छानुसार अपने ही ढंग से तथा बिना किसी तिथि निर्धारण के करना चाहता था।

आखिर मई के अन्त में अन्तिम परीक्षाएँ आरम्भ हो गईं और मेरी स्थिति फिर उस बच्चे के समान हो गई जो किसी बीहड़ जंगल में खो जाने पर अपने घर का मार्ग ढूँढने का प्रयास करता है। जब मैंने अपने तत्कालीन कविता के प्रोफेसर के समक्ष अपनी अन्तिम परीक्षा दी तो उन्होंने मुझसे गर्मियों को अच्छी प्रकार बिताने की कामना व्यक्त की। 'इन गर्मियों में तुम्हें विचार करने के लिए काफी समय मिलेगा', उन्होंने कहा, 'यह याद रखो कि भावुक तथा कमजोर तथा भावुक और शक्तिशाली बनने में बड़ा भारी अन्तर है।'

रजिस्ट्रार को भी प्रतिलिपि के लिए टिकट लगा हुआ लिफाफा दिए बिना ही मैं पामोना से चल पड़ा। मैं पूर्वी तट की सैर के लिए, हारवर्ड में गर्मियाँ बिताने के लिए तथा साहित्य तथा विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए चला था।

वहाँ मैंने ग्रीष्मावकाश पढ़ने में तथा लम्बी-लम्बी सैर करने में बिताया। गर्मियों में मुझे कुछ छोटी-छोटी कहानियाँ सुनने का तथा विभिन्न मनुष्यों की परिस्थितियों को समझने का अवसर मिल गया। लेकिन ऐसा अनुभव हुआ कि अधिकतर व्यक्ति अपनी प्रकृति को छिपाने का प्रयास करते थे तथा मैं अधिकतर

भ्रामक स्थिति में ही रहा। जो कुछ मुझे बतलाया जाता था वह पूर्ण तथ्य नहीं होता था, फिर भी कुछ लघु कथाएँ मेरी कल्पना को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अवसर प्रदान करती थीं। तथा कुछ ऐसा साहित्य भी रहता था जो मेरी खोई हुई शक्ति को जागृत कर देता था। एक बार जब मैं फिर सड़क पर चलकर कैलिफोर्निया की ओर जा रहा था तो मैं फिर ज्ञान के द्वार में प्रवेश करके अन्दर पहुँचना चाहता था।

जब मैं अपने सीनियर वर्ष में पढ़ रहा था तो मेरी से मुलाकात हुई। यद्यपि एक प्राइवेट विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट होने के बाद वह सीधी क्लेयरमान्ट आ गई थी लेकिन हमारा सर्वप्रथम परिचय क्रिसमस की छुट्टियों में एक धार्मिक सभा में हुआ। मेरी की आवाज को सुनकर अर्कन्सास की नहीं टैनेसी की याद आ जाती थी। वह ठीक दक्षिण के निवासियों के समान धीरे किन्तु ऐसी स्पष्टता के साथ बोलती थी कि सुनने वालों को दक्षिण की स्त्रियों की सुन्दरता और मोहकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता था। उसका बोलने का ढंग दक्षिण का पुट और अर्थ लिए हुए था। वह मानसिक कल्पना को 'ब्राउन स्टड़ी' तथा पोर्च को 'गैलरी' कहती थी। और इस प्रकार बातें करती थी जैसे उसे अपना अस्तित्व बनाये रखने के अलावा और कोई अन्य कार्य न करना पड़ा हो। अपने कालेज में उसे फुटबाल क्वीन के रूप में निर्वाचित किया गया था। वह हमेशा खूब अच्छे वस्त्रों में रहती थी जिनसे सुगन्ध आती रहती थी और जिनपर अलंकार भी सुशोभित होते थे। हाथों के लोशन का भी प्रयोग वह करती थी। कैलिफोर्निया के लड़कों को वह 'दक्षिणी ढंग से' सभ्य नहीं मानती थी। यद्यपि वह काफी पिया करती थी और जब कभी घबराती अथवा थक जाती थी तो सिगरेट भी पीती थी, लेकिन वह कहा करती थी कि घर लौटने पर वह सिगरेट पीना कम कर देगी तथा काफी कम पियेगी।

वह इस बारे में शायद ही कभी विचार करती हो कि उसके वहाँ रहने का क्या उद्देश्य है? वह कहाँ जा रही है? अथवा विश्व के निरन्तर गतिशील रहने का क्या कारण है? उसके साथ कोई बन्धन नहीं था तथा न कोई कारण चिन्ता करने के लिए था। उसका ध्येय यही था कि अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को अपने ही समान प्रफुल्लित रखे।

उसने मुझे बतलाया, 'मैं धर्म में आस्था रखती हूँ। उसके सम्बन्ध में मुझे संदेह नहीं है क्योंकि मैं जानती हूँ वह सत्य है।'

जब कोई उसे मजबूर करता था तो वह केवल इतना ही कहती थी, 'मैं ईश्वर की शक्ति में विश्वास करती हूँ और समझती हूँ कि ईसामसीह हमारे उद्धार करने के लिए इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए थे।'

वह नियमित रूप से गिर्जाघर जाती थी और जब कभी अस्वस्थ हो जाती थी, जैसा आध्यात्म विद्या की सूक्ष्मता पर विचार करने के उपरान्त अक्सर होता था, तो वह पुनः प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना किया करती थी।

हमारी मित्रता का प्रारम्भ उस समय हुआ जब उसे यह मालूम हुआ कि मैं कुछ समय तक अर्कन्सास में भी रहा हूँ। एक दिन मैंने उसे काफी पर आमन्त्रित किया और उसकी स्वीकृति सुनकर मुझे वास्तव में आश्चर्य हुआ। शीघ्र ही मुझे इस बात का ज्ञान हो गया कि वह दूसरों की बात को धैर्य के साथ सुनने वाली बुद्धिमान लड़की है। वह मुझे अपने बहुत-से कार्यों में सहायता करने देती थी जैसे उसकी कार के धोने में। कपड़े खरीदते समय उचित चयन करना और जब कभी वह डिनर (सायंकालीन भोजन) हमारे लिए बनाती थी तो कभी-कभी मुझसे पूछती थी कि उसका स्वाद कैसा है? वह चाहे कहीं भी जाए मुझसे बात करने में परेशानी नहीं अनुभव करती थी। वह मुझसे अपने साथ कभी-कभी किराने की दुकान तक चलने के लिए अनुरोध करती थी। हम उस भीड़-भाड़ वाले गिरजे के बगल के रास्ते से पैदल ठेले को ढकेलते हुए चलते थे जैसे यह कोई बच्चागाड़ी हो और हम पार्क में ठहलने के लिए जा रहे हों। मैं यह सब कार्य इस लिए किया करता था क्योंकि ऐसा करने से मुझे महसूस होता था कि मैं उसके लिए लाभदायक हूँ तथा उसके साथ रहने पर मैं भूल जाता था कि वह सम्भवतः किसी ऐसे व्यक्ति को पसन्द करेगी जिसके आँखें हों।

वह कभी भी निश्चित समय पर नहीं मिलती थी, इसलिए जब कभी भी हमें नाच में, संगीत सभा में अथवा किसी ड्रामे में जाना होता था तो मैं उसके घर पर पहुँच जाता था जहाँ वह तीन अन्य लड़कियों के साथ रहती थी। जब वह ऊपर कोई गीत गुनगुनाती रहती थी, जैसे वह किसी समय-रहित विश्व में रह रही हो, तो मैं नीचे भारी-से मन से बैठा रहता था, क्योंकि मैं सोचता था कि वह युवकों के मुख से अपनी सुन्दरता का वर्णन सुनने की अभ्यस्त है लेकिन जब वह नीचे आकर मेरा इस प्रकार स्वागत करती थी जैसे सारे दिन मेरा इन्तजार करती रही हो, तो उस समय मेरी सारी घबराहट और उद्वेग गायब हो जाता था।'

एक बार वह सीढ़ियों से उतरते हुए बोलीं, 'तुम जानते हो ! मैं समझती हूँ सम्भवत: तुम मेरी सुन्दरता के बारे में नहीं जान सकते, लेकिन मैं कैसा अनुभव करती हूँ, यह तुम जान सकते हो। यही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।' मैं प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। 'मैं दावे के साथ कहती हूँ कि तुम्हें यह भी ज्ञान रहता है कि मैं किसी विशिष्ट समय पर कैसी लगती हूँ। क्यों ठीक है न ?' उसने कौतूहल के साथ कहा।

'आखिर वह भी मनुष्य है, मैंने अपने मन में सोचा। मुझे हां कहने में कुछ भी कठिनाई नहीं होनी थी केवल उन तथ्यों को छोड़कर जहाँ अन्धेपन का सम्बन्ध नहीं आता था। लेकिन मैं अत्यधिक सत्यता प्रदर्शित करना चाहता था।

'नहीं' मैं बोला।

'तो हम यही समझेंगे कि तुम जानते हो, 'उसने प्रसन्नतापूर्वक कहा और उस क्षण वह मुझे अत्यधिक आकर्षक लगी। मुझे तो वह साक्षात जीवन ही मालूम पड़ी, वह जीवन जिसकी मुझे वर्षों से तलाश थी, लेकिन जो मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था।

'अगर तुम चाहती हो तो हम मान लेंगे। 'मैं बोला और हाथ में हाथ लेकर हम धीरे-धीरे चलते हुए बाहर आ गये।

एक दिन शाम को जब हमारा परिचय हुए एक महीना हो चुका था तो वह मुझसे बोली, 'मेरे विचार से हम बहुत तेज चल रहे हैं। मेरा तात्पर्य है, यह बतलाना अत्यधिक कठिन है', वह कहती रही, 'हम बहुत-से कार्य साथ-साथ करते हैं लेकिन मुझे यह नहीं मालूम कि तुम कहाँ तक पहुँच चुके हो।'

'मैं सचमुच स्वयं नहीं जानता, मेरी क्या स्थिति है।' मैंने कहा।

वह मेरे और कुछ कहने की प्रतीक्षा करती रही लेकिन मैंने और कुछ नहीं कहा। रात काफी बीत चुकी थी और सारे घर में शान्ति का साम्राज्य छाया था तथा खिड़कियों की झिरियों में से ठण्डा मंथर समीर आ रहा था। मेरी मुझसे सट गई।

'क्या तुम समझते हो इसका कभी कुछ परिणाम भी निकलेगा ?'

'मुझे नहीं मालूम,' मैंने कहा और अपना हाथ उसके छोटे-छोटे रेशम जैसे बालों में फिराने लगा।

उसने नीरवता को भंग करते हुए एक आह भरकर कहा, 'तुम एक हिन्दू हो और मैं ईसाई।'

'मेरी, जरा कहो तो कि तुम ईसाई हो,' मैंने उत्तर दिया। अब मैं कुछ बेचैनी अनुभव कर रहा था।

'मैं तो उन व्यक्तियों में हूँ जिन्हें जीने के लिए भगवान् पर विश्वास करना पड़ता है।' वह बोली।

यह सत्य था क्योंकि मेरी को धर्मविहीन समझना कठिन था।

'मेरी समझ में नहीं आता कि कोई भी इसके बिना कैसे हो सकता है,' उसने जोर देते हुए कहा।

मैं उसके पास से उठकर खिड़की के पास चला गया, 'मेरी, इस सम्बन्ध में बातें करने से क्या लाभ? मैं बोला, मैं अभी तक कुछ ढूँढ रहा हूँ। मेरे पास कोई उत्तर नहीं है और मैं नहीं जानता कि अभी मैं इस सम्बन्ध में कोई वचन भी दे सकता हूँ अथवा नहीं।'

'लेकिन मुझे आश्चर्य है कि तुम कभी इस स्थिति में हो भी सकोगे या नहीं। तुम तो ऐसे बात कर रहे हो जैसे ईश्वर में विश्वास करना एक कार्य विशेष हो। तुम सोचते बहुत हो।'

मैंने खिड़की को बिल्कुल खोल दिया और हवा के एक झोंके को अन्दर आने दिया। अभी दो या तीन बजे थे। मैंने सोचा।

'यहाँ आओ और मेरे पास बैठ जाओ,' उसने कहा और मैंने वैसा ही किया। 'मैं किसी भी ऐसे व्यक्ति के समीप नहीं हो सकती जो ईश्वर के द्वारा तिरस्कृत हो, मेरा तात्पर्य है ईसाइयों के ईश्वर के द्वारा।'

'क्या तुम सचमुच यह समझती हो मेरी, कि ईसाई धर्म के अतिरिक्त किसी और धर्म में मोक्ष अथवा निर्वाण नहीं है?' मैंने पूछा।

'हाँ, जहाँ तक मैं समझती हूँ' वह बोली।

यह प्रथम अवसर था जब उसने अपनी 'हाँ' पर स्वीकृति की मोहर लगाई थी। 'यदि तुम इतना अधिक स्वीकार कर सकती हो तो तुममें परिवर्तन हो गया है।'

'मैं तुम्हारे लिए इस परिवर्तन के लिए भी तैयार हूँ लेकिन केवल एक सीमा तक,' वह बोली।

'मैं तुम्हारा परिवर्तन नहीं चाहता, तुम बहुत अच्छी हो, बहुत अच्छी हो। लेकिन तुम्हें मुझे भी तो समझना पड़ेगा' मैंने कहा।

'मैं कैसे समझ सकती हूँ? क्या मैंने कभी यह कहा है कि मेरे पिताजी कौन

हैं ? तो ईश्वर के सम्बन्ध में मैं कैसे कुछ कह सकती हूँ ?'

जिस बात ने मुझे प्रभावित किया वह थी उसके विश्वास की निष्कपट सरलता, फिर भी मुझे पूर्ण विश्वास था कि उसका भोलापन, उसका मौन और उसके वे गुण जिन्होंने मुझे इतना अधिक आकर्षित किया था, सभी इसके द्वारा उत्पन्न हुए थे। मैं उससे जैसा मैंने पहले कई बार किया था, इस बार भी बहस कर सकता था और उसकी सरलता की ओर संकेत कर सकता था लेकिन मैंने ऐसा करना निरर्थक समझा।

'मेरी ! आओ हम धर्म के सम्बन्ध में कभी भी कोई बात न करने का निश्चय कर लें।' मैं बोला। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसमें से पसीना निकल रहा था। 'मेरी, मुझे एक ऐसी वस्तु के लिए जो मुझे सर्वप्रथम मिल रही हो, अस्वीकार मत करो। तुम्हें नहीं मालूम इस सबका मेरे लिए कितना अधिक महत्व है।' मैंने कहा।

वह मेरे और समीप आ गई।

जब मैं इस रात घर के लिए चला तो हवा में वर्षा होने की सम्भावना प्रतीत होती थी और मेरे अपने कमरे तक पहुँचने तक धीरे-धीरे वर्षा होनी आरम्भ भी हो गई। मुझे प्रसन्नता थी कि उस रात का अन्त दुःखद नहीं हुआ, लेकिन मैं यह भी जानता था कि हमारे इतने अधिक समीप होने पर भी हम एक दूसरे के पास उस समय तक नहीं पहुँच सकते थे जब तक हमारे दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं।

उस रात धर्म के सम्बन्ध में बात करने के बाद से धीरे-धीरे हमारे सम्बन्धों में अनजाने में ही एक परिवर्तन-सा आ गया जिसके सम्बन्ध में यह कहना कठिन था कि वह कब, कैसे और कहाँ आरम्भ हुआ। सम्भव है इसका प्रारम्भ उस दिन के हमारे कालेज के पत्र के द्वारा हुआ हो। यद्यपि मैं उसके साथ इस बात पर सहमत था कि डिक एक बिल्कुल पागल था फिर भी जो कुछ उसने लिखा था वह मुझे पसन्द था और अपने कैम्पस के छोटे-से मैंकन से यदा-कदा अपने साथ मजाक किया जाना पसन्द करता था। वह उसे बिल्कुल भी पसन्द नहीं करती थी, क्योंकि वह अच्छा नहीं था और उसने बुरी चीजों के सम्बन्ध में लिखा था।

'तुम इस कालेज के उन सब बुद्धुओं के समान हो जो मस्तिष्क से ऊपर किसी भी वस्तु को नहीं समझते, तुम उन सब विचारों से प्रसन्न होते हो जो मस्तिष्क से उत्पन्न होते हैं। चाहे वे गन्दे ही क्यों न हों,' वह बोली। 'क्यों! डिक रास्ते में से

एक पत्थर उठा लेगा उसकी ओर देखेगा और फिर उसके भद्देपन पर ही एक सम्पादकीय लिख डालेगा।'

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैंने उसे सीधी-सादी सरल विचारों की लड़की कहा। मैंने कहा था, 'मेरी, विश्व वही नहीं है जैसा नैशविले के आस-पास दृष्टिगोचर होता है।'

वह मुझे एक रोगी बतलाती थी और कहती थी, 'मैं जान-बूझकर उसे टैनैसी में रहने की याद दिलाता हूँ क्योंकि मैं उसे पसन्द नहीं करता।'

हमने इस झगड़े को शान्त कर दिया लेकिन असली बीमारी बार-बार अपना रूप दिखाने लगी। इन सब तर्कों के पश्चात् मेरी तबियत कुछ भर-सी गई। क्योंकि वह मुझे एक ऐसी वस्तु का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती थी जो इस विश्व में अत्यधिक अच्छे, दयावान तथा प्रेम करने वाली हो और फिर भी अत्यधिक सरल हो जिसके लिए मैंने उसकी आलोचना की थी कि यही उसके चरित्र की कमी है।

चाहे वह किन्हीं भी कारणों अथवा विचारों पर आधारित हो लेकिन यह स्पष्ट हो गया था कि हम दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों में वह मधुरता नहीं रह गई थी। उसने अब बड के साथ बाहर जाना प्रारम्भ कर दिया था, जिसने उस दिन ग्ली क्लब में गाया था और जो एक बहुत बड़े सामाजिक मित्रता संगठन का सदस्य था। लड़के उसे लड़कियों की ओर भागने के लिए चिढ़ाया करते थे, विशेष रूप से उन लड़कियों की ओर जिनसे वह पहले कभी मिला भी नहीं था और जिन्हें वह स्वयं को स्कूल का सुन्दरतम लड़का बतलाता था और इसलिए उन्हें उसी के साथ घूमने जाना चाहिए था। बड अक्सर मेरी के घर पर रहता था और अब मैं एकाएक अन्दर नहीं जा सकता था। 'दक्षिण के सभी सभ्य व्यक्ति अंदर जाने से पूर्व आज्ञा लेते हैं।' उसने मुझसे कहा था। और यदि मेरे जाने पर बड वहाँ होता तो वह केवल यह कह देती, 'अभी मेरे पास कोई है। अच्छा हो यदि तुम कुछ समय के बाद आओ।' और जब कभी मैं वहाँ होता और बड का टेलीफोन आता तो उसे 'वेद' कहती और इसके पश्चात् हँसते-हँसते दोहरी हो जाती।

एक बार उसने दो लड़कों के साथ अपने पत्र-व्यवहार के बारे में बतलाया जो नौसेना में थे। 'मान लो यदि कहीं तुम्हें इन दो लड़कों में से एक को पसन्द करना पड़े तो तुम किसको चुनोगे?' वह बोली।

'पहले उसका विवरण मुझे बतलाओ,' मैंने कहा और उसने खूब रंजित ढंग से बढ़ा-चढ़ाकर बतलाया।

मैंने मुस्कराकर पूछा, 'किस बात के लिए चुनना है ?'

'विवाह के लिए।'

'मैंने गम्भीरता के साथ विचार करने के पश्चात् एक के पक्ष में उसके आकर्षण और सब गुणों की व्याख्या करते हुए निर्णय दे दिया।

'ओह !' वह बोली, 'तुम मेरे साथ एक खेल खेल रहे हो।'

'नहीं' मैंने कहा, 'मैं अत्यधिक गम्भीरता और सत्यतापूर्वक कह रहा हूँ।'

'तुमने तो मुझे परेशान कर दिया और मन ऊब-सा गया। तुमने ऐसी बातें की हैं जैसे मैं कोई मकान खरीद रही हूँ, किसी व्यक्ति का विवाह के लिए चयन न कर रही हूँ।'

'भारतवर्ष में तो इसी ढंग से यह काम होते हैं' मैंने गम्भीरता से कहा।

'बस', वह उबल पड़ी। 'यह तुम्हारे साथ मामला क्या है ? क्या तुम हमेशा ईर्ष्या नहीं करते रहते ? क्या तुम मेरी बिल्कुल चिन्ता नहीं करते ?' और उसे रोते देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा और मैं चुपचाप उसके पास बैठा अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछता रहा।

वह धीरे से बोली, 'तुम कोई चिन्ता नहीं करते, तुम कोई चिन्ता नहीं करते।'

'ओह ! लेकिन मैं करता हूँ', मैंने उसे सान्त्वना देते हुए यहा, 'किन्तु मैं अपनी स्थिति को जानता हूँ ?'

मैंने यह अनुभव किया कि वह एक अच्छे समय की कामना करती थी। वह बड के साथ अधिक अच्छी तरह समय व्यतीत कर सकती थी जैसा मेरे साथ सम्भव नहीं था। वह उसे दावतों में, स्वागतों में, अपने संगठन के नाचों में अपने साथ ले जा सकता था। और जब कभी मैं मेरी के पास होता था तो मैं उसे पूर्णरूप से अपने लिए समझता था केवल अपनी।

'तुम मुझे क्या समझते हो ?' उसने मेरी परीक्षा लेने के लिए मुझसे पूछा।

मैंने इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप कहा 'तुम मेरे लिए हो, अमेरिका की पूर्ण आत्मा, तुम मित्र हो, तुम दयावान हो, तुम उदारचित्त हो और सबसे अधिक तो तुम मुझे, जैसा मैं हूँ वैसा स्वीकार करती हो।'

'मैं व्याख्यान सुनना नहीं चाहती,' वह .बोली और रूमाल से अपने आँसू पोंछती हुई वह मेरे और समीप आ गई।

मेरी ने अपने दोनों हाथ मेरी भुजा पर रख दिए और मैं स्पष्ट रूप से उसकी दृष्टि अपने ऊपर महसूस कर सकता था।

'तुम मजाक कर रहे हो, तुम यह सब गम्भीरतापूर्वक नहीं कह रहे हो।' वह बोली।

'मैंने यह सब बहुत गम्भीरता और सत्यता के साथ कहा है।' यह कहते हुए मेरे मुख पर एक प्रफुल्लता तथा हास की रेखा फैल गई।

'तुमने मुझे यह सब कुछ बतलाया क्यों नहीं ? हम एक पार्टी और जन्मदिवस के केक का आयोजन करते। और यदि तुम चाहते तो बाइस मोमबत्तियाँ भी।'

'ओह ! जाने भी दो !' मैंने कहा, 'एक ही केक बहुत है।'

'मैं स्वयं एक बना लेती, ट्रे के बराबर बड़ी। आओ जीन, जैक, निकोलस तथा डेविड को बुला लें और एक वास्तविक पार्टी का आयोजन करें।'

'मैं पार्टी नहीं चाहता, मैं तो बस तुम्हारे पास रहना चाहता हूँ,' मैंने कहा।

वह रसोई की ओर दौड़ गई और मैंने उसका अनुगमन किया, 'ओह ! यह तो बिल्कुल खाली है, यहाँ तो कुछ है ही नहीं,' वह बोली।

'क्यों न आज भी दालचीनी के टोस्ट और काफी का प्रयोग किया जाए, वही जो हम प्रतिदिन लेते हैं।' मैंने कहा।

उसे 'हैप्पी बर्थ डे' लिखा हुआ एक नैपकिन मिल गया तथा बड़े दिन के समय की कुछ मोमबत्तियाँ भी मिल गईं। उसने दालचीनी का टोस्ट बनाया और मुझे टोस्ट पर से मोमबत्तियाँ बुझाने के लिए हठपूर्वक कहा।

'तुम जानती हो, छोटे-छोटे कार्य किस प्रकार किए जाते हैं और कैसे खूबी के साथ किए जाते हैं ?' मैंने कहा।

वह वास्तव में इससे बहुत प्रसन्न हुई और प्यार से बोली, 'यह हमारा छोटा-सा पर्व है। मैं इसे हमेशा याद रखूंगी, लेकिन यदि तुम मुझे अपने लिए एक दावत का आयोजन करने की अनुमति दे दो।'

उस छोटी-सी रसोई में वह मेरे बराबर बैठ गई और काफी पीने लगी। ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे फिर से घर का पता मिल गया हो। जब से वह पाकिस्तान बनने की दुखद घटनाएँ घटित हुई थीं, जन्म-दिन आए और बिना किसी को आक-

षित किए चले गए। लेकिन मेरी के साथ उस कमरे में ऐसा महसूस हो रहा था, मानो हम फिर रावलपिंडी पहुँच गये हों।

'क्या तुम्हें कभी घर की याद आती है ?' उसने पूछा।

'कभी-कभी तो बहुत अधिक।' मैंने कहा, 'लेकिन मैं अपनी इस बीमारी को कम्बल में छिपाए रहता हूँ। काफी रात बीत जाने पर अकेलेपन में घर की याद बहुत मधुर लगती है।'

'कुछ समय पश्चात् सात वर्ष हो जाएंगे, क्यों ठीक है ना ?' उसने पूछा। वह बहाना जो मैंने इतने वर्षों से कुशलतापूर्वक बनाया हुआ था अब मिटता-सा प्रतीत हुआ तथा मैं गत जीवन की घटनाएँ बताने लगा।

'लोग कहते हैं जितना अधिक तुम घर से बाहर रहो, उतनी ही कम उसकी याद आती है। लेकिन मेरे साथ ठीक उल्टा हुआ है। मैंने लगभग सात वर्ष से अपनी माँ को नहीं देखा है तथा अपने पिता के सिवा और किसी को भी नहीं देखा है।'

मेरी सब ध्यानपूर्वक सुन रही थी और वह काफी के कप पर कप पीती चली जा रही थी। मैंने उसे धुंधले-धुंधले चित्रों के सम्बन्ध में बतलाया जो अब स्मृति-पटल पर काले-काले चित्र ही रह गए थे। इन सात वर्षों के दीर्घ काल के पश्चात् मुझे उनकी आवाजें भी धुँधली-धुंधली ही याद रह गई थीं। और फिर भी मेरे लिए उनके चित्र नहीं किन्तु उनकी आवाजें ही वास्तविकता थीं।

वह बोली, 'तुम्हें उनके सम्बन्ध में अधिक बातचीत करनी चाहिए। सम्भव है कि तुम उनके बारे में किसी से बातें करो तो उनकी स्मृति ताजी हो जाए और तुम्हें कुछ राहत मिले।'

मैं ठीक उस व्यक्ति के समान हो गया जिसे फिर से अपना यौवन प्राप्त हो गया हो। अथवा उस व्यक्ति के समान जिसने बहुत दिन तक बालों की कोई लट सुरक्षित रखी हो तथा बहुत-सी चिड़ियाँ बचाकर रखीं हों और अचानक ही उनका खोया हुआ स्वामी आ जाये अपने पुराने विस्मृत सम्बन्ध को स्थायी बनाने के लिए नहीं, बल्कि बिल्कुल नए सम्बन्ध स्थापित करने के लिए।

'मेरा विचार है तुम्हें मेरी अथवा मुझ जैसे किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता है' मेरी ने प्यार और विनम्रता के साथ कहा। और एक बार फिर मेरे मस्तिष्क के सम्मुख एक सुन्दर गुलाबी भविष्य नाच उठा। ओह ! मैं भी बिल्कुल पूर्ण आत्मनिर्भरता के साथ रह सकता था तथा स्वतन्त्रतापूर्वक गर्व से सिर

ऊँचा उठाकर खड़ा हो सकता था तथा विश्व से यह कह सकता था कि अन्धापन जीवन के मार्ग में बिल्कुल भी बाधक नहीं है। लेकिन इस सबके लिए मेरी का यह कथन कि मुझे उसकी सहायता की आवश्यकता पड़ेगी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं था तथा इस स्वप्न की पूर्ति के लिए मुझे वास्तव में उसकी आवश्यकता थी।

'मुझे तुम्हारी बहुत अधिक आवश्यकता है', मैंने कहा। लेकिन फिर उन दो नाविकों और बड का ध्यान आने पर यह भी कह दिया, 'अथवा तुम जैसी किसी अन्य की।'

उसने अपनी गरम हथेली रसोई की मेज पर रखे मेरे हाथ पर रख दी, 'क्या तुम मेरा विश्वास करोगे' वह बोली। 'यदि मैं तुमसे कहूँ कि मैं अपने सब झगड़ों के उपरान्त भी तुम्हें इन सबसे अधिक चाहती हूँ।'

'मैं कर लूंगा' मैंने कहा।

उसने लगभग उत्तेजना के साथ कहा, 'हमें आज विशेष रूप से एक दूसरे को प्यार करना चाहिए। हम मान लेंगे कि हम दोनों बिल्कुल समान हैं। हम दोनों के बीच कोई भेद-भाव, कोई अन्तर नहीं है। हम प्रत्येक बात पर सहमत हैं। प्रत्येक बात पर।'

'एक खेल ?' मैंने कठिनता से थूक को कंठ से निगलते हुए कहा।

'बिल्कुल नहीं। किन्तु केवल अपनी वास्तविकता को जानने का एक तरीका हमें यह समझना चाहिए कि सभी कुछ नितान्त सत्य है।'

'ठीक है, हमें ऐसा ही करना चाहिए' कहकर मैंने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़ लिए और उसकी पूर्ण वास्तविकता से, उसके सुन्दरता के साथ दक्षिण के ढंग से, धीरे-धीरे बोलने से तथा उसकी कोमल मधुर आवाज से अपने को अभ्यस्त करने लगा।

'डिक के सम्बन्ध में हमें कभी बातें नहीं करनी चाहिए' उसने याचना की।

'हाँ, कभी नहीं करनी चाहिए', मैंने जीवन भर को साक्षी देकर कहा। खड़े होकर मैंने उसके कोमल शरीर को अपनी लम्बी भुजाओं में भर लिया।

उस रात जब मैं देर से घर वापस आया तो मेरी मुझे रावलपिंडी के घर के समान···नहीं···नहीं उससे भी कहीं अधिक प्रिय लगी। मेरी कल्पना में वह टेलीग्राफ एवन्यू के उस छोटे-से रेस्तराँ की, वहीं उस दिन वाली वायलिन-वादिका थी। लेकिन इस बार उसने द्वार खोल दिया था और सहृदयता के साथ मेरा स्वागत

ही नहीं किया था बल्कि मुझे काफी भी दी थी और मेरे काँपते हुए हाथ को अपनी लम्बी-लम्बी अँगुलियों में और गरम-गरम हथेलियों में दबा लिया था।

जून में मुझे अपनी बी. ए. की डिग्री मिल गई, लेकिन आश्चर्य की बात है और साथ ही साथ व्यंग्य की भी कि यह मुझे उतनी अधिक महत्वपूर्ण नहीं लगी जैसा मैंने इसके लिए चार वर्ष पूर्व सोचा था। 'के' की मृत्यु ने जैसे कुछ छीन लिया हो और मेरी के आगमन से मानो जीवन को एक नई निधि मिल गई हो और जो मुझे एक अधिक सुन्दर, कम एकान्तमय तथा मेरी कल्पना से कहीं अधिक सरल जीवन की ओर अग्रसर कर रही हो।

लेकिन वसन्त के अन्त के साथ ही मेरी का काम समाप्त हो गया और मैंने उसे नैशविले के लिए हवाई जहाज पर विदा दी। उसने उत्साह और उत्सुकता के साथ विदा के समय मुझे चूमा।

'ईश्वर ने चाहा तो हम शीघ्र एक दूसरे से फिर मिलेंगे। उसने कहा।

'हम अवश्य मिलेंगे', मैंने कहा।

वह बोली, 'हमें कम से कम ऐसी आशा तो करनी ही चाहिए।' और वह चली गई।

उसके साथ ही साथ वसन्त का भी अन्त हो गया जो एक वास्तविकता और सम्पूर्ण जीवन का प्रतीक था। वसन्त तो फिर वापस आएगा और अपने साथ एक नई सुन्दरता तथा वैभव भी लाएगा। सम्भव है अगला वसंत श्रेष्ठतर हो क्योंकि यह बहानों के रूप में एक बालू की नींव पर आधारित नहीं होगा। लेकिन फिर भी आने वाले कल का दृढ़ सहारा, चाहे वह एक काफी परिपक्व सम्बन्ध की स्थापना करे, फिर भी उसमें प्रथम पूर्ण अनुभव की, सनसनी की एक नई खोज की—कमी होगी ही।

उपसंहार

मैं १९५६ की कक्षा के साथ जून में ग्रेजुएट हुआ और उसके बाद ही इंगलैंड की यात्रा के लिए पूर्वी तट की ओर अग्रसर हो गया। मैं यह सोचकर उदास था कि ग्रीष्म के समाप्त होने से पहले ही मैं अमेरिकन महाद्वीप से बाहर चला जाऊँगा। अमेरिका से मेरा स्वदेश के समान ही अनुराग हो गया था तथा भारत की तुलना में अमेरिका का मैं अधिक ऋणी था क्योंकि उसने ही मुझे शिक्षा दी थी, चलने-फिरने की स्वतन्त्रता दी थी, मेरे भीतर पूर्ण आत्मनिर्भरता की भावना प्रस्फुटित की थी और सिल तथा मेरी के जीवन में मुझे एक पूर्ण जीवन की झलक दिखाई थी। मेरा देश यह सब बातें मुझे देने में असमर्थ रहा था क्योंकि मैं अन्धा था।

इस देश के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति जिनसे मैं मिला था, वे प्राफेसर थे, जिन्होंने मेरे मस्तिष्क का परिमार्जन किया था। उनमें से मुख्य थे सर्वश्री क्रेन ब्रिन्टन पाल, एंजिल, थियोडोर एम० ग्रीन, डबल्यू०टी० जोन्स तथा फ्रड्रिक लुडविग मलहावज़र। सर्वश्री राबर्ट पामर, जौन ग्लीसन, हेनरी कौर्ड मेयर तथा एडवर्ड वाइज़मिलर ने भी मेरे मानसिक विकास के कार्यों में महत्वपूर्ण योग दिया था। इन नौ अध्यापकों ने, जिन्होंने मुझे विभिन्न विषय, जैसे विचारों का इतिहास से लेकर कला का दर्शन तत्व, तथा वर्तमान कविता पढ़ने का महान कार्य किया था, मिलकर मेरे ज्ञान को परिपक्व किया था। यद्यपि वहाँ मेरा उद्भव एक पूर्ण परिमार्जित ढंग पर नहीं हुआ किन्तु आक्सफोर्ड में होने वाले इस कार्य के लिए यहाँ सभी प्रारम्भिक अवस्थाएँ तैयार हो गई थीं।

मैं इसलिए आक्सफोर्ड जा रहा था, क्योंकि इन नौ अध्यापकों में से छः ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी तथा उन्होंने ही मुझे अटलांटिक महासागर पार करके ज्ञान के उस विशाल मन्दिर में अध्ययन करने की प्रेरणा दी थी। जब इन प्रोफेसरों ने और पामोना के प्रेसिडेन्ट श्री विलसन लायन ने, जो एक सर्व-

श्रेष्ठ अमेरिकन के रूप में मेरे सम्पर्क में आये थे, भारतीय अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया तथा एकमात्र इंगलिश माध्यम रोड्स ट्रस्ट में आर्थिक सहायता के लिए पहुँच की। दोनों से टेक्नीकल आधार पर सहायता की प्रार्थना की गई थी। पहले तो इसलिए क्योंकि मुझे अमेरिकन प्रशिक्षण मिला था और दूसरे मेरी भारतीय तथा अमेरिकन मिश्रित पृष्ठभूमि के कारण। भारतीय नागरिकता के कारण और अमेरिकन शिक्षा के कारण तथा दोनों ही मेरे अन्धे होने के कारण। एक बार फिर सहायता का माध्यम अमेरिकी ही था जो उस माध्यम से, जिसके कारण मेरे चार वर्ष की कालेज की शिक्षा का कार्य पूर्ण हो सका था, समानता रखता था। इन विशिष्ट टैकनीकल कारणों के जाल ने मुझे बैलियल कालेज में दाखिले के लिए अत्यधिक सहायता प्रदान की।

जब मैंने कैलीफोर्निया, टैक्सास, टैनेसी तथा मेरीलैंड में अपने मित्रों से विदा ली तो उन सभी ने मुझे टेनैसी तथा मेरीलैंड वापस आने का अनुरोध किया। मेरे इन मित्रों ने सद्भावनापूर्वक इंगलैंड होते हुए भारत जाने के बजाय अमेरिका में ही स्थायी रूप से बसने का अनुरोध किया। उनके अनुसार वहाँ मैं उल्लास और एक प्रकार की पूर्णता के साथ जीवन व्यतीत कर सकता था और कहीं विश्वविद्यालय के वातावरण में रहा तो अंधेपन की सभी कमियों को भूल जाऊँगा। यहाँ तक कि दिन-प्रतिदिन के व्यंग, जो एक अंधे तथा विकलांग व्यक्ति पर कसे जाते हैं, उनसे भी मैं बचा रहूँगा।

बहुत-सी बातों में अमेरिका में बसने का विचार मेरे लिए अत्यधिक सुखद और लाभदायक था। आवागमन की स्वतन्त्रता, जिसका भारतीय सड़कों पर नितांत अभाव है तथा जो पूर्णरूपेण प्रकाश तथा परिवहन नियमों से भी नियन्त्रित नहीं है। इसके अतिरिक्त भारत में कुशल पढ़ने वालों का मिलना असम्भव था तथा हीगल, अरस्तू तथा ईलियट को समझने के लिए कुशाग्र बुद्धिवाले कुशल पढ़कर सुनाने वालों की अत्यधिक आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त भारत जाने पर इंगलिश तथा अमेरिकन दर्शन तथा साहित्य के बारे में विचार-विमर्श करना भी सम्भव नहीं होगा।

लेकिन मैं ऐसा कैसे कर सकता हूँ। जबकि मेरे देश में अंधे नौजवान अपने यौवन काल में पागलखानों में रहते हैं तथा स्त्री-पुरुष भिक्षा-वृत्ति अपनाने के लिए बाध्य हो जाते हैं। क्योंकि केवल इसी प्रकार वह अपने अंधेपन का कुछ लाभ उठा

सकते हैं। मैं कुछ तुच्छ स्वार्थ के लिए उस महान् कार्य को कैसे छोड़ सकता था ?

प्रशान्त महासागर के तट को पीछे छोड़ते हुए तथा अन्ध महासागर के तट की ओर अग्रसर होते हुए मैं हिन्द महासागर जाने से पहले आक्सफोर्ड में दो बरस पढ़ने के अपने अनुभव के बारे में सोच रहा था। इस निर्णय को करते समय मेरे मन में बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ विचरण कर रही थीं। लेकिन मुझे इस बात से संतोष हो रहा था कि आक्सफोर्ड का दो वर्ष का अध्ययन मेरी शिक्षा को और दो कदम आगे बढ़ा देगा। मुझे स्वाध्याय करने के लिए काफी समय प्रदान करेगा, अपने पैरों पर खड़ा होना सिखायेगा तथा साथ ही मेरे मस्तिष्क को परिष्कृत करेगा। फिर भी मैं सोचता था क्या यह अपने को समझाने का एक तरीका भर नहीं है ? क्या मैं भारत वापस जाने से इसलिए नहीं डर रहा था क्योंकि मैं अमेरिकन ढंग से अत्यधिक प्रभावित हो गया था ? कहीं यह दो वर्ष का समय अन्त में अमेरिका में ही रहने के निर्णय में नहीं बदल जायेगा ?

इन सभी शंकाओं और धारणाओं के उपरान्त भी भारत के प्रति मेरा प्रेम और श्रद्धा निस्संदेह अत्यधिक थी। मेरी भारत-वापसी एक चुनौती तथा उत्तर-दायित्व दोनों ही हैं। मुझे प्रतीत होता था कि मैं अपने अध्यापकों, जिन्होंने मुझे अमेरिकन ढंग से शिक्षा-दीक्षा दी थी, का कितना कर्जदार हूँ। तथा यह भार कुछ अंशों में तभी कम हो सकता था यदि मैं भारत जाकर अमेरिका तथा भारत के मित्रता के सम्बन्धों को दृढ़तर बनाने का प्रयास करूँ।

इस कर्ज के अतिरिक्त सोहन के साहस तथा वीरता की भी याद आती है, जिसने अपनी प्रबल मान्यताओं के लिए अपने जीवन का बलिदान कर दिया। मैं उसकी स्मृति तथा अन्य बहुत-से लोगों की स्मृतियों का आदर करता हूँ जिन्होंने भारत के इस मूर्खतापूर्ण विभाजन के सिद्धान्त के विरुद्ध अपने प्राणों का बलिदान किया जो शान्ति तथा अहिंसा के सिद्धान्तों के विरुद्ध था। शीघ्र ही मैं भारत जाकर यदि इतिहास को बदलने का प्रयास नहीं तो कम से कम शान्तिमय ढंग से इन समस्याओं के निराकरण में जो भी थोड़ा-बहुत योग-दान दे सकता हूँ, जरूर दूंगा। सम्भवतः इंगलैंड जाना युक्तियुक्त है लेकिन दूसरे शब्दों में स्वदेश जाने का यही तर्कसंगत रास्ता है। मैं वास्तव में अंगरेजों को भी जानना चाहता था जिनको निम्मी बहन, सोहन तथा मैं बहुत-से बुरे कार्य करने के लिए उत्तरदायी ठहराते

थे। इनके सम्बन्ध में भी अब मेरे विचार उस समय के विचारों की तुलना में, जब मैं भारत में था, परिवर्तित थे। स्वदेश में मैंने इन्हें खून-खराबी करने वाले एजेंटों के रूप में देखा था। अमेरिका में रहकर मुझे उनकी ऐतिहासिक संस्थाओं का तथा उनके उत्साहवर्धक साहित्य का अध्ययन करने का अवसर मिला था और परिणामस्वरूप अब उनके प्रति मेरा अनुराग हो गया था। मेरी इच्छा है कि मैं उन्हें उनके घर में देखूँ, भले ही मेरी निष्ठा तथा राजभक्ति तीन भागों में बँट जाये और विकारयुक्त संतुलन सम्पूर्णतः वैसा हो जाय।

अंगरेजों को जानने की मेरी इच्छा, स्वदेश में शान्ति के लिए कार्य करने की भावना तथा उन सामाजिक प्रतिबंधों को समाप्त करने का कामना, जिनके सोहन तथा 'के' शिकार हो गए थे तथा जिन्हें इस बीसवीं शताब्दी के उतार-चढ़ाव में अपने प्राणों का बलिदान करना पड़ा था—सभी मिलकर भी अन्त में स्वदेश लौटने के दृढ़ निश्चय को परिवर्तित नहीं कर सके। अब प्रश्न यह है स्वदेश लौट कर मैं करूँगा क्या? क्या अपने विचारों को प्रत्यक्ष रूप में परिवर्तित करूँगा? भारत में मुझे अपनी आने-जाने की स्वतंत्रता का परित्याग नहीं करना पड़ेगा लेकिन उन हजारों पढ़े-लिखे व्यक्तियों का साथ देना पड़ेगा जो कोई भी काम न मिलने के कारण मैदानों और पार्कों में बैठे रहते हैं। 'किसी देश में' मेरे एक मित्र का कहना था, 'जहाँ आद्यौगिक क्रान्ति हो रही हो, केवल व्यावसायिक प्रशिक्षित, विशेष रूप से औद्योगिक प्रशिक्षित, व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।'

अमेरिका में भारत के राजदूत ने, जो मेरे अमेरिका छोड़ने से कुछ समय पूर्व लास एन्जिल्स का दौरा कर रहे थे, मुझे बतलाया था कि मुझे राज-सेवा आयोग अथवा डिप्लोमैटिक सेवाओं की परीक्षाओं में नहीं बैठने दिया जाएगा क्योंकि भारत सरकार के विचार से अन्धे व्यक्ति नेत्र वाले व्यक्तियों के बराबर कुशलता से कार्य नहीं कर सकते।

'क्या आपके विचार से भारत सरकार के इस रुख में किसी प्रकार के परिवर्तन की सम्भावना है?' मैंने पूछा।

'मेरे विचार से नहीं।' उन्होंने उत्तर दिया।

जहाँ तक कालेज में पढ़ाने का अथवा पत्रकार का कार्य अपनाने का प्रश्न था, भारत में इन क्षेत्रों में भी समान कठिनाइयाँ थीं, क्योंकि कोई भी अंधा व्यक्ति वहाँ के दूषित वातावरण में पलकर किसी उच्च पद पर नहीं पहुँच सका

है। और यदि कुछ अन्धे व्यक्ति सफल हुए हैं तो वे या तो कानून की प्रैक्टिस करने लगते हैं अथवा अन्धों को पढ़ाने लगते हैं। लेकिन तभी एक भारतीय सज्जन ने मुझे बतलाया, 'भारत में वकील लोग भूखे मर रहे हैं और अगर तुम अपने जीवन में वकील के अलावा और कुछ भी बनाना चाहते हो तब कोई बात नहीं, वरना मैं तुम्हें यह पेशा अपनाने की सलाह नहीं दूँगा।'

जहाँ तक मेरे देश में अन्धों की शिक्षा के कार्य में प्रगति का प्रश्न है तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उस व्यूरोक्रेटिक ढंग से काम करके बीस लाख से अधिक विकलांग लोगों का उपकार नहीं हो सकता। आवश्यकता इस बात की है कि अन्धों को भी आगे बढ़ने का समान अवसर प्रदान किया जाये जिससे वह भी अपनी सर्वांगीण उन्नति करने में सफल हो सकें। इस प्रकार का विदेशों का अनुभव हमारी बहुत कुछ सहायता कर सकता है तथा उन उदाहरणों से हमें बजाय हाथ पर हाथ धरे हुए बेकार बैठे रहने की दादर स्कूल जैसी संस्थाओं में भी चाइल्स उत्पन्न करने चाहिएँ।

ये कठिनाइयाँ, जो विकलांगों की तकलीफों को दूर करने के मार्ग में बाधक हैं, उस महान् कठिनाई के सम्मुख नगण्य हैं जो उस अन्धविश्वास के कारण हैं जिसके द्वारा अन्धों को दैवी प्रकोप का शिकार समझा जाता है तथा उनके नेत्र विहीन होने का कारण उनके पूर्वजन्म के पापों पर डाल दिया जाता है। जिस देश में अन्धापन एक अभिशाप होता है वहाँ सभी सफलताएं तथा नेत्रवाले समाज के सभी कार्य निरर्थक तथा महत्वहीन होते हैं। अमेरिका के कहीं अधिक उदार, कहीं कम भ्रान्त तथा कम रूढ़िवादी तथा निश्चय ही कहीं अधिक शिक्षित वातावरण तथा परिस्थितियों में रहने के उपरान्त अब मैं स्वयं अपने ही से यह प्रश्न पूछता हूँ, क्या मुझे ऐसी खतरनाक परिस्थितियों और वातावरण में जाने की कल्पना करनी चाहिए? क्या मैं केवल अपने स्वदेश प्रेम तथा स्वदेश-निष्ठा की भावना पर ही निर्भर रहकर अपने को उस भयंकर वातावरण की दया पर छोड़ सकता हूँ? जहाँ किसी अन्धे व्यक्ति की उन्नति का एक भी उदाहरण नहीं मिलता तथा सम्भवतः मेरे जीवन पर्यन्त हो भी नहीं?

अब जब कि मैं इंगलैंड जाने की तैयारी में व्यस्त हूँ, मेरे चारों ओर पुस्तकों तथा रिकार्डों के डब्बे फैले हैं। यही दो बुरी आदतें पिछल सात वर्षों में मेरे अन्दर पैदा हो गई हैं। इन सभी पुस्तकों के जाने-पहचाने जिल्दों के बीच केवल अनंत

ज्ञान ही स्थित नहीं है किन्तु उन्हें पढ़कर सुनाने वालों का अथक परिश्रम भी समाहित है जिनके श्रम के द्वारा ही मैं इन पुस्तकों का अध्ययन करने में समर्थ हो सका हूँ। थ्यूसीडाइड्स का महान् इतिहास, ऐन गेटे, जौयस एलबर्ट, प्लेटो तथा टी० एस० इलियट तथा यूजीन की वन्दना करती है। रिकार्डों की भी ऐसी ही स्मृतियाँ हैं। डान जिग्रोवानी की एलबम आडिटोरियम में मेरे पास ही डिक का तथा बाश का माइनर जाने का चित्र है।

मैं इन पुस्तकों और रिकार्डों को एक के ऊपर एक करके रख रहा हूँ, जिसमें से एक विशेष प्रकार की गन्ध निकल रही है, तो यह मुझे अमेरिका द्वारा प्रदान की गई बहुत-सी निधियों के समान मालूम पड़ रहे हैं। इन अमेरिकन उपहारों के बिना और वापस अमेरिकी जीवन में प्रवेश करने की आशा के बिना मैं उदास-सा हो गया था। क्योंकि अब अमेरिका मेरा उसी प्रकार अपना ही घर हो गया था जैसा विश्व का कोई भी अन्य भाग। लेकिन मेरा छुट्टियाँ लेना आसान हो गया है, क्योंकि जब मैं अटलांटिक के पार ब्रिटिश द्वीप की ओर अग्रसर हो रहा हूँ तभी एक दूसरा वायुयान मेरी माताजी को लेकर यहाँ पहुँचने के लिए उड़ता चला आ रहा है जो मुझसे मिलने के लिए यहाँ पहुँच रही हैं। सात लम्बे वर्षों के पश्चात् प्रथम बार हम परस्पर मिलेंगे और मैं उनकी मधुर कोमल आवाज को अपनी स्थानीय बोली में सुनूँगा।

◇ ◇ ◇